एक विख्यात कवि एवं गायक, मगर
कौन उसे पूछे--बूढा जो हो चला

छोर का एक गाँव

लेखक

धीरेन्द्रनाथ मजूमदार
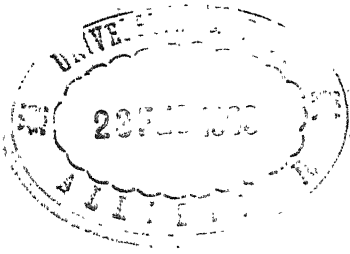
एशिया पब्लिशिंग हाउस

बम्बई · कलकत्ता · नई दिल्ली · मद्रास

लंडन · न्यूयॉर्क

अनुवादक

चन्द्रभाल त्रिपाठी

माइकेल अन्द्रादेज द्वारा दि बॉम्बे क्रॉनिकल् प्रेस,
फ़ोर्ट, बम्बई १, से मुद्रित और पी. एस्. जयसिंघे द्वारा
एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई १, से प्रकाशित

भूमिका

नृतत्ववेत्ताओं और समाजशास्त्रियों में यह साधारण प्रथा रही है कि जिन गाँवों और सामाजिक व्यवस्थाओं का वे अध्ययन करते हैं उन्हें वे प्रकारबोधक (typical) और प्रातिनिधिक इकाइयों की संज्ञा दे देते हैं। ई. के. गफ़ ने तंजोर की जाति व्यवस्था को 'समूचे भारत की प्रकारबोधक जाति व्यवस्था' कहा है। लंका के अन्तर्गत जफ़ना में जाति के विषय में लिखते हुए माइकेल बैंक्स ने जफ़ना समाज की चार विशेषतायें गिनाई हैं 'जिन्हें अधिकांश हिन्दू व्यवस्थाओं की प्रकार-बोधक विशेषतायें कहा जा सकता है'। अधिकांश ग्राम्य समाजशास्त्री और ग्राम्य नृतत्ववेत्ता अपने लघुविस्तार वाले (microcosmic) अध्ययनों को प्रातिनिधिक समझते हैं और जिस गाँव का अध्ययन करते हैं उसे समग्र देश का नहीं तो उस राज्य या क्षेत्र का प्रकारबोधक गाँव निश्चय ही मानते हैं। दुबे का 'भारतीय गाँव' अथवा 'परिवर्तनशील गाँव' भी अन्यों का अनुसरण करते हैं। गंगा-यमुना के ऊपरी दोआब में आगरा डिवीज़न में स्थित ८५० व्यक्तियों के गाँव किशनगढ़ी को मैकिम मैरियट ने उन 'पेचीदा गाँव बस्तियों का एक अच्छा नमूना कहा है जो संघ के सबसे अधिक उपजाऊ कृषि क्षेत्रों में पास-पास बसी हुई हैं' (इण्डियाज़ विलेजेज़, पश्चिम बंगाल सरकार प्रेस, १९५५, पृ. ९६)। विशिष्ट से सामान्य में साधारणीकरण पूर्णतया स्वाभाविक है किन्तु कम लोग ही ऐसी निर्मिति की सीमाओं की अनुभूति कर पाते हैं।

ड्यूमॉण्ट का विचार है कि 'एक सांस्कृतिक क्षेत्र के अन्तर्गत सभी जातियाँ समान मूलभूत संस्थाओं पर आधारित होती हैं'। परन्तु यह कथन वास्तविकता को अतिशय सरल मान लेना है और जाति व्यवस्था में समान तत्वों की खोज करने की इच्छा से उद्भूत है। एक ही गाँव में चमारों में विधवा विवाह होता है, उच्च वर्णों में नहीं। ठाकुरों में वर गधे पर सवार हो कर वधू के गाँव नहीं जाता किन्तु धोबियों में जाता है। साधारणतया वर्जित सीमायें विभिन्न होती हैं। कुछ जातियों में ममेरे-फुफेरे भाई-बहिन में विवाह की अनुमति है, अन्यों में नहीं। कुछ जातियों में बाल विवाह की प्रथा है, अन्यों में वयस्क विवाह का चलन है। कुछ जातियों में वधूमूल्य लिया जाता है, अन्यों में वर को दहेज दिया जाता है। जाति-जाति के अभिचार भिन्न-भिन्न होते हैं और एक ही क्षेत्र और देश में निवास करने वाले सभी समुदाय इन विभिन्नताओं को जानते-बूझते हैं। मातृसत्ताक जातियाँ पितृसत्ताक

जातियों से भिन्न होती हैं और कभी-कभी क्षेत्रीय अन्तर विपुल होते हैं। हाल के वर्षों में ग्राम्य नृतत्ववेत्ताओं द्वारा निर्धारित जाति-मर्यादाक्रम एक प्रतिमान (pattern) प्रदर्शित करते हैं किन्तु उसके ताने-बाने सर्वत्र समान नहीं हैं। किसी एक जाति की विभिन्न क्षेत्रों या राज्यों में विभिन्न सामाजिक मर्यादा (status) हो सकती है।

प्रो. ब्राइस रायन (Prof. Bryce Ryan) का दावा अपेक्षाकृत स्वल्प है। उनका गाँव पेलपोला, लंका रेखा (Ceylon Line) प्रदेश का 'प्रतिनिधित्व करने के लिए चुना गया था'। यह प्रदेश उस द्वीप का वह भाग है जिसमें सबसे अधिक शहरियत आ गई है। रायन ने लिखा है —'स्पष्टतः सांख्यिकीय प्रातिनिधित्व का कोई दावा अभिप्रेत नहीं है यद्यपि यह गाँव सामान्यतः इस क्षेत्र के अन्य बहुत से गाँवों के समान है' (ब्राइस रायन, सिंहलीज़ विलेज, फ़्लोरिडा, पृ. पाँच)। बेली (Bailey) ने पश्चिमी उड़ीसा की सुदूर पहाड़ियों के एक ऐसे क्षेत्र के गाँव का वर्णन किया है जो सीमा शब्द के कई अर्थों में एक सीमा रहा है और अब भी है। इस क्षेत्र का नाम खोंडमाल है। (बेली, कास्ट ऐण्ड दि इक्नॉमिक फ़्रण्टियर, मैनचेस्टर, १९५७, पृ. ११) 'एक उड़िया गाँव और प्रशासन के आगमन के उपरान्त उसकी भौतिक-राजनीतिक संरचना (structure) में परिवर्तनों के वर्णन से अधिक लेखक का कोई दावा नहीं है' (वही, पृ. ३२)।

मॉरिस कैर्स्टेयर्स (Morris Carstairs) ने भील देश के गाँवों के विषय में कहा है कि वे 'मैदान के गाँवों से पर्याप्त भिन्न हैं' (दि इक्नॉमिक वीक्ली, अंक ४, ९ मार्च, १९५२)।

नेवेल (Nevell) ने 'एक ज़िले का दूसरे ज़िले से अन्तर व्यक्त करने वाली विशिष्टतायें' दिखलाई हैं (दि इक्नॉमिक वीक्ली, २३ फ़रवरी, १९५२) और मैरियन डब्ल्यू. स्मिथ ने संभवतः यह समीचीन बात लिखी है कि 'इस अध्ययनमाला (इण्डियाज़ विलेजेज़, पश्चिम बंगाल सरकार प्रेस, १९५५) के विभिन्न विषय इस तथ्य के यथेष्ट प्रमाण हैं कि भारत के एक भाग के परिचय को किसी अन्य भाग का भी पक्का ज्ञान कभी नहीं मान लेना चाहिए' (वही, पृ. १४४)।

रिचर्ड के. बेयर्डस्ले (Richard K. Beardsley) तथा अन्यों (यूनिवर्सिटी ऑव शिकागो प्रेस, १९५९) द्वारा चावल उपजाने वाले एक छोटे से जापानी समुदाय के हाल के एक अध्ययन में लेखकों ने कहा है —"यह कहने का अर्थ यह नहीं है कि इस अध्ययन से एक ऐसी कुंजी अभीष्ट है जो जापानी 'राष्ट्रीय चरित्र' के रहस्यों का उद्‌घाटन कर देगी। वस्तुतः हमारे दल के विभिन्न सदस्यों द्वारा जापान में लगातार सात वर्षों के क्षेत्र कार्य और अध्ययन के उपरान्त हममें से कोई

ऐसा विश्वास नहीं करता कि सम्पूर्ण 'राष्ट्रीय चरित्र' की वैज्ञानिक परिभाषा प्रस्तुत करने में तनिक भी सफलता मिली है। सम्भवतः इसकी परिभाषा कभी भी न दी जा सकेगी। किन्हीं लोगों और संस्कृति के बारे में कोई जितना अधिक परिचय प्राप्त करता है उतना ही अधिक उसे किसी भी सम्पूर्णात्मक साधारणीकरण की मूलभूत सीमाओं और त्रुटियों की अनुभूति होती है। अपनी सारी असमान समरूपता के होते हुए भी जापानी संस्कृति सम्पन्न तथा विविधताओं से परिपूर्ण है। क्षेत्र, वर्ग, वयस्, शिक्षा तथा वातावरण पर आधारित प्रमुख विभिन्नतायें पाई जाती हैं''। मेरा विचार है कि इस जागरूकता के द्वारा हमारे ग्राम अध्ययनों में अपेक्षित नियंत्रण उपलब्ध होना चाहिए।

भारतीय समाजशास्त्रियों ने भारतीय ग्रामों के वर्गीकरण के कई मानक बतलाए हैं। ए. आर्. देसाई ने (रूरल सोसियॉलोजी इन इण्डिया, बम्बई, १९५९, पृ. १६) गाँवों के वर्गीकरण के लिए तीन मानकों का उल्लेख किया है। (१) संक्रमण-प्रकारीय गाँव जिनका विकास 'मनुष्य के खानाबदोश अस्तित्व से व्यवस्थित जीवन के संक्रमण काल में' हुआ है। देसाई ने इस प्रकार के गाँवों का तीन उपवर्गो में विभाजन किया है — (क) प्रवासी कृषिप्रधान गाँव जिनमें लोग स्थिर घरों में केवल कुछ मास तक निवास करते हैं, (ख) अर्धस्थायी कृषिप्रधान गाँव जिनमें लोग कुछ वर्षों तक रहते हैं और फिर भूमि की उर्वरता समाप्त हो जाने पर प्रवास करते हैं, तथा (ग) स्थायी कृषिप्रधान गाँव जिनमें बसे हुए मानव समूह अनगिनत पीढ़ियों और शताब्दियों तक भी निवास करते हैं। (२) श्रेणीबद्ध (Nucleated) और विश्रृंखल गाँव। श्रेणीबद्ध गाँवों में कृषकों के घर खास गाँव में एक गुच्छे के समान रहते हैं। गाँव (घरों) के स्थान से बाहर फैले हुए खेतों में वे काम करते हैं। वे एक निवासस्थल पर पास-पास रहते हैं, अतएव उनमें एक सुसम्बद्ध जीवन विकसित होता है। विश्रृंखल प्रकार के गाँव में कृषक अपने-अपने खेतों में अलग-अलग निवास करते हैं। इस प्रकार उनके निवासस्थलों में विश्रृंखलता के कारण उनका सामाजिक जीवन एक भिन्न रूप ग्रहण करता है। (३) सामाजिक विभेद, सामाजिक स्तर-विभाजन, गतिकता और भूस्वामित्व गाँव को चरित्र प्रदान करते हैं और गाँवों के प्रकार निर्धारित करते हैं। देसाई ने ऐसे गाँवों को ६ मुख्य प्रकारों में बाँटा है — (क) जिनमें संयुक्त स्वामित्व वाले कृषक हों, (ख) जिनमें संयुक्त रूप से काम करने वाले किसान हों, (ग) जिनमें व्यक्तिगत स्वामित्व वाले लोग—किसान और श्रमिक दोनों—सम्मिलित हों, (घ) जिनमें व्यक्तिगत किसान हों, (ङ) जिनमें किसी प्राइवेट भूस्वामी के कर्मचारी हों, और (च) जिनमें श्रमिक और राज्य, धर्म-संघटन, नगर अथवा सार्वजनिक भूस्वामी के कर्मचारी हों। यह आवश्यक

नहीं कि इन मानकों का सर्वदा परस्पर पृथक् अस्तित्व हो परन्तु ये भारतीय गाँवों के विविध स्वरूप की ओर इंगित करते हैं। ए. आर्. देसाई (वही, पृ. १७) ने लिखा है —"उपर्युक्त मानकों के आधार पर भारतीय गाँव समूहों के सहेतुक वर्गीकरण और उनके इतिहास के अध्ययन से भारत के गाँव समुदायों के बारे में, ग्राम्य भारत में प्रादुर्भूत विभिन्न प्रकार की सामाजिक संस्थाओं के विषय में तथा उन जटिल सांस्कृतिक प्रतिमानों के सम्बन्ध में बहुमूल्य सूचना उपलब्ध होगी जिन्होंने भारतीय ग्राम्य जन की ऊर्ध्वाधर (vertical) प्रक्रिया को प्रभावित किया है और करते रहे हैं"।

उत्तर प्रदेश में विविध सांस्कृतिक उपादानों वाले विभिन्न प्रकार के गाँव हैं। पहाड़ के गाँव मैदान के गाँवों से भिन्न हैं, पूर्व के गाँव पश्चिम के गाँवों से, और राज्य में कई संस्कृति-क्षेत्र हैं जिनकी पहचान आसानी से हो सकती है। जाति मण्डल (caste constellations) क्षेत्र-क्षेत्र में भिन्न-भिन्न हैं और प्रभुत्व के प्रतिमानों में एकरूपता नहीं है। अनेक गाँवों में पासी, जाट, राजपूत और ब्राह्मण प्रभुत्व-पूर्ण जातियाँ हैं और इनमें से एक या अधिक जातियाँ उन गाँवों में अपूर्ण रूप से अपना प्रभुत्व जमाए रहती हैं। अतएव मैंने राज्य की दक्षिणी सीमा पर स्थित एक गाँव को चुना है जो अनेक जातियों और कबीलों द्वारा बसा हुआ एक मिश्रित गाँव है और जहाँ जातियों के सम्पर्क के परिणामस्वरूप कबीलों का न्यूनाधिक मात्र में विकबीलीकरण (detribalization) हो चुका है।

जिस गाँव का श्रीनिवास ने अध्ययन किया था उसमें जातियों की अन्तरनिर्भरता पर उन्होंने बल दिया है और इसे वह गाँव की एकता के कारणों में एक मानते हैं। इसे उन्होंने 'अनेक जातियों की ऊर्ध्वाधर एकता' कहा है जिसके विपरीत जातियों की 'क्षैतिज (horizontal) एकता' को दर्शाया है, जिसमें जाति मैत्रियाँ 'गाँव के पार' तक रहती हैं (इण्डियाज़ विलेजेज़, पृ. १४५, उद्धरण मैरियन डब्ल्यू. स्मिथ द्वारा)। जैसा हम पहले संकेत कर चुके हैं छोर के गाँव में समेकन (integration) शिथिल रहता है और यदि किसी प्रकार की एकता द्रष्टव्य है तो वह अधिक क्षैतिज ही है।

भारतीय संस्कृति की विविधता ऐसी है कि उसके समेकन की सम्भावना विविधताओं के मानने में ही निहित है, न कि उनके विच्छेद में। समाजशास्त्री जो सामाजिक जीवन और संचरना का नियमन करने वाले सामान्य नियमों की स्थापना करना चाहते हैं, समानताओं पर बल देने की इच्छा रखते हैं और इसके परिणामस्वरूप ऐसे प्रत्यय (concepts) और सिद्धान्त जन्म लेते हैं जिनका, बहुत हुआ तो, सीमित प्रयोग हो सकता है।

समान तत्वों की खोज ने एक अर्थ में हाल के समाजशास्त्रीय अध्ययनों को अवास्तविक रूप दे दिया है जिसके कारण ग्राम्य तथा नागरिक जीवन के समाजशास्त्रीय विश्लेषण साधारणतया जटिल सामाजिक स्थितियों तथा जातियों और समुदायों के विविध सामाजिक अधिमानकों (norms) की पूर्णतया उपेक्षा कर जाते हैं। इसके विपरीत भारतीय ग्राम्य संचरना, गाँव के अन्दर और बाहर की मनोधारणाओं, मूल्यों और समूह गतिशास्त्र (group dynamics) के विश्लेषणात्मक अध्ययनों तथा भाष्यों ने हमें ग्राम्य पुनर्वास, ग्राम्य चिकित्सा तथा क्रियात्मक कार्यक्रमों की समस्याओं से परिचित करा दिया है। हमारे सामने कई प्रत्यय हैं जिनका प्रयोग हम अपने गाँवों के जटिल सामाजिक जीवन का विश्लेषण और भाष्य करने में कर रहे हैं। अभी तक हमने ग्राम्य जीवन के कुछ आवश्यक तथ्यों की उपेक्षा की थी क्योंकि हमारा ग्राम्य जीवन ग्रामीण शान्ति तथा आनन्द की भ्रान्ति से आच्छादित था। साथ ही ग्राम्य जीवन के लघुविस्तार वाले अध्ययनों द्वारा जितनी बातें कही जा सकती हैं उनसे अधिक कही गई हैं और हम अपनी खोज की सीमाओं का अनुभव करने लगे हैं। हम उस विशाल सामाजिक पृष्ठभूमि का भी अनुभव कर रहे हैं जिसमें मतभेद पूर्ववत् चलते प्रतीत होते हैं और भेदों को दूर करने में सहायक हो रहे हैं। अपने प्रत्यय-विषयक उपकरणों (conceptual tools) का दोष दिखला कर हम अधिक असन्दिग्धता के साथ उनके पुनःप्रस्थापन में सहायता ही कर रहे हैं, जिसकी अपेक्षा वे सब लोग स्वीकार करेंगे जिन्होंने ग्राम अध्ययन को अपना विशेष विषय बनाया है।

बी. कोन (B. Cohn) ने 'माधोपुर रीविज़िटेड' (इक्नॉमिक वीक्ली, विशेषांक, जुलाई, १९५९, पृ. ९६३-९६६) में नगर-ग्राम सम्बन्ध में एक नए विकास की ओर संकेत किया है जो 'अट्ठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों के योरपीय इतिहास की विशिष्टता थी'। कोन ने लिखा है—"एक पीढ़ी के काल में छोटे-छोटे कृषक सम्पत्तिधारियों के हाथ में गाँव का स्वामित्व होगा और भूमिहीन कमकरों का एक चल समूह होगा जिसका प्रतिसन्तुलन एक आधुनिक औद्योगिक नागरिक संस्कृति द्वारा होगा। एक व्यवधान (gap) का उदय होगा जो भारतीय इतिहास के लिए नवीन होगा और यह एक विडम्बना होगी कि बीसवीं शती के मध्य में भारत में एक कृषकवर्ग का उदय हो"। यह निष्कर्ष कुछ स्थापनाओं पर आधारित है जिन्हें कोन ने अपने लेख के आरम्भ में संक्षेप में दिया है—

"भूतकाल में यद्यपि ग्रामीण और नागरिक का भेद किया जा सकता था यह स्वभावतः दो भिन्न समाजों और जीवनविधियों का प्रतिनिधित्व नहीं करता था। इसमें ग्रामवासियों और नगरवासियों के बीच सामाजिक संचरना, मूल्यों, धर्म तथा

दृष्टिकोण की एक निरन्तरता (continuum) निहित थी। नगर और गाँव दोनों में ऐसे समूह थे जो परस्पर आबद्ध थे।

"मेरा विचार है कि आज यह स्थिति बदल रही है। वे कड़ियाँ निःशेष हैं। समाजों के दोनों अंगों के मध्य सरकार ही उत्तरोत्तर एकमात्र कड़ी बनती जा रही है और यद्यपि संचार के यांत्रिक साधन बढ़ गए हैं, तथापि गाँव और नगर की सांस्कृतिक कड़ियाँ टूट गई हैं। जो समूह कड़ियों का काम करते थे वे अस्त हो गए"।

डॉ. कोन को अपनी मान्यता के परीक्षण के हेतु माधोपुर (छद्मनाम) से अवध के तथा अन्यत्र अन्य गाँवों में जाना चाहिए था। १८ वीं और १९ वीं शताब्दियों के ग्रामवासी संचार के अभाव, लोगों की निर्धनता तथा मुख्यतः उनके कृषि-सम्बन्धी धंधों के कारण नागरिक सम्पर्कों से वंचित रहे। ज़मींदार और ठाकुर ही नगरों और क़स्बों में आते-जाते थे और वे नागरिक और ग्राम्य समुदायों के मध्य कड़ी का काम करते थे। संस्कृति की निरन्तरता एक भ्रान्ति थी। नगरों में आने-जाने वाले अनेक लोगों ने नागरिक मूल्यों को आत्मसात् नहीं किया और अधिकतर गाँव की जड़ों से ही चिपके रहे जब कि कुछ अन्य जनों का नागरिक अवस्थाओं में आसंस्करण (acculturation) हुआ और ग्राम्य बन्धनों से उनका विच्छेद हो गया। आज नई कड़ियों को जन्म दिया गया है, उनके कारण ग्रामवासी नगरों में पहुँचे और नए विचार ले कर वापस आए हैं, विद्यालय कुकुरमुत्ते की तरह बढ़े हैं और सम्पर्क-विन्दु बहुत हो गए हैं। सस्ते मनोरंजन और चलचित्र, कृषि-उपज के ऊँचे मूल्य, आर्थिक-सामाजिक जीवन में सरकारी हस्तक्षेप, गाँवों में जन्म ले रहा नया नेतृत्व, ये सब ग्राम्य और नागरिक मूल्यों, मनोधारणाओं और दृष्टिकोणों को अप्रत्याशित रूप से समान स्तर पर ला रहे हैं। जैसी भविष्यवाणी कोन ने की है वह एक समीचीन तथ्य को खींचतान कर ऊलजलूल निष्कर्ष तक ले जाना ही है।

उत्तर प्रदेश के गाँवों में प्रारम्भ किए गए सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवा ने ग्राम्य जन में एक सामाजिक जागरूकता का विकास किया है और नागरिक तथा ग्राम्य जीवन के बीच की कड़ियों के टूट जाने की सम्भावना सुदूर प्रतीत होती है। न तो गाँवों में एक नए कृषक वर्ग के विकास की कोई सम्भावना है जो नागरिक मूल्यों और सुविधाओं से मुख मोड़ लेगा, क्योंकि गाँवों में आयोजित परिवर्तन कृषि की अपेक्षा प्राविधिक विज्ञान (technology) के अधिक समीप है और ग्राम नियोजन, गृहनिर्माण की सुविधाओं, स्वच्छ वातावरण तथा संचार-वृद्धि की योजनाओं के कारण हमारे गाँव ग्राम-नगरीकृत (rur-urbanised) हो रहे हैं। परम्परागत नेतृत्व के स्थान पर एक नया नेतृत्व जन्म ले रहा

है जो नागरिक मूल्यों और निकट भविष्य में औद्योगिक अर्थव्यवस्था की सम्भावनाओं के प्रभाव के कारण अधिक कल्याणकारी सिद्ध होने की क्षमता रखता है।

उत्तर प्रदेश की कबायली जनसंख्या एक परवलय (parabola) के रूप में वितरित प्रतीत होती है जिसकी धुरी गोरखपुर है, एक भुजा द्वारा राज्य की पूर्वी, दक्षिणी और पश्चिमी सीमा आवेष्टित है तथा दूसरी भुजा के अन्तर्गत तराई और हिमालय के इस पार के ज़िले हैं। पुरा-ऑस्ट्रेलीय कबीले पूर्वी, दक्षिणी और पश्चिमी छोरों पर वितरित हैं, मंगोलीय और अर्धमंगोलीय प्रजातीय तत्वों द्वारा उत्तर-पूर्व और उत्तर की ओर राज्य की सीमावर्ती जनसंख्या निर्मित है। राज्य के आन्तरिक भाग में कबायली तत्व शून्यप्राय हैं, परन्तु निम्न जातियाँ और विकबीलित कबीले चारों ओर फैल गए हैं यद्यपि वे पूर्वी ज़िलों में अधिक केन्द्रित हैं। हम जैसे-जैसे पूर्वी ज़िलों से पश्चिमी ज़िलों की ओर बढ़ते हैं जनसंख्या के पुरा-ऑस्ट्रेलीय तत्वों की संख्या घटती जाती है, परन्तु इसकी विपरीत स्थिति हम पूर्वी, दक्षिणी और पश्चिमी छोरों में पाते हैं। राज्य के उत्तरी और उत्तर-पूर्वी भागों में मंगोलीय तत्व पर्याप्त संख्या में पाए जाते हैं। इन छोरवर्ती क्षेत्रों के गाँवों में न तो राज्य के आन्तरिक भागों के ग्राम्य प्रतिमान की अनुकृति मिलती है, न इन गाँवों का जाति-स्वरूप अन्य भागों के जाति-स्वरूप से मिलता है।

कैमूर पर्वतमाला के दक्षिण में मिर्ज़ापुर ज़िला है और कुछ भूतपूर्व रजवाड़े हैं जो अब निकटवर्ती मध्य प्रदेश के राज्य में सम्मिलित कर लिए गए हैं। इस क्षेत्र के गाँवों में कबायली लोगों की कतिपय छोटी-छोटी बस्तियाँ हैं जिन पर बिहार और मध्य प्रदेश के समीपवर्ती राज्यों की उच्च और निम्न दोनों प्रकार की प्रवासी जातियाँ आक्रमण करती रही हैं। हर गाँव की कहानी कमबेश वैसी ही रही है, उसके मूल निवासी कई कबायली समूहों के लोग रहे हैं जो नई भूमि की खोज में या आहार-संचय की संभावनाओं से सघन वनों द्वारा आकृष्ट हो कर राज्य में आ बसे हैं और परिणाम-स्वरूप एक ही गाँव में कई कबीले पाए जाते हैं परन्तु विभिन्न बस्तियों में रहते हैं। इनको नवागन्तुकों ने परास्त किया है, फलतः गाँवों का स्वामित्व बदलता रहा है और एक ही कबीला तितर-बितर कर विभिन्न गाँवों में जा बसा है। जैसा हम पहले उल्लेख कर चुके हैं इस क्षेत्र में आजकल निवास करने वाले सभी जातियों के लोग बिहार, साथ में लगे हुए छोटा नागपुर के पठार के प्रवासी हैं और उन्होंने कबायलियों की भूमि हथिया कर उन्हें इस प्रकार कुचल डाला है कि उनकी मर्यादा दासों और निराश्रितों जैसी रह गई है। कबायली अपने कष्टों और जाति वालों द्वारा शोषण की गाथा सुनाते हैं। इन जाति वालों में बहुत से उन्हें धनऋण दे कर उसके बदले में उनकी भूमि पर अधिकार कर लेते थे। प्रशासन कबायलियों की आवश्यकताओं

के प्रति उदासीन था और उनकी आवश्यकताओं और शिकायतों के प्रति घोर उपेक्षा ने कबीले की मर्यादा भूस्वामियों से गिरा कर ग्राम्य दासों तक पहुँचा दी। दुद्धी की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के अनुसन्धान के फलस्वरूप जो मानवीय प्रलेख प्राप्त हुआ और जिसके उद्धरण हमने अन्यत्र दिए हैं उससे कबायली लोगों के दारुण कष्टों पर प्रकाश पड़ता है। राज्य सरकार ने इनको ऐसे कबीले कहा हैं जिनका आसंस्करण हो चुका है और इस प्रकार इनकी 'पदोन्नति' कर इन्हें उन विशेष सुविधाओं से वंचित रखा है जो आजकल देश के विभिन्न भागों में सुसंहत कबायली क्षेत्रों में दी जाती हैं।

उत्तर प्रदेश की परिधि पर स्थित गाँवों में वही प्रतिमान द्रष्टव्य नहीं है जो राज्य के आन्तरिक भागों में पाया जाता है। जब कि आन्तरिक भागों के अधिकांश गाँवों में एक प्रभुत्वपूर्ण जाति होती है और उसकी सत्ता तथा प्रभाव द्वारा गाँव में संचार का वहन होता है तथा शान्ति स्थिर रहती है, छोर के गाँवों में अवस्था साधारणतः परिवर्तनशील होती है और कतिपय जातियाँ शीर्षस्थान तथा गाँव पर अपना आधिपत्य जमाए रखने के हेतु परस्पर संघर्ष करती रहती हैं। यहाँ जातिक्रम अथवा सामाजिक अग्रस्थान (precedence) के क्रम से विभिन्न जातियों की मर्यादा संभवतः अधिक महत्व नहीं रखती और आन्तरिक गाँवों में साधारणतः ब्राह्मणों और ठाकुरों का जो प्रभाव होता है संभव है यहाँ देखने में न आए। जब वे प्रभावशाली रहते हैं तब भी यह प्रभाव उनमें और निम्नतर वर्णों अथवा कबीलों में बँटा रहता है और इन गाँवों में जो समूह गतिशास्त्र हम पाते हैं किसी एक जाति तक अथवा उच्चतर जातियों में ही सीमित नहीं होता। कबायली लोग और निम्नतर जातियाँ अपनी मर्यादा स्थिर रखने या विशेष सुविधायें प्राप्त करने के निमित्त उच्चतर जातियों के साथ मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करती हैं अथवा उच्चतर जातियाँ ही स्वतः इस प्रकार के मैत्री-सम्बन्धों की चेष्टा करती हैं। गाँव में कोई एक ही प्रभुत्वपूर्ण जाति नहीं होती अपितु अनेक जातियाँ होती हैं जो 'ऐण्डाल्यूशियन ब्ल्यू' (Andalucian blue)* के समान अपूर्ण प्रभुत्व के चिह्न प्रकट करती हैं और विशेष सुविधाप्राप्त क्रम (privileged hierarchy) और कर्तृत्व ग्रहण (role acceptance) के विभिन्न स्तरों को अभिव्यक्त करती हैं। उदाहरणार्थ, उत्तर प्रदेश के आन्तरिक गाँवों में ठाकुरों को, जो साधारणतः प्रभुत्वपूर्ण होते हैं, अधिकारों तथा नेतृत्व में ब्राह्मणों और कलवारों को साझी बनाना पड़ता है और जब वे गाँव की राजनीतिक व्यवस्था पर अपना दबाव डालना चाहते हैं तो वे निम्नतर वर्णों और

* ऐण्डाल्यूशिया स्पेन का एक प्रान्त है और ऐण्डाल्यूशियन भूमध्यीय जाति के नीले और काले मिश्रित रंग के एक कुक्कुट को भी कहते हैं।

कबायलियों को मिला लेते हैं। छोर वाले अनेक गाँवो में उन्होंने ऐसे अन्तर-जातीय सम्बन्ध स्थापित कर रखे हैं जो सामाजिक अग्रस्थान के सामान्य स्वीकृत प्रतिमान पर आधारित न हो कर ऐसे समझौते हैं जिनमें छोर के गाँवों में प्राप्य परिवर्तन-शील सामाजिक समेकन की प्रतिच्छाया देखी जा सकती है।

भारत में गाँव एक अछूती इकाई नहीं होता और किसी गाँव में शक्ति संचरना उस क्षेत्र में निवास करने वाली किसी जाति की संख्या पर निर्भर करती है न कि आवश्यक रूप से ख़ास उस गाँव में उस जाति की संख्या पर। किसी गाँव में कोई उच्चवर्ण समूह बहुसंख्यक हो सकता है, परन्तु यदि उस जाति का विस्तार कतिपय गाँवों में नहीं है तो उस गाँव में उसकी सत्ता और प्रभावोत्पादकता संभवत: उसकी संख्या के अनुपात में नहीं होगी। यह तथ्य उन्हें स्पष्टत: दिखाई दिया होगा जिन्होंने ऐसे गाँवों में काम किया है जिनमें पिछड़ी या अनुसूचित जातियों के और कबायली परिवार बहुत बड़ी संख्या में पाए जाते हैं। मोहना में भी ठाकुरों की शक्ति और प्रभाव अधिकांश गाँवों में ठाकुरों के विस्तार पर निर्भर है (राजपूत नेतृत्व की कड़ी से मोहना का सम्बन्ध कम से कम २५ गाँवों से है) और अन्य अधिकांश गाँवों के सम्बन्ध में भी यही बात सही है जहाँ ठाकुर सामन्ती सरदार हैं यद्यपि आज उनकी प्रतिष्ठा और क्षमता क्षीण हो चुकी है।

छोर के गाँवों में साधारणत: किसी भी जाति का यथेष्ट प्रभाव नहीं होता और इस तथ्य के कारण कि विभिन्न जातियों को जो साधारणत: प्रवासी हैं शेष लोगों के प्रति अपना मत स्थिर कर एक अस्थायी समझौता (modus vivendi) तय करना पड़ता है, एक जाति की शेष जातियों पर प्रभुत्व की संभावना बहुधा कम ही रहती है। प्रभुत्व के निमित्त संघर्ष समूह गतिशास्त्र में निस्सन्देह प्राण फूँक देता है, परन्तु जातियों के विस्तार के अभाव में सम्पूर्ण प्रभुत्व असम्भव है। यह वैचित्र्य हमारे ग्राम्य संदर्भ में यथेष्ट महत्व रखता है। छोर के गाँवों में निम्नलिखित सभी या कुछ विशेषतायें पाई जाती हैं—

१. छोर का गाँव बहुजातीय होता है; किन्तु आन्तरिक गाँवों के विपरीत, जिनमें से अनेक में कतिपय जातियाँ होती हैं, विभिन्न जातियों के बीच कोई स्थिर सम्बन्ध नहीं होते, मानों कोई सन्तुलन ही न हो, और विभिन्न कालों में विभिन्न जातियाँ महत्व ग्रहण कर लेती हैं, परन्तु कोई एक जाति प्रभुत्व नहीं स्थापित कर सकती क्योंकि शेष जातियाँ उसके प्रभाव को तोड़ने के लिए मिल जाती हैं।

२. विभिन्न जातियों और समुदायों के जीवनस्तरों में बहुत विषमता नहीं होती।

३. आन्तरिक गाँव की अपेक्षा छोर के गाँव में क्रमिक तथा मूक सांस्कृतिक आदान-प्रदान (trans-culturation) अधिक सम्भव है। न केवल निम्नतर

वर्ण और कबीले आगे बढ़े हुए अपने पड़ोसियों की संस्कृति के तत्व ग्रहण करते है वरन् उच्चतर और निम्नतर दोनों समूह परस्पर तत्व ग्रहण करते हैं।

४. सामाजिक मर्यादा के नियमन तथा जातियों की शक्ति में सरकारी संरक्षण का बहुत हाथ होता है। निदान, आन्तरिक गाँवों की अपेक्षा जहाँ धन तथा सामाजिक मर्यादा राजनीतिक कर्तृत्व तथा प्रभाव निर्धारित करते हैं, छोर के गाँव में लोगों पर सरकार का नियंत्रण अधिक प्रभावपूर्ण होता है।

५. छोर का गाँव बहुधा प्रवासियों को आकृष्ट करता है और जो प्रवास करते हैं उनके लिए स्थानीय दशाओं के अनुरूप अपने मूल्यों और मनोधारणाओं का अनुस्थापन (orientation) अपेक्षित होता है। जाति के कर्तृत्व और प्रवासियों की प्रतिष्ठा संचरना दोनों में कमी हो जाती है और सामाजिक सहभोज अथवा सहजीवन (symbiotic living) के फलस्वरूप एक नवीन मूल्य प्रणाली जन्म लेती है।

६. जहाँ मूल निवासी कबायली स्कन्ध के होते हैं वहाँ अग्रणी परिवारों तथा उनके नेताओं को प्रवासियों द्वारा कुछ मान प्राप्त होता है, परन्तु समय के प्रवाह से प्रवासी निर्धन कबायलियों का शोषण करते हैं और कबायली भूमि को गाँव की परिधि की ओर तितर-बितर कर उसे हथिया लेते हैं।

७. सामान्यतः जहाँ तक सामाजिक क्रिया का सम्बन्ध है छोर के गाँव में जागरूकता का अधिक विकास होता है और आन्तरिक गाँव की अपेक्षा सामाजिक आचारों और धार्मिक विश्वासों तथा संस्कारों के क्षेत्र में वह अधिक सहिष्णुता प्रकट करता है और एक दूसरे के त्योहारों और सामाजिक उत्सवों में लोग संयुक्त रूप से अधिक भाग लेते हैं।

८. कबायली क्रमशः प्रवासियों के रीति-रिवाजों को अपना लेते हैं, परन्तु आसंस्करण की इस प्रक्रिया का निर्देश एवं नियमन करने वाली किसी प्रभुत्वपूर्ण जाति के अभाव से कबायलियों को अपनी संस्कृतियों के प्ररूप (configuration) को अक्षुण्ण रखने में सहायता मिलती है —जिसका प्रतिनिधित्व नातेदारी की शब्दावलियों, कबायली प्रथाओं और अभिचारों की स्थिरता तथा कबायली बोलियों द्वारा भी होता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि प्रभुत्वपूर्ण जाति के प्रत्यय को आवश्यकता से अधिक तूल दे दिया गया है जिसका कारण संभवतः यह है कि अभी तक जिन गाँवों का अध्ययन हमने या विदेशी विद्वानों ने किया है वे किसी सिद्धान्त पर नहीं चुने गए हैं। किसी ने भी जिस गाँव में काम किया हो उसके चुनाव का औचित्य नहीं प्रमाणित किया है। क्यों सेनापुर या माधोपुर चुना गया और क्यों रनखंडी, किसी को ज्ञात नहीं। प्रायः सुविधा, मेलजोल स्थापित करने की सम्भावना, नगरों

से सहज संचार अथवा भूस्वामियों या ग्राम्य अभिजातवर्ग से सुविधायें प्राप्त होने के आश्वासन को दृष्टि में रख कर गाँव का चुनाव किया जाता है। एक जाति वाले गाँव की अपेक्षा बहुजातीय गाँव को तरजीह दी जाती है और यदि २०० से अधिक परिवार न हों तो समझा जाता है कि ठीक प्रकार से काम करने के लिए उतनी जन-संख्या समुचित है। यदि किसी राजपूत भूस्वामी की सहायता ली जाय तो वह गाँव निश्चित रूप से राजपूतों का गाँव होगा अथवा ऐसा गाँव होगा जिसमें प्रभुत्व-पूर्ण जाति राजपूतों की होगी। कोन ने एक ऐसे क्षेत्र में अध्ययन किया था जहाँ सभी गाँवों में राजपूतों के हाथों में ही शक्ति है। मोहना भी जिसका अध्ययन मैंने किया था राजपूत गाँवों की एक श्रृंखला से बद्ध है। ड्यूमॉण्ट का गाँव कलवारों का गाँव है। मेयर का गाँव भी राजपूतों का गाँव था। मेयर को देवास सीनियर राज्य के सभी गाँवों में प्रभुत्वपूर्ण जाति के रूप में राजपूत नहीं मिले, परन्तु उन्होंने यह सुझाव प्रस्तुत किया कि 'जहाँ वह जाति जिसे सबसे अधिक स्पष्ट रूप से प्रभुत्व-पूर्ण कहा जा सकता है, किसी क्षेत्र के सभी या अधिकांश गाँवों को भी नियंत्रित नहीं करती वहाँ इन अन्य गाँवों में उन जातियों की सत्ता के अधीन रहने की प्रवृत्ति होती है जो जातियाँ उक्त जाति के प्रति सहानुभूति रखती हैं और जो उसके साथ तादात्म्य स्थापित करने के हेतु उसकी रीतियों को ग्रहण कर लेती हैं तथा बाद में सहभोजी तथा मित्र हो जाती हैं"। इस कथन को यथावत् स्वीकार करना कठिन है। यदि हमने परस्पर अनुकूल (compatible) जातियों की अथवा उन जातियों की एक सूची तैयार की होती जिनकी एक दूसरे के साथ सहानुभूति है या राजपूतों के साथ सहानुभूति है तो अच्छा होता। किसी अन्य जाति की रीतियों को मात्र ग्रहण करने से ग्रहण करने वाली जाति संभव है उसके साथ सहभोजी अथवा उसकी मित्र न बन जाय। यदि हम यह मान बैठें कि ग्राम्य जीवन के प्रति-मान राजपूतों द्वारा स्थिर होते हैं या यह कि हिन्दू संस्कृति से अलग एक राजपूत संस्कृति है तो यह बात अनर्गल होगी।

प्रभुत्वपूर्ण जाति का प्रत्यय एक प्रकार से गड़े मुर्दे उखाड़ना है। हम एक सामन्ती समाज तथा एक विकासोन्मुख असामन्ती औद्योगिक या प्राविधिक विज्ञान-अनुस्थापित समाज के बीच घपला कर रहे हैं और ग्राम्य पुनर्वास की कुंजी प्रभुत्व में ढूँढते हैं जो किसी काल में सामन्ती व्यवस्था का एक तथ्य था। अनेक कबायली समाजों, विशेषकर बिहार में छोटा नागपुर में परम्परागत नेतृत्व के स्थान पर जिसका प्रतिनिधित्व गाँव के वृद्ध जन, गाँव का पुरोहित और गाँवों तथा गाँव-समूहों के मुखिया करते थे, एक नए नेतृत्व का आविर्भाव हुआ है जिससे कल्याण की आशा की जा सकती है। भूस्वामित्व या जैसा बिहार में कहते हैं 'खूँटकट्टीदारी'

तक ही नेतृत्व के स्रोत सीमित नहीं हैं तथा नए नेता आवश्यक रूप से उन परिवारों में से नहीं निकले हैं जिनके पास भूमि है या गाँव में जिनके पैतृक अधिकार हैं। शिक्षा ने कबायली नेतृत्व के प्रतिमान को पर्याप्त आघात पहुँचाया है और निकट भविष्य में जनता के एक ऐसे वर्ग की सृष्टि की बहुत सम्भावना है जो अधिक जागरूक होगा और संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों तथा सुसाध्य लाभों का उपयोग करने के लिए अधिक उत्सुक होगा। आन्तरिक गाँवों में, उदाहरणार्थ अवध में, सामन्ती नेतृत्व मन्द गति से समाप्त हो रहा है। अभी तक बहुसंख्यक होने तथा अपेक्षाकृत अपनी अधिक सामाजिक जागरूकता के कारण भूस्वामियों ने राजनीतिक शक्ति हथिया रखी थी, परन्तु ऐसी शक्ति को स्थिर रखने की कुंजी नातेदारी या उनकी जाति मर्यादा में न हो कर नए मित्र बनाने में निहित है, ऐसे मित्र जिनका विशेष सुविधाप्राप्त जातियों का ही होना आवश्यक नहीं। उदाहरणार्थ, आज इटावा, कानपुर, फ़र्रूख़ाबाद, एटा और मैनपुरी के राजपूत अनुभव करते हैं कि भारतीय इतिहास के मध्ययुग से ही, जब एक सामन्ती व्यवस्था के रूप में उनका उत्थान हुआ, जिन अधिकारों और विशेष सुविधाओं का उपभोग वे करते आ रहे हैं उन्हें प्राप्त करने में उनकी सामाजिक मर्यादा और सम्पन्नता असमर्थ है। स्थानीय परिषदों, पंचायतों तथा वयस्क मताधिकार पर आधारित समान संघटनों में उनका बहुमत अब नहीं रहा। गाँव के राजतंत्र पर राजपूत अपना प्रभाव बनाए रखना चाहते हैं और अन्य जातियों तथा समुदायों से मैत्री स्थापित किए बिना यह संभव नहीं है। शोरगार, शोरकार और उनसे मिलती-जुलती जातियाँ, जिनका कभी रजवाड़ों के तोपची उनके धंधे अर्थात् बारूद बनाने के कारण अनादर करते थे, राजपूत उत्पत्ति का दावा प्रस्तुत कर रही हैं और इन जातियों के अनेक परिवारों ने अधिक लाभदायक व्यापार और धंधे ग्रहण कर लिए हैं और पर्याप्त रूप से समृद्ध हैं। राजपूत जिन्होंने इन जातियों को पतित मान रखा था, इनकी संख्या तथा इनके सामाजिक दावे में अपनी मर्यादा और राजनीतिक शक्ति की पुनःप्राप्ति की कुंजी तथा अन्य जातियों पर प्रभुत्व की सम्भावना देखते हैं। उन्होंने स्वेच्छा से शोरकारों के दावे स्वीकार कर लिए हैं और एक सामाजिक विलयन कर रहे हैं जिसका प्रभाव, आशा है, मतदान तथा प्रभुत्व के निमित्त संघर्ष में परिलक्षित होगा।

अवध के अधिकांश गाँवों में सामन्ती प्रभुत्व जीर्ण-शीर्ण हो गया है और जिस नई स्थिति ने जन्म लिया है उसने उच्चतर वर्णों की आकांक्षाओं और उनकी सामाजिक मर्यादा को पीछे ला खींचा है।

परन्तु प्रभुत्व के संघर्ष में सामन्ती जातियों ने, विशेषकर आन्तरिक गाँवों में ठाकुरों ने, हथियार नहीं डाले हैं। इसके विपरीत छोर के गाँवों की स्थिति सामन्ती सत्ता अथवा सामन्ती अधिकार का समर्थन नहीं करती और आन्तरिक गाँवों के समान समूह गतिशास्त्र उच्चतर वर्णों तक ही सीमित नहीं है वरन् सभी जातियों और यदि कबीले हुए तो उन्हें भी परिवेष्टित करता है। यही कारण है जो आन्तरिक गाँवों की अपेक्षा यहाँ गाँव के राजतंत्र का स्वरूप अधिक बार बदलता रहता है और गाँव के राजतंत्र में सभी जातियों और कबीलों का सक्रिय कर्तृत्व रहता है तथा उन सब का समूह गतिशास्त्र में योगदान होता है।

छोर के गाँवों में जाति संचरना की बहुत कुछ कट्टरता नष्ट हो जाती है और जातियों के बीच संचार पर तथा अपनी जाति से भिन्न धंधों या व्यवसायों में भाग लेने पर अन्तरजातीय सम्बन्ध आधारित होते हैं।

छोर का गाँव साधारणतः, किन्तु अनिवार्य रूप से नहीं, विभिन्न प्रजातीय तथा सामाजिक समूहों के बीच संस्कृति के समान तत्वों की ओर विशेष ध्यान आकर्षित कराता है और संस्कृति-निर्माण की एक प्रक्रिया प्रारम्भ होती है जो भेदों को समाप्त करती है, किन्तु आवश्यक नहीं कि एक सम्मिश्रित संस्कृति को जन्म दे। उत्तर प्रदेश के छोर वाले एक गाँव के, जिसमें कबीले और जातियाँ दोनों निवास करती हैं, हाल के एक अध्ययन में गाँव में कतिपय प्रकार की ग्राम्य एकतायें देखी गई हैं।

मिर्ज़ापुर ज़िले में रॉबर्ट्सगंज से ३२ मील दूर हाथीनाला नामक स्थान है जहाँ से तीन मील पर पिपरी रोड जाती है। इस सड़क से एक मील की दूरी पर बलुगा गाँव स्थित है। यह एक बहुजातीय गाँव है जिसमें ५७ परिवार हैं। इनमें २४ परिवार मझवार कबीले के, १२ खरवार और हजाम हैं। आन्तरिक गाँवों की विपरीत जातियाँ सहभोजी हैं और लोहरा को छोड़ कर सभी जातियाँ परस्पर जल ग्रहण करती हैं। धातु के बर्तन में पकाया भात अशुद्ध नहीं माना जाता और जिससे जल ग्रहण किया जा सकता है उससे भात भी ग्रहण कर सकते हैं। रोटी जिसे अन्यत्र कच्चा भोजन मानते हैं इस गाँव में पक्का भोजन मानी जाती है और लोहरा को छोड़ कर अन्य किसी से ली जा सकती है। कबायली और सवर्ण सामाजिक क्रम में शुद्ध माने जाते हैं। ग्राम से बाहर विवाह के नियम के कारण विवाह द्वारा सम्बन्धित नातेदार गाँव के बाहर के ही होते हैं और ग्रामवासियों ने एक भाईचारा स्थापित कर लिया है और वे उत्सवों तथा पर्वों में या अपने धंधों में परस्पर सहायता करते हैं। एक समुदाय के सदस्य एक भिन्न समुदाय के सदस्यों के लिए नातेदारी के शब्दों का प्रयोग करते हैं और वयस् के अनुरूप आदरभाव प्रदर्शित करते हैं। अभिचार-सम्बन्धी एकता अधिक विशिष्ट प्रतीत होती है क्योंकि कबायली

पुरोहित ग्रामवासियों तथा अलौकिक शक्तियों के सम्बन्धों को पुष्ट करता है और गाँव के पवित्र कुंज में आराधना करता तथा बलि देता है जैसी कबायलियों में प्रथा है। अपने पर्वों में ग्रामवासी कर्तृत्वों में योगदान देते हैं और निस्संकोच भाग लेते हैं। कबायली पर्व अकबायलियों को आकृष्ट करते हैं और कबायली हिन्दू पर्वों में बिना हिचक के सम्मिलित होते हैं। कबायलियों का फागू पर्व हिन्दुओं की होली के साथ-साथ पड़ता है और कबायली लोग अपने हिन्दू मित्रों पर बाँस की पिचकारियों से रंग डालते हैं तथा हिन्दू इसके बदले में अपने कबायली पड़ोसियों के माथों पर लाल अबीर लगाते हैं। होली के अवसर पर कबायली पुरोहित पवित्र अग्नि में जलाने के लिए एक पौदे को काटता है, परन्तु वह हिन्दू देवता को एक मुर्गी की बलि भी देता है और असत् पर सत् की विजय का धार्मिक आख्यान सुनता है। दीवाली और दशहरा के पर्व सभी जातियाँ और समुदाय मनाते हैं और कबायली पर्व, यथा करम, हिन्दुओं और कबायलियों को परस्पर समीप लाते हैं और वे उन (कबायली) पर्वों को इकट्ठा मनाते हैं। मझवार अपने हिन्दू पड़ोसियों के रामनवमी पर्व में सम्मिलित होते हैं जब सवर्ण हिन्दू रामलीला और नौटंकी का आयोजन करते हैं। राम के विश्वस्त सहयोगी महावीर स्वामी की पताका ले कर कबायली जुलूस निकालते हैं। पाठशाला के बालक सरस्वती की पूजा करते हैं और कबायली बालक अपने संगी छात्रों के साथ इस अवसर के आनन्द में भाग लेते हैं और प्रसाद-वितरण की प्रतीक्षा करते हैं। क़ानूनी झगड़े साधारणतः गाँव में ही तय हो जाते हैं और आन्तरिक गाँवों की अपेक्षा जातियों और कबीलों के बीच की तथा जातियों में परस्पर सामाजिक दूरी कम दृष्टिगोचर होती है। बलुगा का उदाहरण छोर के गाँवों के संभावित स्वरूप को दिखलाने के लिए दिया गया है। बलुगा एक मिश्रित गाँव है जिसमें कबीले और जातियाँ दोनों हैं और कबीले ही बहुसंख्यक हैं। भूमि के स्वामी कबायली और जाति वाले दोनों हैं। भूस्वामियों और किसानों में, जिनमें जाति वाले भी हैं, तनातनी बिलकुल नहीं है। ग्रामवासियों में न तो अन्तरनिर्भरता वाले, न क्रमगत सम्बन्ध हैं और एक समुदाय का दूसरे समुदाय के अधीन या उस पर निर्भर होने की अपेक्षा दोनों में परस्पर समान व्यवहार तथा सहयोग पाया जाता है।

छोर के प्रत्यय का प्रयोग परिधि के गाँवों के संदर्भ में किया गया है और हमने एक कबायली गाँव का वर्णन मानों छोर-संस्कृति की प्रकृति दर्शाने के लिए किया है। यह प्रत्यय पारिस्थितिक (ecological) अथवा भौगोलिक प्रतीत हो सकता है, परन्तु यह प्रत्यय किसी राज्य के आन्तरिक भागों में छोर के गाँवों के समीप स्थित उन गाँवों पर भी लागू हो सकता है जिनमें किसी एक विशेष जाति

की प्रभुत्वपूर्ण मर्यादा होती है और उस जाति का गाँव के राजतंत्र में प्रभुत्वपूर्ण कर्तृत्व होता है, यथा जाटों या ठाकुरों के गाँव। किसी छोर-संस्कृति के संदर्भ महत्व-पूर्ण होते हैं क्योंकि वे एक समस्तरीकरण व्यक्त करते हैं। उच्चतर वर्णों के प्रभुत्व वाले गाँवों में निम्नतर वर्ण, जो सामाजिक अक्षमता के शिकार और उच्चतर वर्णों द्वारा शोषित होते हैं, उच्चतर वर्णों के साथ एक स्तर प्राप्त करते हैं और उनके साथ धंधों और अधिकारों तथा विशेष सुविधाओं का समान उपभोग करते हैं। उन्हें ऐसी वाणी का बल मिलता है जिससे वे अ-छोर वाले गाँवों में वंचित होते हैं। अतएव छोर के गाँव मूढ़तापूर्ण जाति-विषयक जटिलता तथा ग्राम्य पुनर्वास की समस्याओं के हल प्रस्तुत करते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में छोर के जिस गाँव का मैं वर्णन कर रहा हूँ, आशा है वह एक आधाररेखा प्रस्तुत करेगा जिससे आयोजित अथवा हमारी ग्राम्य संस्कृतियों के साँचे में अंतर्निहित सांस्कृतिक परिवर्तन का मूल्यांकन सरलतर हो सकेगा जिसका अभाव जातियों और कबीलों के ऊर्ध्वाधर और क्रमगत अनुस्थापन में प्राय: मिलता है। अन्तरनिर्भरता कोरी कल्पना हो सकती है और यदि यह वास्तविक है भी तो स्वेच्छाकृत है न कि विधेयात्मक। यह तथ्य तथा अन्य अनेक तथ्य छोर के गाँव को एक विशिष्ट अस्तित्व प्रदान करते हैं, अत: छोर का गाँव भावी अनुसन्धान के हेतु एक उपयुक्त विषय है।

यह अध्ययन कॉर्नेल-लखनऊ अनुसंधान योजना द्वारा प्रारंभ किया गया था। मैं अपने अमेरिकी सहकर्मी प्रो. एम्. आर्. गूडाल का जो उस समय कॉर्नेल योजना के निर्देशक थे, बहुत आभारी हूँ। उस समय जब कॉर्नेल और लखनऊ के विश्व-विद्यालय आपस के इस समझौते को सुविदित कारणों से समाप्त करने का विचार कर रहे थे प्रो. गूडाल ने दुद्धी योजना का पूरा उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया था। प्रो. गूडाल की सहायता के बिना हम इस योजना को कार्यान्वित नहीं कर सकते थे। जब कॉर्नेल विश्वविद्यालय को अपनी भारत योजना स्थगित करनी पड़ी योजना आयोग के कार्यक्रम मूल्यांकन संघटन (Programme Evaluation Organization) को, जिसने इस योजना को स्वीकृति दे दी थी, आगे आना पड़ा। पी. ई. ओ. द्वारा स्वीकृत आर्थिक अनुदान ने यह योजना पूर्ण करने में सहायता की यद्यपि जिन आर्थिक कठिनाइयों और अनिश्चित परिस्थितियों का सामना हमें क्षेत्र कार्य के अंतिम चरण में करना पड़ा उनको देखते हुए इस योजना को चलाते रहने के लिए आदर्श परिस्थितियाँ नहीं थीं। इन कठिनाइयों और सीमाओं को जानते हुए भी हम अपने अध्ययन में किसी न किसी प्रकार आगे बढ़ते ही रहे।

अनुसन्धान, संघटन, प्रविधि आदि का सामान्य प्रतिमान पी. ई. ओ. द्वारा सुझाया गया था परन्तु अध्ययन, विश्लेषण इत्यादि की वास्तविक प्रविधियाँ जो मैंने अपनाईं वे मुख्यतः मेरी निज की चुनी हुई हैं। इस पुस्तक में उल्लिखित तथ्य तथा मत सर्वथा मेरे हैं और उनके लिए पी. ई. ओ. तनिक भी उत्तरदायी नहीं है।

श्री महेशचन्द्र प्रधान, श्री चन्द्रसेन, श्री सुनील मिश्र और श्री चन्द्रभाल मणि त्रिपाठी ने क्षेत्र अध्ययन में मेरी सहायता की है। श्री एस्. के. आनन्द और कु. हेप्सी डेविड ने मुझे विश्लेषण कार्य में सहायता दी। श्री कृपाशंकर माथुर, श्रीमती एस्थर तिवारी, कुमारी स्नेह भार्गव तथा विभाग के मेरे अन्य सहकारियों ने अनेक प्रकार से मेरी सहायता की। इन सभी का मैं अत्यन्त आभारी हूँ।

मुझमें हिन्दी लिखने की क्षमता नहीं है। मैं यह अनुभव करता हूँ कि उत्तर प्रदेश में तीस वर्षों से अधिक समय से रहते हुए भी मैं हिन्दी भाषा की प्राथमिक विशेषताओं से परिचित न हो सका जिसके लिए मेरी निश्चेष्टता ही उत्तरदायी रही है। मेरे शिष्य एवं मित्र श्री चन्द्रभाल मणि त्रिपाठी ने मुझे हिन्दी में एक मौलिक पुस्तक लिखने और अंग्रेज़ी संस्करण के साथ प्रकाशित करने के लिए बहुत प्रोत्साहित किया। श्री त्रिपाठी ही वह व्यक्ति हैं जिन्होंने मेरी कहानी को हिन्दी में रूपान्तरित करने का उत्तरदायित्व लिया।

प्रस्तुत पुस्तक की प्रमुख विशेषता इसकी अपनी मौलिकता है। संभवतः यह अनुवाद के दोषों से सर्वथा अछूती न रह सकी हो। किन्तु इसकी अनन्य विशेषता इस तथ्य में निहित है कि इसके माध्यम से एक अनुभवी अध्यापक और एक विश्वस्त एवं समर्थ छात्र अपने संयुक्त प्रयास के फलस्वरूप ग्राम्य जीवन का एक सजीव और यथातथ्य वर्णन जो मुख्यतः क्षेत्रानुसन्धान पर आधारित और वस्तुनिष्ठ (objective) है, प्रस्तुत कर सके हैं। इस पुस्तक के साथ ही अंग्रेज़ी में लिखी हुई मेरी पुस्तक भी प्रकाशित हो रही है।

धीरेन्द्रनाथ मजूमदार

लखनऊ विश्वविद्यालय
मई १९६०

अनुवादक का वक्तव्य

उत्तर प्रदेश के मिर्ज़ापुर ज़िले के अन्तर्गत दुद्धी के अर्ध-कबायली क्षेत्र में स्थित एक मिश्रित गाँव की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि में सामुदायिक विकास योजना द्वारा लाए गए परिवर्तनों का विवरण तथा विश्लेषण प्रस्तुत पुस्तक में दिया गया है जिसे न केवल सामाजिक विज्ञानों के विद्यार्थी वरन् प्रशासकीय कर्मचारीगण, विशेष रूप से विकास कार्य में रत कर्मचारीगण, बहुत लाभप्रद पायेंगे। इस कृति द्वारा स्वर्गीय डॉक्टर धीरेन्द्रनाथ मजूमदार ने सैद्धान्तिक स्तर पर 'छोर के गाँव' (Fringe Village) का एक नया प्रत्यय भी प्रस्तुत किया है।

१९५८ में जब मैं लखनऊ विश्वविद्यालय के नृविज्ञान विभाग में अस्थायी तौर पर एक सहायक प्रोफ़ेसर के पद पर काम कर रहा था गुरुवर डॉ. मजूमदार ने इच्छा प्रकट की थी कि अंग्रेज़ी में लिखी गई उनकी इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद अंग्रेज़ी की पुस्तक से पहले प्रकाशित हो। मेरे दिल्ली आने पर अगस्त १९५९ में डॉ. मोशाय ने अनुवाद-कार्य मुझे ही सौंपा। दो मास में अनुवाद पूरा कर मैंने उनके पास भेज दिया था। भूमिका जिसमें छोर के गाँव के नए प्रत्यय का सैद्धान्तिक विवेचन है अप्रैल १९६० के आरम्भ में अनुवाद के लिए मेरे पास पहुँची और दो-तीन दिन में काम पूरा कर ५ अप्रैल १९६० को उसे दिल्ली में डॉ. मोशाय को मैंने सौंप दिया था। स्वप्न में भी उस समय हमें आभास न था कि उस सौम्य विद्वान का यह अन्तिम दर्शन होगा। ३१ मई १९६० की रात में अकस्मात् उन्होंने महाप्रयाण किया। भारतीय नृविज्ञान के इस अग्रणी का स्थान बहुत दिनों तक रिक्त ही रहेगा।

डॉ. मजूमदार के असामयिक निधन के पश्चात् प्रेस में पड़ी उनकी पाण्डुलिपियों के प्रकाशन में भी शिथिलता आ गई। सितम्बर १९६० में श्रीमती माधुरी मजूमदार की आज्ञा से मैंने प्रूफ़-संशोधन का काम अपने हाथों में लिया। पाण्डुलिपि में कुछ चित्रों आदि के अभाव में तथा अन्यान्य कारणों से लगभग छः मास प्रेस में इस पुस्तक का काम ठप पड़ा रहा और पेज-प्रूफ़ न मिल सके।

पुस्तक में कुछ कमियों की ओर संकेत कर देना आवश्यक-सा है। डॉ. मोशाय पुस्तक में दुद्धी क्षेत्र तथा चितौरा गाँव के मानचित्र देना चाहते थे परन्तु उनके काग़ज़ों में ये मानचित्र न ढूँढे जा सके। पहले पृष्ठ के अन्त में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा नियुक्त समिति की जिस रिपोर्ट का उल्लेख है उसका सारांश प्रस्तुत ग्रंथ के अन्त में संलग्न नहीं किया जा सका। पृ. ३१ की दसवीं पंक्ति में और पृ. २०९ पर २. ङ के अन्तर्गत कुछ शब्द छूट गए हैं। पृ. २११, २१२, २१४, २१६ पर क्रमशः सिंचाई,

हरी खाद, बीज वितरण तथा फ़स्लों की अदला-बदली से सम्बन्धित सारणियों में १९५६-५७ के न्यास भी नहीं दिए जा सके।

अनुवाद के काम में मुझे भाग्यवश अपने पूज्य पिता पं. चंद्रबली त्रिपाठी का निरन्तर संदर्शन उपलब्ध रहा और मिर्ज़ापुर ज़िले में प्रयुक्त होने वाले स्थानीय शब्दों तथा रीति-रस्मों की सही जानकारी के लिए मैं अपनी पूजनीया माता श्रीमती दुर्गावती त्रिपाठी पर निर्भर रहा। मेरे अनुज चन्द्रधर ने प्रूफ़-संशोधन में मेरी यथेष्ट सहायता की। पारिभाषिक शब्दावली के सम्बन्ध में समय-समय पर मुझे भारत सरकार के हिन्दी निदेशालय के डॉ. सुरेश अवस्थी से बहुमूल्य परामर्श मिलता रहा जिसके लिए मैं उनका आभारी हूँ।

चन्द्रभाल त्रिपाठी

जयपुर
९ अगस्त १९६१

पु.—हमें आशा थी कि यह पुस्तक १९६१ में प्रकाशित हो जायगी किन्तु अप्रत्याशित कारणों से ऐसा सम्भव न हुआ। अनुक्रमणिकायें तैयार करने के लिए पुस्तक के छपे पृष्ठ दिसम्बर १९६१ के आरम्भ में मेरे पास आने शुरू हुए और इनकी अन्तिम किस्त १ फ़रवरी १९६२ को प्राप्त हुई। पाँच अनुक्रमणिकायें अब तैयार हो सकी हैं।

च. त्रि.

जयपुर
६ फ़रवरी १९६२

विषय सूची

प्रथम अध्याय

दुद्धी और उसके निवासी

उत्तर प्रदेश के दक्षिण-पूर्वी प्रांता में मिर्ज़ापुर का विशाल ज़िला स्थित है। इसका क्षेत्रफल ५,२३८ वर्ग मील है और इसमें विविध प्रकार की प्राकृतिक सुषमा के दर्शन होते हैं। इसके उत्तरी भागों में गंगा घाटी की उर्वरा भूमि है। कृषि सहज है तथा क्षेत्र की जनसंख्या सघन। ज़िले के मध्य भाग में दक्षिणी पठार के उत्तरी छोर हैं और दक्षिण में कैमूर की पहाड़ियाँ तथा सोन नदी। सोन की घाटी तथा समीपवर्ती क्षेत्र में अतुल सम्पत्ति छिपी पड़ी है। नदी तट की भूमि उर्वरा है तथा कैमूर की पहाड़ियों में पत्थर के चूने के ढेर के ढेर जमा हैं। कैमूर के दक्षिण की प्राकृतिक सुषमा का क्या कहना? भारतवर्ष में इससे अधिक मनोहर प्रदेश अन्यत्र न मिलेगा। रिहन्द बाँध के निर्माण से विशेष रूप से इस जनपद के विकास की सम्भावनायें बढ़ गई हैं।

सोन के नीचे ज़िले का दक्षिणी भाग पर्वतीय तथा वनाच्छादित है। यद्यपि यहाँ की भूमि उर्वरा नहीं तथा कृषियोग्य भूमि केवल नदियों की घाटियों में उपलब्ध है, इस क्षेत्र में वन तथा खनिज की विशाल सम्पत्ति है। कोयला, लोहा तथा सीसा की अनेक खानें वर्तमान हैं जिनका सुगमता से उपयोग किया जा सकता है। इन सब के होते हुए भी यह क्षेत्र घोर रूप से पिछड़ा हुआ और दारिद्र्यग्रस्त है। बहुत बड़ी संख्या में इसके निवासियों को एक समय के भोजन पर ही निर्वाह करना पड़ता है। निरक्षरता का चारों ओर साम्राज्य है। अस्सी से नब्बे प्रति शत लोग रतिज रोगों के शिकार हैं। अधिकांश जनता मद्यपी है तथा असंयम के परिणामस्वरूप वेश्या-वृत्ति प्रचलित है। इस क्षेत्र की निर्धनता तथा पिछड़ेपन का एक मुख्य कारण यह है कि ब्रिटिश और वर्तमान सरकार दोनों लगातार इसकी उपेक्षा करती रही हैं। संचार के साधनों तथा अन्य सुविधाओं के अभाव में प्रशासकीय तंत्र सुचारु रूप से कार्य नहीं करता। कम से कम कुछ दिनों पूर्व तक ढंग की सड़कें थीं ही नहीं और इस क्षेत्र से रेल की लाइनें भी नहीं गुज़रतीं। जीवन की कठिनाइयों के कारण सरकारी अधिकारीगण यहाँ कार्य करने से हिचकते हैं जब तक उन्हें विशेष सुविधाओं का लोभ न दिया जाय।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद ही उत्तर प्रदेश सरकार ने दुद्धी तथा सोन घाटी की अवस्थाओं की जाँच के लिए एक समिति नियुक्त की। उसकी रिपोर्ट के तथ्यों तथा सिफ़ारिशों का संक्षिप्त सारांश प्रस्तुत ग्रन्थ के अन्त में संलग्न है। इस

क्षेत्र में सांस्कृतिक परिवर्तन के मूल्यांकन के हेतु उन्हें ही आधारभूत न्यास (base-line data) माना गया है।

दुद्धी के निवासी

दुद्धी एक पिछड़ा क्षेत्र है जिसमें बहुत बड़ी संख्या में जातियाँ तथा कबीले साथ-साथ रहते हैं। ज़िले के बिलकुल भीतरी भागों में स्थित गाँवों में अधिकांश कबायली निवास करते हैं। कुछ प्रमुख तथा बड़े गाँवों में जनसंख्या मिश्रित है, कुछ गाँवों में अलग-अलग कबीलों के लोग ही निवास करते हैं, परन्तु अनेक गाँवों में कई कबीले मिले-जुले रहते हैं अथवा जैसा प्रायः देखने में आता है एक दूसरे से न्यूनाधिक दूरी पर बसे हुए अलग-अलग टोलों में रहते हैं। इसी प्रकार किसी-किसी गाँव में एक घर किसी चेरो का है तो दूसरा घर कुछ सौ गज़ की दूरी पर किसी मझवार या माझी का और तीसरा किसी पनिका का। एक दूसरे से लगे हुए दो घर नहीं बनाए जाते और कभी-कभी वे एक दूसरे से 'हाँक भर' की दूरी पर स्थित होते हैं, अर्थात् उनके बीच की दूरी दो फ़र्लांग या उससे भी अधिक होते हुए भी एक घर का चीख़ना-चिल्लाना दूसरे घर तक सुनाई देता है। भीतरी भागों में बसे हुए गाँवों में भी कबीलों के अतिरिक्त शिल्पकार और निम्न जातियाँ निवास करती हैं, यथा चमार, कलवार, तेली, अहीर और कुर्मी। कुछ गाँवों में बाहर से आ कर मुसलमान भी बस गए हैं यद्यपि उनकी संख्या नगण्य है। मुसलमान प्रायः नगरों के इर्दगिर्द ही निवास करते हैं, प्रस्तुत संदर्भ में दुद्धी में और उसके आसपास। दुद्धी में ब्राह्मणों, ठाकुरों, नाइयों, धोबियों, चमारों, कुम्हारों, तेलियों, कुनबियों और कोइरियों के कुछ परिवार हैं। कुनबी और कोइरी विशुद्ध रूप से कृषक जातियाँ हैं जो दुद्धी के आसपास के गाँवों में अधिकाधिक संख्या में निवास करती हैं। उच्च जातियाँ प्रायः बिहार से प्रवास कर के यहाँ पहुँची हैं। ये जातियाँ वाणिज्य-व्यवसाय के लिए आईं और उसी समय धनहीन ब्राह्मण परिवारों ने कबायली और अर्ध-कबायली समुदायों की सेवा कर तथा उनके स्वदेशीय उत्सवों तथा पर्वों को सम्पन्न करा 'जजमानी' प्रारम्भ की। यहाँ पर कुछ अग्रवाल बनियों तथा अग्रहरियों अथवा साहूकारों के परिवार हैं जो धनऋण देते और व्यापार करते तथा कबायली लोगों का शोषण करते हैं। दुद्धी में धनऋण एक बहुत लाभदायक व्यवसाय रहा है और अब भी है तथा सभी समुदायों के लोग, जिनमें मुसलमान भी सम्मिलित हैं, पिछड़े कबायलियों और जातिवालों को द्रव्यऋण दे कर बहुत बड़े पैमाने पर किन्तु बेईमानी के साथ लाभ उठाते हैं।

विभिन्न कबायली और अकबायली समुदायों की सांस्कृतिक मर्यादा (status) को चित्र-रूप* में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—
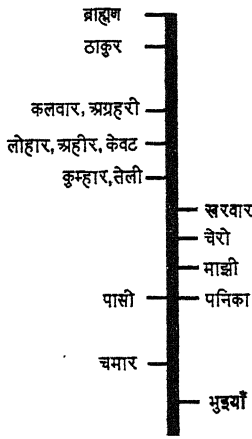
ये सभी कबीले और जातियाँ न्यूनाधिक मात्रा में स्वतंत्र और अन्तर्वैवाहिक (endogamous) समुदाय हैं और सर्वथा पृथक् समूहों के रूप में रहती हैं जब तक आर्थिक उद्देश्यों के हेतु उनका साथ-साथ रहना आवश्यक न हो जाय। दुद्धी की जनसंख्या में सबसे आदिम तत्व कोरवा है। अघरिया उसी प्रजाति (race) के हैं जिसके कोरवा, किन्तु अघरिया एक मुंडा जनपदीय बोली बोलते हैं जो ऑस्ट्रो-एशियाई (Austro-Asiatic) भाषा परिवार की है। अघरिया कृषि-सम्बन्धी उपकरणों का निर्माण और पूर्ति करते हैं और इस व्यवसाय के कारण हाटों में जाते हैं तथा कबायली गाँवों में भी इन कारीगरों का स्वागत होता है। अपने भ्रमणकारी व्यापार के कारण अघरिया समूचे क्षेत्र में बिखरे हुए हैं और यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक गाँव में स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कोई अघरिया परिवार हो। इस कबीले के अधिकांश लोग खानाबदोशी का जीवन बिताते हैं और कुछ आवारा हो गए हैं।

अघरिया के बाद माझी या मझवार आते हैं जिनकी मर्यादा कृषकों की है और जो अन्य अधिकांश कबीलों से अधिक आगे बढ़े हुए हैं। दुद्धी के समीप निवास करने वाले माझी आसंस्करण (acculturation) के परिणामस्वरूप कृषक जातियों के स्तर तक पहुँच गए हैं, परन्तु दक्षिण की ओर तथा मध्य प्रदेश के सरगूजा ज़िले की सीमा पर निवास करने वाले माझी अभी तक खानाबदोशी का जीवन बिताते हैं और जड़ों, फलों तथा आखेट किए जाने वाले पशुओं पर निर्भर रहते हैं।

खरवार एक अन्य आदिम कबीला है किन्तु उनमें से कुछ बड़े पैमाने पर कत्थे के उत्पादन में लगे हैं। बहुतों ने यज्ञोपवीत धारण कर लिया है और अपने कबायली सम्बन्ध को अस्वीकार कर वे क्षत्रियोत्पत्ति का दावा करते हैं। कत्था उत्पादन में लगे हुए खरवारों को ठेकेदार फुटकर कामों पर लगाते हैं। वे एक जंगल से दूसरे

---

*यह चित्र श्री. चन्द्रभाल त्रिपाठी के, जो स्वर्गीय लेखक के छात्रों और बाद में सहयोगियों में से रह चुके हैं, सौजन्य से प्राप्त हुआ है। मूल चित्र लेखक द्वारा भेजी गई पांडुलिपि के साथ नहीं था और न ही उसे उनके कागज़ों मे पाया जा सका।—प्रकाशक

जंगल में घूमते रहते हैं और कत्थे के वृक्षों के समूहों के समीप अस्थायी पत्तेदार टट्टियाँ गाड़ लेते हैं और एक स्थान पर तब तक रहते हैं जब तक वहाँ का कच्चा माल समाप्त नहीं हो जाता।

चेरो जो दुद्धी के प्राचीन निवासी हैं अब भी कबायली पुरोहित और ओझा के रूप में काम करते हैं। उनका दुद्धी के समग्र कबायली समुदाय पर यथेष्ट प्रभाव है। उनका दावा है कि किसी समय वे इस भूखंड के स्वामी थे। आज भी जादू, ओझाई और टोने-टोटकों के अभ्यास के द्वारा वे अपना महत्व बनाए हुए हैं और उन्होंने अन्य कबीलों पर अपना आतंक जमा रखा है तथा अपनी रहस्यमय शक्तियों के कारण अब भी कुख्यात हैं। वे दुष्ट प्रेतों और अनिष्टकारी देवताओं को बुलाते और मनाते हैं और मंत्र-तंत्र द्वारा उनकी प्रशस्ति करते हैं। चेरो कबायली लोगों के बैगा होते हैं। दुद्धी से तीन मील की दूरी पर रजखड़ में एक चेरो बैगा प्रत्येक वृहस्पति-वार को देवी-देवताओं और भूत-प्रेतों को जगाता है, यद्यपि यदि उसे यथेष्ट रूप से उकसाया जाय तो वह अन्य दिन भी जगा सकता है। चेरो प्रायः परहिया कहलाते हैं और उनके शारीरिक गुणों को देख कर उनकी प्रजातीय पहचान के विषय में दो रायें नहीं हो सकतीं। एक वृद्ध चेरो ने हमें बतलाया कि किस प्रकार बंगाल के मुहाने का सारा प्रदेश चेरो लोगों के आधिपत्य में था और किस प्रकार कालान्तर में वे बिखर गए और अलग-अलग नामों से पुकारे जाने लगे। कर्नल डाल्टन ने चेरो लोगों को गंगा के मैदान का अंतिम 'कोल' शासक कबीला कहा है। बुकानन ने चेरो लोगों की द्राविड उत्पत्ति की ओर संकेत किया है। आज चेरो कबीले का आसंस्करण हो चुका है। एक ओर वे असंख्य भूत -प्रेतों और रोगों से सम्बन्धित छोटे-मोटे देवी-देवताओं की सेवा करते हैं तो दूसरी ओर अनेक हिन्दू देवी-देवताओं की उपासना। रजखड़ का चेरो बैगा लिंग तथा देवी काली की उपासना करता है। काली के प्रतीक-रूप में स्थानीय हाट से मोल लिया हुआ देवी का एक भद्दा-सा चित्र है। चेरो लोगों ने हिन्दू पर्वों और त्योहारों को मनाना आरम्भ कर दिया है जिसके कारण उनको एक कबीले के रूप में जो मर्यादा प्राप्त होने का अधिकार था उससे उच्चतर मर्यादा प्राप्त हो गई है। इस परिवर्तन की सहायता से कबीलों पर चेरो लोगों का प्रभाव और बढ़ गया है क्योंकि वे कबायली अपने कबायली देवताओं और भूत-प्रेतों को मनाने की प्रभावोत्पादकता के बारे में सन्देह करने लगे हैं। बिहार के समीपवर्ती ज़िलों में निवास करने वाले चेरो लोगों पर हिन्दू प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक है। ये चेरो अपनी उत्पत्ति एक सरदार से बतलाते हैं जो बिहार के शाहाबाद ज़िले में चयनपुर नामक एक छोटे-से नगर में राज्य करता था। बिहार के चेरो निज को कबायली

नहीं मानते। वे अब जादू और ओझाई का अभ्यास नहीं करते और विवाह तथा अन्य सामाजिक उत्सवों में संस्कार सम्पन्न कराने के लिए ब्राह्मण पुरोहित तक को बुलाते हैं।

मझवार या माझी गोंड हैं। वे दुद्धी के कबायली लोगों में सबसे बढ़े हुए हैं। दुद्धी के समीपवर्ती अधिकांश गाँवों में वे स्थायी रूप से कृषिजीवी हो गए हैं तथा इस क्षेत्र की सफलतम कृषक जातियों—कोइरी और कुनबी—से प्रतिस्पर्धा कर सकते हैं। सारंगढ़ और मध्य प्रदेश के अन्य भागों में स्थित अपने मूल स्थान उन्हें स्मरण हैं और स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व के भारत में शासक गोंड सरदारों से उनका सम्बन्ध स्थापित करने वाली अनेक कहानियाँ परम्परा से चली आ रही हैं। माझियों के अपने पुरोहित होते हैं जिन्हें वे पठारी कहते हैं। इनमें से अनेक चारण और वंशवृत्तकार (genaeologists) हैं जो माझी परिवारों की उत्पत्ति, उनके पूर्वजों के निवासस्थान तथा मध्य काल में उनके पूर्वजों के गौरवपूर्ण कृतित्व की गाथा सुनाते हैं। उनके लिए चेरो लोगों ने अनेक कबायली भूत-प्रेत खोज निकाले हैं और माझियों ने उनका आग्रहण (adoption) कर लिया है, तथापि बूढ़ा देव के प्रति उनकी आस्था पूर्ववत् है। बूढ़ा देव गोंडों का श्रेष्ठ देवता है जिसकी उपासना सभी उत्सवों और पर्वों के आरम्भ में अनिवार्य है। किसी माझी ने हमें बतलाया कि नर्मदा-तट पर कहीं पर उनका एक तीर्थस्थल है जहाँ उनके कबायली देवता की प्रतिमा से विभूषित एक मंदिर है। यह कबायली देवता बूढ़ा देव है जिसे प्रत्येक माझी परिवार घर के मुख्य भाग में प्रतिष्ठापित करता है। कुछ गाँवों में अलग एक देवघर या मंदिर होता है और कुछ में बूढ़ा देव को शाल वृक्ष के नीचे प्रतिष्ठापित करते हैं। माझियों के देवगण में अनेक दुष्ट भूत-प्रेत सम्मिलित हैं जिनमें अधिकांश स्त्रीलिंगवाची हैं और जो अपने समाज विध्वंसक कर्मों के कारण कुख्यात हैं। गोंड डाइनों-चुड़ैलों से अत्यधिक डरते हैं और शांतिपूर्वक रहने के लिये उनको मनाना अनिवार्य समझते हैं।

खरवारों को हम सांस्कृतिक प्रगति के कई स्तरों पर पाते हैं। खरवार कबीले की एक शाखा स्वदेशीय रीति से कत्थे के बड़े पैमाने के उत्पादन में लगी हुई है। इस व्यवसाय को सूर्यवंशी खरवारों ने अपनाया है जब कि दुअलबंधी और पाटबंधी खरवार अपने कुलों (clans) के लिए इस उद्योग को वर्जित करते तथा इसे अधम बतलाते हैं। सूर्यवंशी खरवार आजकल निज को खैराही कहते हैं और जाति होने का दावा करते हैं। कत्था खैर के वृक्ष से तैयार किया जाता है। प्रति वर्ष फ़रवरी के महीने से ये लोग दुद्धी तहसील के वनों के भीतर एकत्रित होते हैं, उपयुक्त वनों को पट्टे पर लेते हैं, किसी जलस्रोत अथवा नदी अथवा नाले के समीप अस्थायी पत्तेदार टट्टियाँ खड़ी कर लेते हैं और जिन ठेकेदारों से उन्हें धन मिलता है उनके लिए समतल भूखंड पर

लेपन कर और भट्ठे गाड़ कर एक अस्थायी कारखाना निर्मित कर डालते हैं। भट्ठे वर्गाकार अथवा अधिक लम्बे और कम चौड़े अथवा वृत्ताकार तथा तीन-चार फ़ीट गहरे होते हैं। वे पहले टहनियों या छोटे-छोटे पौदों का एक ढाँचा तैयार करते हैं, उस पर मिट्टी लेपते हैं और छेद बना देते हैं। इन छेदों में वे बर्तन रखे जाते हैं जिनमें ख़ैर की लकड़ी उबाली जाती है। लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़े कर डाले जाते हैं और सारे दिन उन्हें उबाला जाता है। रस को गाढ़ा कर के बड़े-बड़े मृत्पटों पर जमाते हैं। लेप को धूप में सूखने देते हैं। यह चॉकलेट के रंग का हो जाता है और सूखने के बाद इसकी पिंडियाँ बना लेते हैं।

परन्तु खरवारों की मुख्य शाखाओं का खैराही से कोई नाता नहीं है। वे कृषक हैं तथा वन से फलों और जड़ों का संचय करते हैं। खरवार कबीले के वृद्धजन अपनी उत्पत्ति अपने प्राचीन निवासस्थान खैरागढ़ में बतलाते हैं और संभवत: इस स्थान के नाम पर ही उनके कबीले का नाम पड़ा है। संथालों की एक परम्परा के अनुसार खैरा-गढ़ बिहार के छोटा नागपुर पठार में हज़ारीबाग ज़िले में है। खरवार उस स्थान को जहाँ से प्रवास कर वे दुद्धी आए दक्षिण या दक्षिण-पश्चिम की ओर बतलाते हैं और यह संभव है कि उनका मूलस्थान खैरागढ़ राज्य (मध्य प्रदेश) में था। मार्च-अप्रैल के महीनों में खरवार सिंगरौली राज्य में कोटा नामक स्थान की तीर्थयात्रा करते हैं और अनेक गोंड कबीलों की मातृदेवी जालामुखी की उपासना करते हैं। इस तथ्य से छोटा नागपुर में खरवारों की उत्पत्ति की पुष्टि नहीं होती। इन उन्नतिशील और सम्पन्न खरवारों के शारीरिक लक्षण दुद्धी के आदिवासी तत्वों के लक्षणों से भिन्न हैं और सर विलियम क्रूक ने उनमें हिन्दू रक्त का पता लगाया है।

कोरवा दुद्धी का सबसे आदिम कबीला है। वे मध्य प्रदेश के सरगूजा ज़िले की सीमा पर स्थित कतिपय गाँवों में रहते हैं, यथा कुंडपन, चैनपुर, बिसरामपुर और सांगोबांग। उनके शारीरिक लक्षण सरगूजा के कोरवा लोगों से मिलते हैं और प्रतीत होता है कि वे सरगूजा से प्रवास कर दुद्धी गए। मिर्ज़ापुर ज़िले में कोरवा कबीला लुप्त हो रहा है। कर्नल डाल्टन ने कोरवा लोगों को 'छोटे क़द और गहरे साँवले रंग के, सुदृढ़ शरीररचना वाले तथा मांसपेशियों के सुविकसित होने के कारण सक्रिय परन्तु अनुपातत: छोटे पैरों वाले' की संज्ञा दी थी। जो थोड़े-बहुत कोरवा परिवार हमें दुद्धी में मिले उनकी आकृतियाँ क्लांत और मलिन थीं और प्रतीत होता था कि दुद्धी की अन्य कबायली स्त्रियों की अपेक्षा उनकी स्त्रियाँ जल्दी बूढ़ी हो जाती हैं।

पनिका बिहार और मिर्ज़ापुर दोनों में पाए जाते हैं और उनकी उत्पत्ति एक ही है। पनिका लोगों के सामान्य शारीरिक लक्षण दुद्धी के कबायली लोगों में साधारणत: दिखाई पड़ने वाले लक्षणों से भिन्न हैं—इस तथ्य के कारण ही सम्भवत: कर्नल डाल्टन का

विचार हुआ कि पनिका की आर्योत्पत्ति है। डाल्टन ने उल्लेख किया है कि बिहार के पनिका लोगों पर हो कबीले ने आधिपत्य स्थापित किया और उनके शारीरिक प्रकार में पनिका घुल-मिल गए। रिज़्ले ने मतभेद व्यक्त किया और उनके अनुसार पनिका कबीले में बहिर्वैवाहिक कुलों (exogamous septs) का पाया जाना द्राविड उत्पत्ति की ओर संकेत करता है। दुद्धी के पनिका लोगों की उत्पत्ति पुरा-आस्ट्रेलीय (Proto-Australoid) है और उनमें से कुछ खरवारों की भाँति पुरा-भूमध्यीय (Proto-Mediterranean) लक्षणों के अस्तित्व का परिचय देते हैं। उनका व्यवसाय बुनाई है किन्तु वे चौकीदारों, जादू से पानी बरसाने वालों, भार ढोने वालों और भूमिहीन श्रमिकों के रूप में भी काम करते हैं। वे निश्चय ही अन्य कबीलों के बाद आए होंगे और उन्हें कृषि के लिए भूमि न मिल सकी।

पठारी भी गोंड हैं और उनमें और माझियों में बहुत कुछ समानता है। किसी प्रकार वे अपने कबीले से भिन्न हो गए और बलि तथा धार्मिक उपासना करने लगे जिसके फलस्वरूप वे आज गोंडों के पुरोहित हैं। क्रूक के अनुसार उनके नाम और पत्रवर्णिकों (लिपिक अथवा इतिवृत्तकार) के नाम की उत्पत्ति एक है और पठारी दीर्घ काल से गोंडों के चारण और वंशवृत्तकार रहे हैं। पठारी नाम का कुछ सम्बन्ध पाट (पूजास्थान) से भी हो सकता है और उनके व्यवसाय के कारण यह बात महत्वपूर्ण हो जाती है। प्रायः पठारी चारण गोंड नरेशों और मुसलमानों के विरुद्ध रणस्थल में काम आने वालों के वीरतापूर्ण कृत्यों की प्रशस्ति गाते हुए मिलते हैं। जब वे वॉयलिन की भाँति तार वाले बाजे 'बानस' की धुन पर गीत गाते हैं तो सुनने में बड़ा आनंद आता है।

दुद्धी के विभिन्न कबायली तत्व साथ-साथ निवास करते हैं और कई कबीलों वाले गाँव साधारणतः मिलते हैं। कुछ गाँवों में विभिन्न कबीलों का परस्पर गुँथा हुआ रहना उस काल का द्योतक है जब विभिन्न कबीलों ने विपत्ति के केन्द्रों से भाग-भाग कर दुद्धी में आना आरम्भ किया और उस काल में दुद्धी में स्थायी रूप से निवास करने वाले कबायली न थे और यदि रहे भी हों तो वे इतने बिखरे हुए थे कि वे आगन्तुक दलों का अवरोध करने में असमर्थ थे। वर्तमान काल में कबायली तत्वों के वितरण से हमें उस काल में समीपवर्ती क्षेत्रों से बड़े पैमाने पर होने वाले निष्क्रमण का अनुमान लग सकता है। खरवार दुद्धी तहसील के उत्तरी, उत्तर-पूर्वी और उत्तर-पश्चिमी भागों में निवास करते हैं। वे विशेष रूप से हथवानी, मोरधावा, दल्लापीपल, बेलगुरी और समीपवर्ती गाँवों में केन्द्रित हैं। कोरवा और घासी दक्षिणी दुद्धी में पाए जाते हैं। अगरिया और पनिका समूचे दुद्धी में बिखरे हुए हैं। दुद्धी के मध्य भाग में किर्रिल की लोहे की खानों के आसपास अगरिया बसे हुए हैं। सांगोबांग,

झारो, म्योरपुर और समूचे दक्षिणी तथा दक्षिण-पश्चिमी दुद्धी में धाकर रहते हैं। भुइयाँ लोगों ने निज को दुद्धी के नागरिक क्षेत्रों के छोरों के आसपास ही सीमित रखा है। खरवार, माझी और पठारी अधिक संख्या में पाए जाते हैं और उनकी संख्या मिलाने पर शेष सभी कबीलों की सम्मिलित संख्या से अधिक है। अगरिया और पनिका लोगों की संख्या अल्प है। कुछ पनिका परिवारों ने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया है।

कबायली आबादियाँ सम्भवतः आर्थिक तथा सामाजिक कारणों से दूर-दूर बसी हुई हैं। प्रत्येक आदिवासी का झोपड़ा निज की भूमि पर होता है। फलतः वह खेतों और फ़स्ल की निगरानी कर सकता है और महामारियों और छूत की बीमारियों से उसकी रक्षा होती है। साधारणतः जादू-टोने और दुष्ट भूत-प्रेतों को रोगों का कारण बतलाया जाता है और कबायली लोग अन्य जनों का, यहाँ तक कि अपने कबीले वालों का भी, निकट सम्पर्क बचाते हैं जिससे उन्हें छूत की बीमारी अथवा अन्य जनों का जादू-टोना न लग् सके। परिवार में किसी की मत्यु होने पर कबायली कृषक अपना झोपड़ा किसी नए स्थान पर खड़ा करता है। दुद्धी के भीतरी भागों में स्थित गाँव मैदान के गाँवों से सर्वथा भिन्न हैं। गाँव की सीमायें ठीक-ठीक निर्धारित नहीं रहतीं और एक गाँव कई छोटे-छोटे टोलों में बँटा होता है जिनमें परस्पर संचार (communication) का अभाव होता है।

दुद्धी के गाँवों की जनसंख्या समान रूप से वितरित नहीं है। कुछ गाँवों में ३०० व्यक्ति रहते हैं तो दूसरों में उनके दुगुने। एक सामान्य नियम के रूप में कहा जा सकता है कि दुद्धी के नागरिक क्षेत्रों के समीपवर्ती गाँव बड़े हैं तथा दूरस्थ गाँव कम घने हैं। मुख्यतः कबायली लोगों द्वारा बसे हुए गाँवों की जनसंख्या अल्प होती है और वनान्तस्थित गाँवों के टोले दूर-दूर फैले हुए होते हैं और घरों की पारस्परिक दूरी बहुत होती है। जनसंख्या का औसत घनत्व आजकल ९९ व्यक्ति प्रति वर्ग मील है परन्तु घनत्व में एक दशक से दूसरे दशक में बहुत उतार-चढ़ाव होता रहा है। १८८१ में दुद्धी की जनसंख्या का घनत्व ६७ व्यक्ति प्रति वर्ग मील था। १८९१ में यह गिर कर ६५.५८ हो गया। १९०१ में फिर बढ़ कर ७३ हुआ, १९२१ में ८१ और १९३१ में ९७.३। कबायली जनसंख्या में वृद्धि का पता करना कठिन है और प्रजनन दर भी अज्ञात है। दुद्धी नगर के प्रवासी जाति परिवारों में ही मुख्य रूप से वृद्धि हुई है और यह बात संगत मालूम देती है कि कबायली गाँवों में प्रजनन के विषय में जो कुछ कमी देखने में आई है उसकी यथेष्ट पूर्ति बिहार के पड़ोसी ज़िलों के उन परिवारों के निरन्तर प्रवास से होती रही है जो व्यापार के हेतु अथवा दुद्धी के अधिक

सुविधाजनक भागों में भूमि अर्जित करने के निमित्त आते रहे। उदाहरणार्थ, दुद्धी और पुलवा तप्पे (तहसील का छोटा भाग) अन्य तप्पों की अपेक्षा अधिक उर्वर हैं और इनमें ही प्रवासी कृषक अधिक केन्द्रित हैं।

इन भागों में आज कोई भी कबीला ऐसा नहीं है जो कृषि न करता हो, भले ही उसकी कृषि-रीतियाँ कितनी ही प्रारम्भिक अवस्था की हों। अधिकांश कबीले प्रारम्भिक अवस्था की कृषि करते हैं और यदाकदा आखेट अथवा फल और कन्द-मूल के संचय के निमित्त वनों में चले जाते हैं। बाहर से लाए हुए खिलौनों और छोटे-छोटे आभूषणों के विक्रेताओं और सचल व्यवसाय वाले अघरिया और पनिका लोगों के अलावा मुश्किल से ही ख़ानाबदोश परिवार मिलते हैं। सरकार द्वारा वनोपयोग पर लगाए गए प्रतिबन्धों अथवा पशुओं की कमी के कारण कबीलों ने स्थायी कृषि अपना लिया है यद्यपि कृषकों के रूप में भी वे अपने पूर्वजों से, जो वन-पर्वतों के बिलकुल भीतरी भागों में आखेट तथा आहार-संचय पर निर्वाह करते थे, अच्छी स्थिति में नहीं हैं। कोरवार सदृश कबीलों में, जो अपने को प्रातिबन्धिक वन सम्बन्धी नियमों द्वारा बलात् लाए गए परिवर्तन के अनुकूल नहीं बना सके, वृद्धि का दर घटता जा रहा है। पहले दुद्धी में किए गए एक अनुसंधान से हमने पता किया था कि कोरवारों में २९ प्रति शत विवाहों में सन्तानोत्पत्ति नहीं होती, लगभग ३१ प्रति शत विवाहों में एक दम्पति के दो सन्तानें होती हैं और क़िसी परिवार में अधिकतम संतान-संख्या पाँच है। आदिम समाज की जन्म-मृत्यु परिसंख्या (vital statistics) के साहित्य में साधारणतः जो संतोषभाव पाया जाता है, उपर्युक्त तथ्य को देखने पर हम नहीं पाते। वेस्टरमार्क ने अनेक लेखकों की उन उक्तियों का उल्लेख किया है जिनमें आदिम स्त्री को प्रायः अधिक प्रजनन शक्ति वाली बतलाया गया है। आदिम आस्ट्रेलियनों के विषय में एन्. डब्ल्यू. थॉमस ने लिखा है — 'यद्यपि शिशु-हत्या के कारण पाले जाने वाले शिशुओं की संख्या सम्भवतः अल्प थी, ऐसा सोचने का कोई कारण नहीं है कि द्रुत गति से लुप्त होने वाले काले लोगों की प्रजनन शक्ति तनिक भी क्षीण है। सबसे बड़ा परिवार जिसका अभिलेख उपलब्ध है, जेनी नामक एक स्त्री का था जिसे तेरह ज़ैतूनी शाखाओं की मालकिन होने का गर्व प्राप्त था।' दुद्धी तथा भारत के अन्य भागों से संग्रहीत वंशवृक्ष सारणियाँ भारत के कबायली लोगों में प्रजनन के ऊँचे दर की ओर इंगित करती हैं, यद्यपि उन समूहों में जिनका विकबीलीकरण (detribalization) हो चुका है अथवा जिनके नागरिक सम्पर्क हैं, बड़े परिवार नहीं पाए जाते। दुद्धी में यथेष्ट काल से कबायली जीवन कठिन परिस्थितियों में गुज़रता आया है। नर-नारी निष्प्राण और जीवन से पराजित प्रतीत होते हैं, संगीत-नृत्य बेसुरे हो गए हैं और पेशेवर नाचने-गाने वाले पैदा हो गए हैं। कबायली नृत्यों तथा संगीत को जीवित रखने के हेतु अब तो उन पेशेवर लोगों पर ही हमारी आँखें गड़ी हैं।

द्वितीय अध्याय

हमारे अध्ययन का गाँव

मिर्जापुर ज़िले में दुद्धी से एक मील पर चितौरा गाँव स्थित है। दुद्धी से एक कच्ची सड़क चितौरा को जाती है। मुख्य गाँव के अतिरिक्त उसके तीन टोले हैं–पिपरही, महुअरिया और चुटकाई बहरा। चितौरा से दक्षिण-पूर्व की ओर लगभग दो मील की दूरी पर एक पहाड़ी के पार उसकी तलहटी में पिपरही टोला स्थित है। पिपरही के मार्ग में एक घना-सा जंगल पड़ता है। कृषि के लिए अधिक भूमि की खोज में दुद्धी से प्रवास करने वालों ने पिपरही टोले को हाल में बसाया है। उसका इतिहास प्रायः १५ वर्ष से अधिक पुराना नहीं है। इस टोले के अनेक निवासी कबायली स्कन्ध (stock) के हैं। महुअरिया टोला चितौरा से लगभग आधा मील पश्चिम में है। मुख्य रूप से इसमें पनिका बसते हैं जो कबायली हैं। चुटकाई बहरा कुछ और पश्चिम में है, गाँव से लगभग छः फ़र्लांग दूर। दुद्धी-म्योरपुर सड़क इस टोले के मध्य से गुज़रती है। सड़क के पूर्वी ओर का टोले का भाग चितौरा में पड़ता है तथा पश्चिमी ओर का दुद्धी में। ग्रामवासियों में कृषि के अपने खेतों के समीप घर बनाने की प्रवृत्ति है जिसके कारण गाँव का विस्तार वृहत् है और अनेक घर एक दूसरे से बहुत दूर पर स्थित हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि एक दूसरे के निकट घर बनाने के स्थान पर खेतों के समीप घर बनाने की चलन ग्रामवासियों ने कबायली लोगों से ग्रहण की है। कबायली भी अपने घर एक दूसरे से बहुत दूर परन्तु अपने खेतों के समीप बनाते हैं।

गाँव का प्राचीन इतिहास

इस गाँव का पहला सर्वेक्षण १८७४ में किया गया। सरकारी अभिलेखों में चितौरा का सारा क्षेत्रफल जिसमें कृषि की जाती है (जो उस समय आज की अपेक्षा बहुत कम था) नन्हकू माझी के नाम में है। नन्हकू माझी गाँव का पहला सपुरदार था। उस समय अधिकतर आदिवासी ही कृषि करते थे, थोड़े-से अकबायली कृषक तहसील और इस्टेट के कर्मचारी मात्र थे। चितौरावासी संभल माझी ने बतलाया कि इस क्षेत्र में सर्वप्रथम खेती करने वाले उसके पूर्वज थे। उस समय यह सारा प्रदेश वनों से भरा हुआ था और अधिकांश निवासी पनिका और पठरिया थे जिन्हें कृषि का बिलकुल ज्ञान न था। संभल के पूर्वजों ने वनों को काट कर कृषि आरम्भ की। क्रमशः कृषि में लाई गई भूमि का क्षेत्रफल उन्होंने इतना बढ़ाया कि वे वस्तुतः दुद्धी, चितौरा, खजुरी, मलदेवा, बरईडाँड़, डुमाढ़ और जपला आदि गाँवों के ज़मींदार बन बैठे।

संभल माझी के अनुसार उसके प्रपितामह का प्रपितामह गोंडवाना में स्थित गढ़-मंडल से इस क्षेत्र में आया। यहाँ उसने क्यों प्रवास किया विदित नहीं। उस समय राजा दलपत शाह की स्त्री रानी दुर्गावती गोंडवाना में शासन करती थी। १८ वीं शती के पूर्वार्ध के अंत में हीराचक गाँव का एक ब्राह्मण दुद्धी क्षेत्र में शासन करता था और कालान्तर में अगरोरी के चन्देल राजा ने उससे ले कर स्वयं प्रशासकीय उत्तर-दायित्व सँभाला। अगरोरी राबर्ट्सगंज तहसील में है। अगरोरी का राजा सिंगरौली नरेश के अधीन था। सिंगरौली रीवाँ राज्य का एक अंश था। १७९२ में महोली के बरियार शाह ने विद्रोह किया और चन्देल राजा से दुद्धी क्षेत्र का प्रशासन छीन कर १८०५ तक शासन किया।

१८०५ में बरियार शाह के अनुज बादल शाह ने उसकी हत्या कर दी और इस गाँव का शासक बन बैठा। परन्तु वह एक निर्बल शासक था तथा प्रजा पर नियंत्रण रखने में असमर्थ सिद्ध हुआ। फलतः अगरोरी के चन्देलों और सिंगरौली के ठाकुरों ने ग्रामवासियों को लूटना आरम्भ किया। अगरोरी और सिंगरौली दोनों के राजाओं न दुद्धीवासियों से भूमिकर की माँग की। सारी जनता कष्ट में थी और उसे स्पष्ट नहीं हो रहा था कि कर किसे दिया जाय। २७ वर्षों तक यह स्थिति चलती रही और इस काल में अगरोरी और सिंगरौली के राजाओं ने इस क्षेत्र की कबायली जनता का पूरा शोषण किया। १८३२ में अंग्रेज़ों को जो तब तक बिहार में पहुँच चुके थे दुद्धी में फैली हुई अराजकता की सूचना मिली। १८४२ में रॉबर्ट्सन को स्थिति के अध्य-यनार्थ भेजा गया। वह सिंगरौली और अगरोरी के राजाओं से मिला और उसने निर्णय किया कि इस क्षेत्र का शासन केंद्र से होना चाहिए। १८४८ में उसने अपनी रिपोर्ट पेश की और सिफ़ारिश की कि इस क्षेत्र को सम्राट की एक इस्टेट बना दिया जाय और इसका प्रत्यक्ष शासन इंग्लैंड से हो। १८५२ में मि. होम यहाँ के प्रशासक बना कर भेजे गए परन्तु १८५७ के ग़दर में उनकी हत्या कर दी गई।

कुछ वर्ष बाद १८७२ में दुद्धी की समस्या ने दुबारा अंग्रेज़ों का ध्यान आकर्षित किया और १८७४ में वहाँ का पहला सर्वेक्षण कराया गया। जिन गाँवों का ज़मीं-दार नन्हकू माझी था उनका सपुरदार उसे बनाया गया। कहा जाता है कि नन्हकू माझी के एक मित्र ने ज़मीन्दारी के अधिकार वाले सारे काग़ज़-पत्र चुरा लिए। फलतः अंग्रेज़ों के आने पर नन्हकू किसी दस्तावेज़ का प्रमाण न उपस्थित कर सका और उसकी स्थिति ज़मीन्दार से घट कर सपुरदार की रह गई। नन्हकू के बाद उसका बड़ा लड़का गुमानी सपुरदार बना। उसकी मृत्यु के बाद उसके लड़के मक्खू ने काम सँभाला। मक्खू अल्पायु में चल बसा और दो छोटे-छोटे बच्चों – जोखन और संभल – को छोड़ गया। तब रूपन मिश्र (रामदेव का चाचा) सपुरदार बना

और जोखन के बड़े हो जाने पर भी उस पद पर बना रहा। परन्तु एक बार कलेक्टर विद्दम गाँव में आया और भलीभाँति जाँच-पड़ताल करने के बाद जोखन को सपुरदार बना गया। जोखन के बाद सर्वदमन सिंह (गाँव का एक वर्तमान निवासी) सपुरदार बना और हाल तक जब तक सपुरदारी समाप्त नहीं कर दी गई काम सँभालता रहा।

जनसंख्या

चितौरा बहुत-सी जातियों वाला एक गाँव है। उसमें १७ विभिन्न जाति समूह और कबायली समुदाय निवास करते हैं और कुल जनसंख्या ८०० से ऊपर तथा परिवारों की संख्या १५० से ऊपर है। जनवरी १९५५ में की गई गाँव की एक जनगणना के अनुसार विभिन्न समुदायों के बीच जनसंख्या इस प्रकार वितरित है —

समूह	व्यक्ति संख्या	प्रति शत
	(क) हिन्दू जातियाँ	
१. ब्राह्मण	९४	११.३
२. क्षत्रिय	८५	१०.२
३. अग्रहरी	२७	३.३
४. कलवार	१६५	१९.९
५. अहीर	१६	१.९
६. कहार	६	०.७
७. केवट	२८	३.४
८. लोहार	११	१.३
९. तेली	११	१.३
१०. कुम्हार	७	०.८
११. पासी	७	०.८
१२. चमार	१८५	२२.३
	जोड़ ६४२	७७.२
	(ख) कबायली समूह	
१३. माझी	११६	१४.०
१४. खरवार	३	०.४
१५. चेरो	२२	२.७

समूह	व्यक्ति संख्या	प्रति शत
१६. पनिका	२०	२.४
१७. भुइयाँ	२७	३.३
	जोड़ १८८	२२.८
हिन्दू जातियाँ	६४२	७७.२
कबायली समूह	१८८	२२.८
	८३०	१००.०

निम्नलिखित सारणी में मोटे तौर पर विभिन्न जाति और कबायली समूहों की परिवार - संख्या दी गई है —

(क) हिन्दू जातियाँ		(ख) कबायली समूह	
समूह	परिवार-संख्या	समूह	परिवार-संख्या
१. ब्राह्मण	२३	१३. माझी (गोंड)	२८
२. क्षत्रिय	१४	१४. खरवार	१
३. अग्रहरी	४	१५. चेरो	४
४. कलवार	२७	१६. पनिका	३
५. अहीर	३	१७. भुइयाँ	५
६. कहार	१		
७. केवट	६		
८. लोहार	२		
९. तेली	३		
१०. कुम्हार	२		
११. पासी	२		
१२. चमार	३६		
	जोड़ १२३		जोड़ ४१

माझी चितौरा के मूल निवासी कहे जाते हैं और नन्हकू के, जो पौराणिक गाथा के पात्र की भाँति विख्यात है, पिता को गाँव का प्रथम निवासी बतलाते हैं। चितौरा से

२ मील पूर्व में स्थित धंगराघाट से भागीरथी भुइयाँ ने प्रवास किया और वर्तमान सभी भुइयाँ परिवार उसके वंशज हैं। जब नन्हकू सपुरदार था उसका एक चमार कर्मचारी था जिसने अपने दो भानजों–दलई और भुनई–को अपने पास रहने के लिए बुला लिया था। चितौरा के अधिकांश चमार परिवारों की उत्पत्ति नन्हकू के कर्मचारी अथवा दलई और भुनई दोनों भाइयों से हुई है। ब्राह्मणों ने रीवाँ से प्रवास किया। उनके बाद क्षत्रिय आए जिन्होंने तहसील और इस्टेट में अधिकांश पदों पर एकाधिकार स्थापित कर लिया। तहसील और इस्टेट के कर्मचारियों ने अपने थोड़े-बहुत ज्ञान के वल पर लोगों का शोषण किया और धनवान हो गए। उन्होंने कृषि आरम्भ की और क्रमशः गाँव के मुखिया बन बैठे। आज भी गाँव के तीन अत्यन्त महत्वपूर्ण और धनी परिवार तहसील और इस्टेट के कर्मचारियों के ही हैं।

वनिये बिहार से, अधिकतर पलामू ज़िले से, आए। गाँव के दो बनिये सारी तहसील में सबसे धनी व्यक्ति हैं। परन्तु चितौरा ने बाहर वालों को वस्तुतः लकड़ा बाँध के निर्माण के बाद आकर्षित किया। १९०४ में जब विढम कलेक्टर था इस बाँध का निर्माण आरम्भ हुआ। १९०८ में जब यह पूरा हुआ तो यह स्थान धान की खेती के लिए प्रसिद्ध हुआ। उसी समय से बाहर के लोग नियमित रूप से यहाँ आते और बसते रहे हैं। अब रिहन्द बाँध के निर्माण ने और अधिक बाहर वालों को आकर्षित किया है यद्यपि रिहन्द चितौरा से काफ़ी दूर है।

तृतीय अध्याय

सामाजिक अर्थ व्यवस्था

कृषि

दीर्घ काल से कृषि ग्रामवासियों के जीवनयापन का मुख्य साधन रहा है और अब भी है। प्राय: प्रत्येक परिवार के पास कृषि योग्य भूमि का एक टुकड़ा है अथवा उसके सदस्य दूसरों के खेतों में श्रमिकों के रूप में काम करते हैं। दुद्धी में सामुदायिक विकास योजना की स्थापना के पूर्व चितौरावासियों को कृषि की प्राचीन रीतियाँ ही ज्ञात थीं और वे कुछ-एक प्राय: आदिम उपकरणों का ही प्रयोग करते थे। सा. वि. यो. ने ग्रामवासियों को नई रीतियों और प्रविधियों का कुछ ज्ञान करा दिया है। उनके विषय में अलग चर्चा होगी। प्रस्तुत वर्णन में केवल स्वदेशीय कृषि रीतियों को लिया गया है।

इस गाँव में खेत जोतने के लिए हल एकमात्र उपकरण है। हल को दो बैलों की जोड़ी खींचती है और हल के पीछे वाले भाग में लकड़ी की मूठ को एक व्यक्ति दबाता है जिससे लोहे की फार भूमि में धँसती है। जोतने के पूर्व खेत को सींचते हैं जिससे भूमि नरम हो जाय और हल आसानी से भूमि में गहरी हराइयाँ बना सके। इस प्रकार सामान्यत: वर्षा के उपरान्त ही खेत जोतते हैं। कड़ी मिट्टी होने पर तीन-चार बार जोतना आवश्यक होता है। खेत जोतने के बाद बीज बोते हैं। हराइयों में हाथ से बीज छीटते जाते हैं और तब भूमि को समतल किया जाता है। भूमि को समतल करने के लिए लकड़ी का एक तख्ता जिसे करहा कहते हैं प्रयोग किया जाता है। इसे बैल खींचते हैं और इस पर भार डालने के लिए तीन-चार पुरुष खड़े रहते हैं। इसके बाद कृषक वर्षा की प्रतीक्षा करते हैं। अनावृष्टि में उन्हें बहुत कष्ट होता है और बंधियों और कुँओं का प्रयोग करना पड़ता है।

साधारणत: गोबर का ही प्रयोग खाद के रूप में होता है यद्यपि सा. वि. यो. के कारण अन्य खादों से भी ग्रामवासी परिचित हो गए हैं। चितौरा का एक विशिष्ट लक्षण यह है कि यहाँ गोबर जलाने के काम में नहीं आता जैसा हम अन्य स्थानों में देखते हैं। लगता है यहाँ ग्रामवासी खाद के रूप में गोबर का अधिक महत्व मानते हैं। खेतों में खाद देने की दो रीतियाँ हैं। कभी-कभी गोबर को खेतों में केवल छिटका देते हैं और कभी-कभी उसे जला कर राख को डालते हैं। गोबर की मात्रा अत्यल्प होने पर दूसरे उपाय का सहारा लेते हैं। दोनों रीतियों का फल एक ही होता है। यदि गोबर को पानी के साथ गड्ढों में जमा किया जाय और मिट्टी से उन्हें ढक दिया जाय तो

अच्छी खाद तैयार होती है। इससे गोबर सड़ जाता है। किन्तु इस रीति को सभी ग्रामवासियों ने ग्रहण नहीं किया है। खाद के लिए तथा राख के ऊपर बीज बोने के लिए वनों को जलाने की प्रणाली अब प्रचलित नहीं है।

सिंचाई

सिंचाई के साधन बंधी और कुँयें मात्र हैं। नालियों द्वारा बंधी से खेतों में पानी पहुँचाते हैं। प्रत्येक खेत में पड़ोस के खेतों में पानी ले जाने के लिए निकास होते हैं। किन्तु बंधियों द्वारा सिंचाई वर्षा की कमी पूरी करने के लिए सर्वथा अपर्याप्त होती है। सिंचाई का अन्य एकमात्र साधन कुँयें हैं किन्तु उनमें जल का स्तर बहुत नीचा होता है। परन्तु अनावृष्टि के समय कुँओं का प्रयोग करना ही पड़ता है। कुँओं से पानी ढेकुर द्वारा खींचते हैं। कुँयें की जगत से सटा कर भूमि पर दो लकड़ी के तख़्ते इस प्रकार गाड़े जाते हैं कि यदि एक तख़्ते से जगत को वृत्त मान कर व्यास खींचा जाय तो उसके दूसरे छोर पर दूसरा तख़्ता हो। दोनों तख़्तों के ऊपरी सिरों को कुयें के ऊपर से ले जा कर एक अन्य तख्ते से जोड़ते हैं। इस तख़्ते के बीच में एक छेद होता है जिसके अन्दर एक डण्डा कस कर गाड़ देते हैं। डण्डे के एक छोर पर रस्सी से बर्तन लटका देते हैं और दूसरे छोर पर कोई भारी पदार्थ बाँध देते हैं। पानी खींचने के लिए जिस छोर पर बर्तन लटकता रहता है उसे नीचे खींचते हैं जब तक बर्तन पानी में डूब न जाय और पानी से भर न जाय। फिर रस्सी को ढीली कर देते हैं और दूसरे छोर पर जो भार रहता है उसके बल से कुँयें से बर्तन ऊपर उठ आता है। बर्तन से पानी को खेतों में जाने वाली नालियों में उँडेल देते हैं।

फ़स्लें

गाँव में दो मुख्य फ़स्लें उगाई जाती हैं, ख़रीफ़ और रबी। ख़रीफ़ के भी दो भाग हैं, भदई और अगहनी। रबी की फ़स्ल को साधारणतः चैती कहते हैं। ग्रामवासी फ़स्ल का नाम उस मास पर रखते हैं जिसमें वह कटती है। इस प्रकार गाँव में उगाई जाने वाली फ़स्लों का हम निम्नलिखित रूप से वर्गीकरण कर सकते हैं——

१. ख़रीफ़

(अ) भदई
- (क) सावाँ
- (ख) मेझरी

(आ) अगहनी
- (क) धान
- (ख) कोदों

(ग) मकई	(ग) मेड़ो
(घ) उर्द	(घ) कोरथी
(ङ) बरई	(ङ) उर्द
(च) तिल्ली	(च) तिल्ली
(छ) जोन्हरी	(छ) जेतनी या परबत्ती

२. रबी या चैती

(क) गेहूँ	(ङ) बेटुरी
(ख) जौ	(च) मटर
(ग) चना	(छ) सरसों
(घ) मसूर	(ज) अरहर

ख़रीफ़ की फ़स्लें

१. भदई—भदई की फ़स्लों के लिए खेतों की तैयारी प्रथम वर्षा के तत्काल बाद मध्य जून से आरम्भ हो जाती है। खेतों में पहले से खाद डाल रखते हैं और वर्षा के बाद ही गोड़ाई हो जाती है। सावाँ की फ़स्ल के लिए प्रति वर्ष खेतों में खाद दी जाती है किन्तु अन्य फ़स्लों के लिए नहीं। खेत तैयार हो जाने पर बीज बोते हैं। आषाढ़ के अंत तक बीज बोना अवश्य पूरा हो जाना चाहिए। निम्नलिखित सारणी से विदित होगा कि प्रति बीघा कितना बीज बोया जाता है —

मकई	८ सेर	सावाँ	१.२ सेर
मेझरी	२० सेर	उर्द	१० सेर
बरई	५ सेर	तिल्ली	२ सेर
जोन्हरी	१$\frac{१}{२}$ सेर		

सामान्यतः पहले मकई बोते हैं, फिर सावाँ और मेझरी। दूसरे अन्न बाद में बोए जाते हैं। किसी भी खेत में दो प्रकार के बीज इकट्ठा नहीं बोए जाते।

भदई वर्षा ऋतु की फ़स्ल है, अतः सिंचाई सर्वथा अनपेक्षित है और अधिक श्रम की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। मकई की निराई के लिए श्रमिकों को लगाना पड़ता है। भदई की सभी फ़स्लों में सर्वाधिक महत्व मकई का है। मकई के खेतों की रखवाली निशि-दिन की जाती है क्योंकि सुअर और सियार जैसे वन्य पशु फ़स्ल को क्षति पहुँचाते हैं। खेतों में साधारण-सा मचान खड़ा कर लेते हैं और रात में कोई व्यक्ति रखवाली करता है।

फ़स्ल के पकने में लगभग ६० दिन लगते हैं। कटाई के बाद उसे खलिहान में जमा करते हैं और खलिहान की भी रखवाली करनी पड़ती है। फिर अन्न को दँवाते और ओसाते हैं। भदई फ़स्ल की प्रति बीघा औसत पैदावार नीचे दी हुई है —

मकई	१५ मन	सावाँ	१५ मन
मेझरी	२० मन	उर्द	५ मन
वरई	५ मन	तिल्ली	४ मन
जोन्हरी	१० मन		

डंठलों का प्रयोग चारे के रूप में करते हैं और उन्हें इकट्ठा कर जाड़े में आग तापते हैं या कभी-कभी उनसे खाद तैयार करते हैं।

२. अगहनी — अगहनी फ़स्लों में सबसे महत्वपूर्ण धान है। चितौरा धान की उपज के लिए प्रसिद्ध है। वर्षा के तत्काल बाद जून में खेत गोड़ डालते हैं। गोड़ाई सोमवार या शुक्रवार जैसे शुभ दिन आरम्भ होती है। गोड़ाई के बाद खेतों को समतल किया जाता और दुबारा गोड़ा जाता है। ऐसा चार-पाँच बार करते हैं। उसके बाद ही बीज बोते हैं। एक बीघे में लगभग एक मन धान बोना होता है। २०—२५ दिन के बाद कोमल पौदे उग आते हैं और तब पहले से तैयार किए हुए अन्य खेतों में उन्हें रोप दिया जाता है। फारू (फावड़े) से छोटे-छोटे छेद बनाए जाते हैं। हर छेद में एक पौदा गाड़ देते हैं। धान के खेतों की भी रखवाली की जाती है किन्तु उतनी सतर्कता से नहीं जितनी मकई के खेतों की। पशुओं को दूर रखने के लिए खेतों के चारों ओर ४-५ फ़ीट ऊँची काँटों की रुँधाई करते हैं। फ़स्ल नवम्बर में पक जाती है, हँसियों से उसे काटते हैं, तब उसे दँवाते और ओसाते हैं।

निम्नलिखित क़िस्मों का धान गाँव में उगाते हैं — कमोद, केसर, घुना, पिंडी, साठी और सरो। कमोद और केसर अन्य धानों की अपेक्षा श्रेष्ठ गुण वाले होते हैं और उनके बीज दो सेर प्रति रुपए के भाव बिकते हैं। पिंडी बहुत घटिया क़िस्म का धान है और उसका बीज तीन सेर प्रति रुपए के भाव बिकता है। धान की औसत पैदावार १३ से ले कर १५ मन प्रति बीघा है।

तिल के लिए खेत को तीन बार जोतते और समतल करते हैं। जुलाई में बीज बोते और फ़स्ल को नवम्बर में काटते हैं। एक बीघे के लिए लगभग १½ सेर तिल के बीज की आवश्यकता होती है। प्रति बीघा औसत उपज ६ मन होती है।

उर्द अधिकतर भदई फ़स्ल के रूप में ही उगाते हैं परन्तु जब उसे अगहनी फ़स्ल के रूप में उगाते हैं तो उसे भादों में बोते हैं। सिंचाई या खाद की अपेक्षा नहीं होती। एक बीघे में लगभग १० सेर बोते हैं। फ़स्ल नवम्बर में कटती है। प्रति बीघा औसत उपज ६ मन होती है।

कोरथी एक प्रकार का तेल का बीज है जो गाँव में नहीं के बराबर उगाया जाता है। सितम्बर में बीज बोते हैं। खेतों में सिंचाई या निराई की अपेक्षा नहीं होती। प्रति बीघा औसत उपज ४ मन होती है।

रबी की फ़स्लें

भादों के महीने में खेतों को तैयार करना आरम्भ कर देते हैं। उन्हें ५-७ बार जोतते और समतल करते हैं। यदि कुआर तक, जिस महीने में बीज बोया जाता है, वर्षा न हो तो सिंचाई करनी पड़ती है। जब खेत बोवाई के लिए तैयार हो जाते हैं तो पहले अलसी और चना और बाद में सरसों, गेहूँ, जौ और मसूर बोते हैं। सामान्यतः रबी की फ़स्लों के लिए खेतों में खाद नहीं देते क्योंकि भदई की फ़स्लों के लिए प्रयोग की गई खाद को इनके लिए भी पर्याप्त मानते हैं। गेहूँ और जौ को अन्य फ़स्लों से भिन्न रीति से बोया जाता है। गेहूँ और जौ को बोने के लिए हल में एक छेद बना देते है जिसमें एक प्रकार की नली जिसे तार कहते हैं डाल देते हैं। यह फार के दूसरे सिरे तक पहुँचती है। अपेक्षित जोताई की समाप्ति पर तार में बीज डाल देते हैं और हल जैसे-जैसे गहरी हराइयाँ बनाता चलता है उनमें बीज बोते जाते हैं। प्रति बीघा लगभग ४० सेर बीज की आवश्यकता होती है। कभी-कभी १:२ के अनुपात में गेहूँ और जौ इकट्ठा बोए जाते हैं। जब गेहूँ के पौदे ६ इंच बड़े हो जाते हैं तो उनमें पानी देना आवश्यक होता है। अपेक्षित जल-पूर्ति के लिए कृषक वर्षा पर निर्भर रहते हैं और अनावृष्टि की अवस्था में फ़स्लों को बहुत क्षति पहुँचती है क्योंकि कुँओं और नहरों से जल की समूची आवश्यकता पूरी नहीं होती। बोवाई के प्रायः एक मास बाद खेतों में निराई होती है। गेहूँ के खेतों की निशि-दिन रखवाली होती है क्योंकि वन्य पशुओं और पक्षियों से पौदों के नष्ट होने का डर रहता है। गेहूँ की दो क़िस्में हैं, उजला और लाल। उजला श्रेष्ठ क़िस्म का होता है। चैत में गेहूँ की फ़स्ल कटने के लिए तैयार हो जाती है। प्रति बीघा औसत उपज लगभग २० मन है।

चना कुआर में बोते हैं। एक बीघे में ४० सेर चना बोना होता है। इस फ़स्ल को अधिक जल की अपेक्षा नहीं होती। प्रति बीघा औसत उपज २० मन होती है।

जौ के लिए गेहूँ की भाँति ही खेत तैयार किए जाते हैं और गेहूँ के बीज की भाँति ही उसे बोते भी हैं। एक बीघे में दस पंसेरी जौ बोना होता है।

सरसों के बीज को कभी-कभी अलग और कभी-कभी गेहूँ के साथ बोते हैं। उसे कुआर में बोते हैं। प्रति बीघा औसत ५ सेर बीज बोना होता है। प्रति बीघा औसत उपज ५ से ८ मन तक होती है।

अलसी उसी मास में बोते हैं जिसमें सरसों। उपज भी प्रायः उतनी ही होती है।

अरहर की फ़स्ल के पकने में अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है। आषाढ़ में भदई फ़स्लों के साथ उसे बोते हैं। उर्द, कोदों और सावाँ के साथ ही उसे बोते हैं, अलग कभी नहीं। एक बीघे में ५ सेर बीज की अपेक्षा होती है। चैत में फ़स्ल कटती है। प्रति बीघा औसत उपज ८ मन होती है।

फ़स्लों की बीमारिया

एक विशेष प्रकार का कीड़ा जोन्हरी के पौदों की डंठलों के रास्ते से जड़ों में पहुँच कर पौदों को नष्ट कर डालता है। उसका कोई विशिष्ट नाम नहीं है। ग्रामवासियों को उसे समाप्त करने का कोई उपाय विदित नहीं था और अब वे डी. डी. टी. चूर्ण का प्रयोग करने लगे हैं। भल्लो एक अन्य कीड़ा है जो भदई फ़स्ल को क्षति पहुँचाता है। धान की फ़स्ल गुंधी नामक बीमारी की शिकार होती है। गेहूँ की फ़स्ल की एक बीमारी उखारा है जिसमें पौदे पीले हो जाते और सूख जाते हैं और इसके कारण उपज में भारी कमी हो जाती है। यदि लगातार बदली रहे तो गेहूँ के पौदे पीले पड़ जाते हैं। ऐसा होने पर ग्रामवासी कहते हैं कि फ़स्ल को घूघी नामक बीमारी लग गई है जिसमें दाने पतले पड़ जाते हैं और उपज बहुत कम होती है।

सभी फ़स्लों की बीमारियों के लिए साधारण निदान

सा. वि. यो. के आविर्भाव के पश्चात् ही बीमारियों से फ़स्लों की रक्षा के हेतु डी. डी. टी. के प्रयोग का पता ग्रामवासियों को लगा है। पहले जब भी फ़स्लों को बीमारियाँ लगती थीं तो वे एकमात्र काम यह करते थे कि बैगा (चेरो कबीले का चिकित्सक) से परामर्श करें। इसका गाँव में अभी भी प्रचलन है। रोगों से मुक्ति, जल के आवाहन तथा कृषि-सम्बन्धी अन्य कठिनाइयों को दूर करने के लिए सभी मामलों में बैगा को अधिकारी मानते हैं। जो बैगा चितौरा में आता है वह अन्य पाँच गाँवों—दुद्धी, जपला, डुमरडीह, खजुरी और गुलाल झरिया—में भी काम करता है। गाँव के प्रत्येक घर से उसे ४ या ५ सेर अनाज पुरस्कारस्वरूप मिलता है। वह सामान्यतः जेठ के महीने में चितौरा आता है और हर घर से एक आना ले जाता है। ऐसा समझा जाता है कि इस प्रकार जो धन वह इकट्ठा करता है वह टोने-टोटके के प्रभावों तथा फ़स्लों की बीमारियों को दूर करने के लिए की जाने वाली पूजा में व्यय होगा। बैगा एक मुर्गी तथा कुछ शराब मोल ले कर अपने देवता को चढ़ाता है। उसके द्वारा विधिक्रिया (rituals) सम्पन्न हो जाने के बाद ही लोग कृषि के काम आरम्भ करते हैं। यदि उन्हें जलाभाव की आशंका हो तो वे कुछ धन चन्दा कर के इकट्ठा करते हैं जिससे

बैगा बकरे, एक मुर्गी और शराब मोल ले कर देवी महादानी को चढ़ाता है। बकरों के सिर बैगा स्वयं ले लेता है। पूजा सम्पन्न करने के उपलक्ष्य में बैगा को एक श्वेत बकरा और एक धोती दी जाती है।

वैशाख के शुक्ल पक्ष की तृतीया को सभी कृषक इकट्ठा सभी फ़स्लों के लिए बोवाई से सम्बन्धित एक उत्सव मनाते हैं। उस दिन पंडित उनके लिए बीज बाहर लाने के हेतु शुभ लग्न निकालता है और यह भी बतलाता है कि अमुक स्त्रियाँ इस कार्य को करेंगी। खेत में हवन करते हैं जो पहली विधिक्रिया होती है। जिस व्यक्ति को खेत जोतने के लिए पंडित नियुक्त करता है वह अपना मुँह पूर्व की ओर करता है। पाँच बार गोलाई में वह हल को चलाता है, फिर पंडित द्वारा नियुक्त एक स्त्री थोड़ा-सा सावाँ जिसे शुभ मानते हैं बीज के रूप में निकालती है। हर जजमान से पंडित को पाँच (पुराने) पैसे और सीधा मिलता है। दिन में कच्चा या पक्का भोजन बहुत बड़ी मात्रा में तैयार होता है। सामान्यत: कच्चे खाने में दाल की रोटी और गुड़ का भात होता है। हरवाहों को जो उत्सव में सम्मिलित होते हैं भोजन दिया जाता है। बैलों को खुला नहीं छोड़ते क्योंकि विश्वास किया जाता है कि यदि इस दिन किसी बैल को चोट पहुँची तो वह वर्ष भर पीड़ित रहेगा। इस उत्सव के सम्पन्न होने के बाद ही लोग बोवाई आरम्भ करते हैं।

कटाई के पूर्व

बैगा द्वारा विधिक्रिया समाप्त करने के उपरान्त ही अगहनी फ़स्ल कटती है। कटाई के समय बैगा आता और अपनी पसन्द के अनुसार किसी खेत से फ़स्ल के पाँच गट्ठे चुन लेता है। इस उत्सव को टड़सुइया कहते हैं और इसके बाद लोग फ़स्ल काटते हैं।

कृषि-कार्यों का वार्षिक वृत्त

क्रम संख्या	हिन्दी मास	तदनुसार अंग्रेज़ी मास	कार्यकलाप
१.	आषाढ़	जून-जुलाई	कृषि वर्ष का प्रारम्भ इस मास से होता है। प्रथम वर्षा के उपरान्त खेत जोते जाते हैं। मकई, धान, सावाँ, कोदों, मेझरी, उर्द, तिल और अरहर बोते हैं। बीज बोने के लिए आर्द्रा नक्षत्र को सर्वोत्तम काल मानते हैं जब वर्षा होती है। तरकारियाँ भी बोई जाती हैं।

क्रम संख्या	हिन्दी मास	तदनुसार अंग्रेज़ी मास	कार्यकलाप
२.	सावन	जुलाई-अगस्त	खेतों की निराई और धान की रोपाई होती है। तरकारियाँ जैसे तरोई और लौकी तैयार होती हैं।
३.	भादों	अगस्त-सितम्बर	जड़हन की रोपाई होती है। मेड़ो, कुरथी और अगहनी उर्द बोते हैं। रबी की फ़स्ल के लिए खेत जोते जाते हैं।
४.	कुआर	सितम्बर-अक्तूबर	धान को छोड़ कर आषाढ़ में बोई हुई अन्य फ़स्लें काटी जाती हैं और इन खेतों को रबी के लिए जोतते हैं।
५.	कार्तिक	अक्तूबर-नवम्बर	गेहूँ, चना, जौ, मटर और मसूर बोते तथा धान काटते हैं।
६.	अगहन	नवम्बर-दिसम्बर	बाद को बोया हुआ धान काटते हैं और बाद को बोया जाने वाला गेहूँ बोते हैं। खेतों को रूँधा जाता है। यह शीत ऋतु का प्रारम्भ होता है और दूसरे पक्ष में लोग आराम करते हैं।
७.	पूस	दिसम्बर-जनवरी	रबी के खेत सींचे जाते हैं। आलू बैठाया जाता है। इस मास में 'खरवाँस' का काल पड़ता है जो किसी भी कार्य के लिए अशुभ माना जाता है।
८.	माघ	जनवरी-फ़रवरी	खेतों में काम अधिक नहीं रहता, फलत: निम्न जाति के लोग श्रम की खोज में बाहर जाते हैं।
९.	फागुन	फ़रवरी-मार्च	रबी की फ़स्लें काटी, दँवाई और जमा की जाती हैं।
१०.	चैत	मार्च-अप्रैल	
११.	वैशाख	अप्रैल-मई	खेतों में खाद डालते हैं। वर्षा काल के लिए ईंधन जमा करते हैं। नए बैलों को हल खींचने का अभ्यास कराते हैं।
१२.	जेठ	मई-जून	भीषण गर्मी के कारण लोग खेतों में अधिक काम नहीं कर सकते। कृषक वर्षा की राह देखते हैं।

कृषि श्रम

सामान्यत: भूस्वामी और उनके परिवार के लोग सभी अपने-अपने खेतों में काम करते हैं परन्तु कुछ उच्चजातीय धनी लोग श्रमिकों द्वारा काम कराते हैं। इस प्रकार भूमिहीन अथवा अत्यल्प भूमि वाले व्यक्ति दूसरों के खेतों में काम कर थोड़ा-बहुत कमा लेते हैं। खेतों की निराई, धान की रोपाई, कटाई, दँवाई और ओसाई में श्रम अपेक्षित होता है। पहले श्रम बहुत सस्ता था — पुरुष के लिए एक आना और स्त्री के लिए ३ (पुराने) पैसे प्रति दिन। १९३० में दरें बढ़ कर पुरुष के लिए २ आने और स्त्री के लिए १½ आने प्रति दिन हो गईं। वर्तमान दरें १९४५ में निर्धारित हुई थीं। आजकल दैनिक पारिश्रमिक पुरुष के लिए एक रुपया और स्त्री के लिए ८ आना है। हरवाहों को १० या १२ आना प्रति दिन के दर से महीने-महीने पैसे दिए जाते हैं। खेतों की सिंचाई और उनमें खाद डालना पारस्परिक सहयोग पर आधारित है।

गाँव के बागों में या इधर-उधर बिखरे हुए आम, अमरूद और शरीफ़े के वृक्ष दिखाई पड़ते हैं। इनमें सबसे अधिक आम के वृक्ष हैं। व्यक्तिगत स्वामित्व वाले आम के चार बाग गाँव में हैं। दो बनियों का एक बाग है जिसमें ६० वृक्ष हैं। दूसरा बाग जिसमें लगभग ७० वृक्ष हैं दो माझियों का है किन्तु ऋण के बदले में इसके अधिकांश वृक्ष रेहन पर उठा दिए गए हैं। तीसरा बाग भी एक बनिये का है और उसमें लगभग २५ वृक्ष हैं। चौथा बाग जिसमें केवल ८ वृक्ष हैं एक ठाकुर का है। ये चारों बाग बहुत पुराने हैं। सा. वि. यो. की प्रेरणा से कुछ नए बाग लग गए हैं और इनका वर्णन हम अन्यत्र करेंगे। परन्तु देखने में आता है कि निम्न जाति वालों के कोई बाग या फलों के बागीचे नहीं होते यद्यपि इधर-उधर बिखरे हुए कुछ वृक्ष उनके अधिकार में हैं।

ऊपर जिन आम के वृक्षों का उल्लेख हुआ है वे सब देसी या तुख़्मी क़िस्म के हैं। चितौरा की मिट्टी क़लमी क़िस्म के लिए अनुपयुक्त है। कुछ दिनों पूर्व कुछ क़लमी वृक्ष लगाए गए थे परन्तु तीन वर्षों में ही वे अपना गुण खो बैठे और घटिया क़िस्म के हो गए।

वृक्षों की उपज दुद्धी में बेची जाती है। हाटों में पक्के और कच्चे दोनों प्रकार के आम लोकप्रिय हैं। कभी-कभी खटाई भी तैयार करते और बेचते हैं। अँचार और मुरब्बे यद्यपि हाटों में नहीं ले जाते, घरेलू उपयोग के लिए थोड़ी मात्रा में उन्हें तैयार करते हैं।

गाँव में विभिन्न लोगों के, अधिकतर उच्चजातीय लोगों के, लगभग अमरूद के १०० वृक्ष हैं। अधिकतर अमरूद के वृक्षों को अलग न लगा कर आम और शरीफ़े के वृक्षों के साथ ही लगाते हैं। चितौरा के अमरूद उम्दा क़िस्म के हैं और अच्छे मूल्य

पर बिकते हैं। वर्ष में अमरूद की दो फ़स्लें होती हैं, वर्षा ऋतु में और फिर शीत काल में। जाड़े की फ़स्ल गुण और परिमाण दोनों में अधिक अच्छी होने के कारण दूसरी फ़स्ल की अपेक्षा अधिक मूल्य पर बिकती है।

शरीफ़े के वृक्षों की भी संख्या लगभग १०० है और वे इधर-उधर बिखरे हैं। मौसम में एक शरीफ़ा ३ पैसे का अन्यथा ६ पैसे का बिकता है। शरीफ़े का मौसम नवम्बर से आरम्भ होता है।

इन फलदायी वृक्षों के अलावा जामुन, बेल और सन्तरे के भी कुछ वृक्ष हैं। ऐसा विश्वास है कि खट्टे फलों के उगाने से भूमि आम के लिए बहुत उपयुक्त हो जाती है, फलतः आम के वृक्षों के मध्य नीबू के वृक्ष मिलते हैं।

गाँव में महुए के लगभग १५० वृक्ष हैं जिनमें १०० ठाकुरों और ब्राह्मणों के हैं तथा शेष निम्न जातियों और कबायली समूहों के। महुए का फूल स्वाद में मीठा होता है और निर्धन व्यक्ति जिनके पास अपने परिवारों की आवश्यकता-पूर्ति के लिए पर्याप्त अन्न नहीं होता अन्न के स्थान पर महुए के फूल का उपयोग करते हैं। महुए का फल भी जिसे डोरी कहते हैं कुछ-कुछ मीठा होता है और उसे भी कुछ लोग खाते हैं। बीजों से तेल निकालते हैं जिसका प्रयोग साबुन-निर्माण में अथवा जैसा चितौरा में होता है भोजन तैयार करने में करते हैं। उच्चजातीय लोग महुए के फूल को खाते नहीं किन्तु अपने श्रमिकों को भोजन के स्थान पर उसे देते हैं।

महुए का फूल आहार के रूप में प्रयुक्त होने के अलावा शराब बनाने के काम में भी आता है। ग्रामवासियों का विश्वास है कि यह शराब शक्तिदायिनी होती है और उचित मात्रा में ली जाने पर रोग से रक्षा करती है। मात्रा की अति कर देने पर इसे पचाना कठिन होता है और यह मनुष्य की जीवनशक्ति को नष्ट करती है। महुए के वृक्ष में मार्च में फूल लगते हैं। एक अच्छे वृक्ष में लगभग चार मन फूल लगते हैं जिन्हें इकट्ठा कर और सुखा कर भविष्य के उपयोग के लिए रख छोड़ते हैं। यदि बहुत अधिक फूल लगे तो उनमें से कुछ भट्ठियों या निकट की हाटों में बेच देते हैं। कभी-कभी शराब के बदले में उसे बेचते हैं। पशुओं को भी महुआ दिया जाता है।

डोरी जून में मिलता है। उसके बीज को अलग कर तेलियों को बेच देते हैं। एक मन डोरी से लगभग १६ सेर तेल निकलता है।

चितौरा में एक जंगली क़िस्म का बेर बहुतायत से मिलता है। इन वृक्षों का कोई मालिक नहीं क्योंकि ये स्वतः उगते रहते हैं। परन्तु निर्धन व्यक्ति बेर के फलों को इकट्ठा और आहार के रूप में प्रयुक्त करते हैं जब उनके पास खाने के लिए अन्य कुछ नहीं रहता। ये फल नवम्बर, दिसम्बर और जनवरी में मिलते हैं। कभी-कभी धूप में फल को सुखाते और तब उसे पीस कर चूर्ण तैयार करते हैं जिसे खटाई

(बेरचुर) कहते हैं क्योंकि उसका स्वाद खट्टा होता है। लू लगने पर उसे शर्बत के साथ देते हैं। हाटों में बेरचुर २ से ४ सेर प्रति रुपए के भाव बिकता है। बेर का प्रयोग उतना साधारण नहीं है जितना महुए का।

किसी समय चितौरा में लाह का व्यापार बड़े उत्साह से चलता था। उच्च जातियाँ कृषि में लगी हुई थीं, अतः इस व्यापार को नीची जाति वाले और कवायली चलाते थे। प्रति वर्ष लगभग २०० मन लाह का उत्पादन होता था। उसका मूल्य ४० से ६० रु. प्रति मन था। बनिये इस दर पर लाह ख़रीद कर हाटों में ६० से ९० रुपये प्रति मन के भाव बेचते थे। पहले ग्रामवासी लाह-संचय की सही रीति नहीं जानते थे, अतः उसका उत्पादन बहुत कम था। बाद में सरकार ने लाह का एक फ़ार्म बनाया जहाँ लाह-उत्पादन के सही ढंग सिखाए जाते थे। सरकारी फ़ार्म में लगभग १,२०० वृक्ष थे। लाह का मौसम नवम्बर में आरम्भ हो कर अप्रैल में समाप्त होता है। नवम्बर में वृक्षों की छँटाई (pruning) होती है। जो वृक्ष छाँटे जाते हैं उनसे लाह नहीं पैदा होता। हरी टहनियों पर कीड़ा पैदा होता है। ऐसी टहनियों को तोड़ कर अन्य वृक्षों की चार-पाँच टहनियों से जिनमें कीड़ा नहीं लगा रहता बाँध देते हैं। इस प्रकार छूत अन्य वृक्षों तक पहुँचता रहता है। कीड़े हरे पत्तों और टहनियों के रस को खा डालते हैं और तब उनमें से एक द्रव निकलता है जो शीघ्र ही कड़ा हो जाता है। बाद में टहनियों से लाह को खुरच लेते हैं। कीड़े लगी हुई कुछ टहनियाँ तोड़ी नहीं जातीं और उन्हें अगले वर्ष वृक्षों में छूत पहुँचाने के लिए छोड़ रखा जाता है। लाह-संचय अप्रैल में समाप्त होता है।

पशुपालन

पशुपालन से प्राप्त आय द्वारा कृषक अपनी कृषि की आय की पूर्ति की चेष्टा करते हैं। परन्तु बहुधा पशुपालन आर्थिक दृष्टि से लाभकर नहीं होता और कभी-कभी भार-स्वरूप हो जाता है। पशुगणना आगे चल कर 'सम्पत्ति' के अंतर्गत दी गई है। पशु बहुत घटिया नस्ल के हैं और यदि बेचे जायँ तो बहुत कम मूल्य मिलता है। वृद्ध तथा अशक्त पशुओं को भी रखते हैं और उन्हें बेचते नहीं। यह पूछे जाने पर कि बिलकुल आर्थिक लाभ न होने पर भी वे क्यों उन्हें पालते हैं ग्रामवासियों ने निम्नलिखित कारण बताए—

(१) ग्रामवासी पशुओं को मुख्य रूप से इसलिए पालते हैं क्योंकि उन पर उन्हें कुछ व्यय नहीं करना पड़ता। चारा न तो मोल लिया जाता है न उगाया। विभिन्न फ़स्लों की डंठलों और भूसे को चारे के रूप में प्रयुक्त करते हैं। अन्य काल में ऊसर भूमि और वनों में चरने के लिए पशु भेज दिए जाते हैं। ज़मींदारी

काल में ऐसा ही रिवाज था और आजकल भी यद्यपि वन विभाग ने वनों पर अधिकार कर लिया है उनके कुछ भागों में पशु चरने के लिए भेज दिए जाते हैं।

(२) ग्रामवासियों द्वारा पशुओं के पालने का एक अन्य कारण यह है कि उनसे खाद मिलती है। सा. वि. यो. के आने के पूर्व वस्तुतः गोबर एकमात्र खाद थी जिसे लोग अपने खेतों में प्रयुक्त करते थे।

(३) बहुत दिन पूर्व यह क्षेत्र वनाच्छादित था और लोग कृषि से अनभिज्ञ थे। अतः उन्होंने पशुओं को पालना आरम्भ किया जिसमें उन्हें कुछ व्यय नहीं करना पड़ता था परन्तु आय ही होती थी। उस समय उन्हें कभी जलाभाव का सामना नहीं करना पड़ता था और पेड़-पौदे बहुतायत से थे। इन परिस्थितियों में पशु ही धन थे। परन्तु क्रमशः अवस्था बदली और अब पशुपालन लाभकर व्यवसाय न रहा। परन्तु कुछ लोगों के मस्तिष्क में यह विचार अभी भी जमा हुआ है कि पशुओं का रखना धन का लक्षण है। फलतः वे पशुपालन छोड़ना नहीं चाहते।

(४) कुछ ग्रामवासियों के पास बैलों के दो-दो, तीन-तीन जोड़े हैं। उनका कथन है कि यह अत्यावश्यक है क्योंकि पशु इतने दुर्बल हैं कि वे अधिक समय तक लगातार हल नहीं खींच सकते। जिस कृषक के पास बैलों के दो-तीन जोड़े होते हैं वह उन्हें बारी-बारी से जोतता है।

(५) ग्रामवासी गाय को लक्ष्मी मानते हैं और उनकी इच्छा होती है कि उनके यहाँ अनेक लक्ष्मी रहें। धार्मिक विश्वासों के कारण वृद्ध तथा बेकार पशुओं को लोग नहीं त्यागते।

परम्परागत जाति व्यवसाय

ग्राम्य जीवन में जाति का महत्व सर्वविदित है। जाति का विचार सामाजिक दूरी निर्धारित करता है। जातिक्रम में सर्वोच्च ब्राह्मण और क्षत्रिय प्रायः गाँव के निर्णायक होते हैं। स्वभावतः गाँव के किसी काम में यदि अन्य जातियों के लोग अगुआ बनें तो वे विरोध करते हैं। सामाजिक सीढ़ी में सबसे नीचे पासी और चमार हैं। यद्यपि संख्या की दृष्टि से चमार सर्वाधिक हैं (परिवार-संख्या तथा व्यक्ति-संख्या दोनों प्रकार से), सामाजिक दृष्टि से वे निम्नतम हैं और आर्थिक दृष्टि से सबसे बुरी दशा में। इन उच्चतम और निम्नतम समुदायों के मध्य विभिन्न कारीगर जातियाँ आती हैं। कबायली समूह चमारों से भी निम्नतर हैं। प्रत्येक जाति या कबायली समुदाय अपने में एक इकाई है जिसकी अपनी पंचायत है, यद्यपि ब्राह्मण और क्षत्रिय प्रायः गाँव के शांति-संस्थापकों का कर्तृत्व (role) ग्रहण कर लेते हैं। कुछ परम्परागत जाति व्यवसाय अभी भी चल रहे हैं यद्यपि अधिकांश विलुप्त हो गए हैं।

यद्यपि कृषि प्रायः सभी ग्रामवासियों का मुख्य सहारा और साधन है, कुछ ऐसे लोग हैं जिन्होंने कृषि अपनाने के साथ-साथ अपने परम्परागत व्यवसायों को नहीं छोड़ा है। कुछ चमार अभी भी जूते का काम करते हैं और शिशुजन्म के समय सभी परिवारों में चमार स्त्रियाँ बुलाई जाती हैं। तेली अपने खेतों में काम करते हैं और साथ ही तेल का अपना पुराना व्यापार भी चलाते हैं। अहीरों के साथ भी वैसी ही बात है यद्यपि मुख्य रूप से वे कृषक हैं। उनमें से कुछ अभी भी पशुपालन में अत्यधिक रुचि रखते हैं। कुम्हार मुख्य रूप से घड़े और मिट्टी के अन्य बर्तन बनाने पर निर्भर रहते हैं। गाँव में मिट्टी के घड़ों, कछरा-कछरी (jar), कसोरा, अथरी (bowl), आदि की बहुत अधिक माँग रहती है। चितौरा का लोहार बढ़ई और लोहार दोनों का काम करता है। उसके बदले में वह पैसे या अनाज लेता है। विवाह के समय लोहार से लकड़ी के छोटे-छोटे पीढ़े और मंडप को सजाने के लिए लकड़ी के तोते मँगाते हैं। उसके बदले में वह बीस आने, अपनी स्त्री के लिए एक साड़ी और 'सीधा' पाता है। कच्चा माल देने पर ही लोहार नए उपकरण बनाता है। वह कृषि-उपकरणों की मरम्मत करता है परन्तु साइकिल या लालटेन की नहीं। पनिका लोगों ने अपने परम्परागत व्यवसाय कताई-बुनाई को बिलकुल छोड़ दिया है और वे श्रमिकों के रूप में काम करते हैं।

जाति तथा लिंग पर आधारित श्रम-विभाजन

जाति	पुरुष	स्त्री
ब्राह्मण	कृषि, हाट करना और पुरोहिताई। जिन्हें उत्साह होता है वे १५ वर्ष की अवस्था से कथापाठ सीखने लगते हैं और इसके निमित्त अपने पिता के साथ कथा-उत्सवों में जाते हैं। निर्धन परिवारों के ब्राह्मण दैनिक श्रमिक के रूप में काम करते हैं।	घर का सभी काम, यथा भोजन पकाना, बर्तन माँजना, दाल दलना, धान कूटना, घर साफ़ करना और शिशुपालन।
क्षत्रिय	कुछ ठाकुर कृषि-सम्बन्धी सभी काम करते हैं परन्तु अधिकांश के अपने हरवाह हैं। कुछ ने व्यापार कर रखा है। कुछ परिवार के उपयोग के लिए पानी भरते हैं।	ब्राह्मण स्त्रियों के समान।

जाति	पुरुष	स्त्री
अग्रहरी	व्यापार, हाट करना, कृषि।	सभी घरेलू काम।
कलवार	कृषि और 'लगनी', हाट करना। निर्धन व्यक्ति दैनिक पारिश्रमिक पर काम करते हैं।	ब्राह्मण स्त्रियों के समान।
अहीर	कृषि, पशुपालन, ढोर चराना, दूध दुहना, आदि। कुछ दैनिक पारिश्रमिक पर काम करते हैं। हाट करना।	सभी घरेलू काम करती हैं और हाट में दूध ले जाती हैं। अविवाहित लड़कियाँ चराने के लिए ढोरों को बाहर ले जाती हैं।
लोहार	कृषि, लोहारी, हाट करना।	घर का सब काम करती हैं और लोहारी के काम के लिए ईंधन इकट्ठा करने वन में जाती हैं।
तेली	कृषि। श्रमिक के रूप में काम करते हैं। तेल निकालना।	घर का सब काम करती हैं और यदि पुरुष खेत पर काम कर रहे हों तो तेल निकालती हैं।
कुम्हार	मिट्टी के बर्तन बनाना।	घर का सब काम करती हैं और मिट्टी के बर्तन बनाने में पुरुषों की सहायता करती हैं।
	पुरुष-स्त्री दोनों बर्तन बेचने हाट करते हैं।	
पासी	कृषि, दैनिक पारिश्रमिक पर काम।	घरेलू काम, कृषि-सम्बन्धी काम जैसे अपने खेतों में कटाई।
चमार	कुछ जूते का काम करते हैं परन्तु अधिकांश दूसरों के खेतों में मासिक अथवा दैनिक पारिश्रमिक पर काम करते हैं। कुछ हरवाहों के रूप में काम करते हैं। ईंट बनाने के लिए बाहर जाते हैं।	सभी घरेलू काम करती हैं। दूसरों के खेतों में या उच्चजातीय लोगों के घरों में पारिश्रमिक पर काम करती हैं। गाँव के अन्दर ईंट बनाती हैं। शिशुजन्म के समय माँ की परिचर्या करती हैं।
	पुरुष-स्त्री दोनों हाट करते हैं।	

जाति	पुरुष	स्त्री
माझी	कृषि। हरवाह के रूप में और दैनिक पारिश्रमिक पर भी काम करते हैं।	घर का सब काम करती हैं। कृषि-सम्बन्धी कामों में सहायता करती हैं किन्तु हल नहीं छूतीं।
	पुरुष-स्त्री दोनों हाट करते हैं। ७–८ वर्ष की अवस्था से लड़के-लड़कियाँ पशुओं की देखभाल में लग जाती हैं।	
खरवार	कृषि कार्य, हाट करना, आदि।	घरेलू काम। श्रमिकों के रूप में भी काम करती हैं।
पनिका	दैनिक अथवा मासिक पारिश्रमिक पर श्रमिकों के रूप में काम करते हैं। हाट करते हैं।	सब घरेलू काम करती हैं और लकड़ी तथा घास इकट्ठा करती और बेचती हैं। श्रमिकों के रूप में काम करती हैं।
भुइयाँ	पनिकों के समान।	पनिका स्त्रियों के समान।

सम्पत्ति

ग्रामवासी दो प्रकार की सम्पत्ति बतलाते हैं, अर्थात् सामुदायिक सम्पत्ति और वैयक्तिक सम्पत्ति। सामुदायिक सम्पत्ति में कुँयें, बंधी और देवस्थान सम्मिलित हैं जो समग्र ग्रामवासियों के हितार्थ हैं। प्राय: एक बंधी किसी व्यक्ति अथवा परिवार की होती है परन्तु इससे सभी पड़ोस के खेतों को सींचते हैं, अत: इसे सदा सामुदायिक सम्पत्ति में ही सम्मिलित करते हैं। दूसरे प्रकार की सम्पत्ति पर किसी व्यक्ति अथवा परिवार का स्वामित्व होता है और उसका उपयोग वह व्यक्ति अथवा परिवार मात्र करता है। ऐसी सम्पत्ति में भूमि, गृह, पशु, घरेलू बर्तन, फ़र्नीचर, आभूषण और कृषि उपकरण सम्मिलित हैं। स्वामी इस सम्पत्ति की रक्षा बड़े यत्न से करता है।

भूमि

गाँव में दो प्रकार की भूमि है, आराज़ी मुस्तक़िल और जंगली आराज़ी। आराज़ी मुस्तक़िल वह भूमि है जिस पर नियमित रूप से कृषि होती है जब कि जंगली आराज़ी को एक से तीन वर्ष तक ऊसर छोड़ना पड़ता है। उनके अलावा बाग और फल के बागीचे भी हैं।

घर

ग्रामवासियों के घर मिट्टी या कच्ची ईटों के हैं और उनकी छतें घटिया क़िस्म की पकाई खपरैल की। घर का आकार परिवार के आकार पर निर्भर होता है और स्वामी की आर्थिक मर्यादा पर भी। कुछ घरों में तीन-चार कमरे हैं और कुछ में केवल एक। कुछ घरों में आँगन और दालान हैं। सब घरों का एक समान लक्षण खिड़कियों का अथवा वायु के आवागमन के हेतु किसी अन्य साधन का अभाव है। चमारों जैसे कुछ निम्नजातीय लोगों और कबायली समूहों के पास कोई भूमि या घर नहीं हैं। दूसरों की भूमि पर खड़े जीर्ण-शीर्ण झोपड़ों में रहने के लिए वे बाध्य हैं।

पशुधन

१९५६ में चितौरा में की गई एक पशुगणना के अनुसार गाँव में पशुओं की संख्या इस प्रकार है—

गाय	२४४
बैल	३१७
भैंस	३१
भैंसा	९
मुर्गा-मुर्गी	१४६
घोड़े	७

अधिकांश निम्नजातीय और कबायली तथा कुछ उच्चजातीय लोगों के पास भी कोई पशु नहीं हैं क्योंकि उसका अर्थ है अतिरिक्त व्यय और अतिरिक्त काम।

घरेलू बर्तन

धनी परिवारों में निर्धन परिवारों की अपेक्षा अधिक और अच्छे क़िस्म के बर्तन हैं। लोहे के बर्तन कम हैं और पीतल तथा फूल के अधिक। कुछ सम्पन्न परिवारों में मिट्टी के काचित (glazed) प्यालों और काँच के भी बर्तनों का प्रयोग होता है। चीनी मिट्टी के बर्तन किसी घर में नहीं हैं। साधारणतः गाँव में प्रयुक्त होने वाले बर्तन घड़ा (गगरा), तावा, चिमटा, चिमचा और करछुली हैं। ये सब लोहे के होते हैं। पीतल के लोटे और गिलास और लोहे की बाल्टियाँ और हाँडियाँ भी प्रयोग की जाती हैं। परिवार की आर्थिक मर्यादा के अनुसार कटोरियाँ और थालियाँ फूल, पीतल, एल्यूमिनियम या लोहे की होती हैं। धनी-निर्धन सभी घरों में मिट्टी के घड़े, सुराहियाँ, हाँडियाँ, कूँड़ा (bowl) और मूठदार बर्तन (jug) मिलते हैं। आटा, दाल, चावल सदृश अन्नों तथा गरम मसालों को संग्रहीत करने के लिए मिट्टी के बड़े-बड़े बर्तन काम में लाते हैं। दुद्धी की साप्ताहिक हाटों में मिट्टी के बर्तन बहुतायत से मिलते हैं और उनकी माँग पर्याप्त रूप से पूरी हो जाती है।

फ़र्नीचर

ग्रामवासी फ़र्नीचर का अधिक प्रयोग नहीं करते। केवल कुछ खाट, छोटे स्टूल और पीढ़ियाँ (छोटे पैरों वाली मूँज की बुनी कुर्सियाँ) उनके पास होती हैं। कुछ धनी परिवारों में मुड़ने वाली कुछ आराम कुर्सियाँ हैं।

आभूषण

गाँव की स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त नाना प्रकार के आभूषणों में निम्नलिखित हैं —

सिर के आभूषण	झूमर और सिरबन्दी
नाक के आभूषण	नथ या नथिया
कान के आभूषण	करनफूल और तरका
गले के आभूषण	हँसली, हैरल, सिकड़ी और ... ...
बाँह के आभूषण	बजुआ, बरैखी और टंडा
कलाई के आभूषण	बिरमा, ककसी और बंगुर
उँगली के आभूषण	छल्ला अर्थात् अँगूठी
टख़ने के आभूषण	कड़ा, छड़ा और घुंघुरू
पैर की उँगली के आभूषण	छल्ला और बिछिया

उच्चजातीय स्त्रियाँ सोने-चाँदी के गहने पहनती हैं जब कि निर्धन, निम्नजातीय और कबायली स्त्रियाँ पीतल और निकेल के यद्यपि उनमें से कुछ के पास थोड़े-से सोने-चाँदी के गहने भी हो सकते हैं। सभी गहने एक ही नमूने के होते हैं। नाक के आभूषण सदा सोने के होते हैं क्योंकि इनके बनाने में बहुत कम सोना अपेक्षित होता है और इसलिए भी कि स्त्रियों का विश्वास है कि नाक पर सोने के अलावा कोई अन्य धातु नहीं पहननी चाहिए। अतएव जो स्त्रियाँ नाक के गहनों के लिए सोने का प्रबन्ध नहीं कर सकतीं वे नाक के गहने पहनतीं ही नहीं। गले के गहने सामान्यतः चाँदी के होते हैं क्योंकि अधिकांश परिवार सोने के गहने मोल नहीं ले सकते। बाँह के गहने भी प्रायः चाँदी के होते हैं और टख़ने तथा पैर की उँगली के गहनों के लिए सोने का प्रयोग कभी नहीं करते। बिछिया केवल सधवा स्त्रियाँ पहनती हैं। उपर्युक्त आभूषणों के अतिरिक्त बनिया स्त्रियाँ बाँह में अनन्त और कमर में करधनी पहनती हैं। परन्तु कबायली स्त्रियाँ ही वस्तुतः सभी प्रकार के आभूषणों से जो सामान्यतः घटिया धातुओं के होते हैं निज को सुसज्जित करती हैं। दुद्धी की साप्ताहिक हाटों का एक साधारण दृश्य कबायली स्त्रियाँ हैं जो कलाई से पहुँचे या उसके थोड़ा नीचे तक धातु की चूड़ियाँ और अनेक आभूषण पहने रहती हैं। उनके गले और टख़ने भी इसी प्रकार लदे रहते हैं। कुछ सम्पन्न कबायली स्त्रियाँ गले में

हैरल पहनती हैं। हैरल उस सिकड़ी को कहते हैं जिसमें रुपए के सिक्के (अधिकतर एडवर्ड सप्तम, सम्राज्ञी विक्टोरिया और ज्यॉर्ज पंचम के काल के) गुँथे रहते हैं। एक हैरल में २० से ३० तक रुपए के सिक्के होते हैं।

कृषि उपकरण

१९५६ में की गई एक गणना के अनुसार गाँव में विभिन्न लोगों के पास ८० हल हैं। ग्रामवासियों के पास अन्य उपकरण हैं फावड़े, हँसिया और हेंगा (levellers)। वे सब आदिम और अल्प संख्या में हैं जिससे साधारणतः कृषि उपकरण उधार लिए-दिए जाते हैं। गाँव में बैलगाड़ियाँ बहुत कम हैं क्योंकि बैलगाड़ी विलासवस्तु है। १९५६ की उक्त गणना के अनुसार उस समय गाँव में केवल एक बैलगाड़ी थी।

सम्पत्ति का हस्तान्तरण

१९३६ से १९५५ के काल को आधार मान कर १९५६ में चितौरा की जोतों का एक सर्वेक्षण किया गया और इस अध्ययन से ऐसे अनेक उदाहरणों का पता चला जिनमें भूमि एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के हाथ में चली गई क्योंकि मूल स्वामी अत्यंत कठिन आर्थिक स्थिति में पड़ गया था। सर्वेक्षण से इस तथ्य का भी उद्घाटन हुआ कि ग्रामवासियों के अज्ञान और विवशता का अनुचित लाभ उठा कर अन्य जनों ने वलपूर्वक उनकी भूमि पर अधिकार कर लिया है। दुद्धी एक सरकारी इस्टेट रही है और सारी भूमि इस्टेट की थी। फलतः यहाँ के किसानों को क्रय-विक्रय के कोई अधिकार न थे। क्रय, विक्रय और रेहन व्यक्तिगत तथा ग़ैर-सरकारी मामले थे। यदि कोई भूस्वामी किसी खेत को बेचना या रेहन करना चाहता तो उसके लिए एक-मात्र रास्ता यह था कि वह खेत को सपुरदार के हवाले कर दे। फिर निजी व्यवस्था द्वारा सपुरदार उस व्यक्ति को खेत दे सकता था जिसे उसका स्वामी बेचना या रेहन करना चाहता। कभी-कभी सपुरदार को घूस देना पड़ता था; अनधिकृत रूप से और ठग कर अधिकार जमाने के मामले होते थे। इसका फल यह हुआ कि सपुरदार की सहायता से निम्नजातीय और कबायली लोगों की भूमि अधिकृत रूप से हस्तान्तरित कर उनके शोषकों को मिल गई और सरकारी काग़ज़ों और दस्तावेज़ों में शोषकों के नाम अंकित कर दी गई। सरकारी इस्टेट अधिकारी रूप से क्रय, विक्रय और हस्तान्तरण को नहीं मानती थी, फलतः लोगों ने सपुरदार को अपनी भूमि समर्पित करने का उपाय अपनाया क्योंकि उन्हें ऋण चुकाने के लिए, विवाहोत्सव के व्यय के लिए और अत्यन्त दरिद्रता की दशा में, विशेषकर चमारों में, घर के व्यय के लिए भी कुछ धन-राशि की अपेक्षा होती थी। ऐसे उदाहरण मिले हैं जिनमें चमारों ने अत्यल्प राशि, ३० रु. से भी कम, ले कर स्वेच्छा से अपनी भूमि दे दी।

अन्य व्यय के लिए खेत बेचने अथवा ऋण के बदले में खेत दे देने की प्रथा अब भी गाँव में व्यापक रूप से प्रचलित है। बनिये ग्रामवासियों की अज्ञानता का अनुचित लाभ उठाते और उनकी बहुत सारी भूमि अपने अधिकार में कर लेते हैं। चितौरा में बहुत कम परिवार हैं जो बनियों के चंगुल में न फँसे हों। इस प्रकार भूमि निर्धन से धनी और मूढ़ से चालाक के हाथ में पहुँचती गई।

एक व्यक्ति से दूसरे के हाथ में सम्पत्ति जाने का एक अन्य कारण उत्तराधिकार है। संयुक्त परिवार में सम्पत्ति का वैयक्तिक स्वामित्व नहीं होता। सभी चल-अचल सम्पत्ति परिवार के प्रधान की होती है जो सामान्यतः परिवार का सबसे वृद्ध व्यक्ति होता है। उसकी मृत्यु के उपरान्त या कभी-कभी जब वह अति वृद्ध तथा अशक्त हो गया हो तो उसके जीवनकाल में ही सम्पत्ति सम्मिलित रूप से उसके सभी पुत्रों के हाथों में चली जाती है यद्यपि सबसे बड़ा लड़का परिवार का प्रधान बनता है। परन्तु प्रायः झगड़ों और परिवार से अलग होने के कारण सम्पत्ति सभी पुत्रों में समान रूप से बँट जाती है।

चतुर्थ अध्याय

उत्तमर्णों का आगमन और ग्रामवासियों की ऋणग्रस्तता

बनिये जो अब उत्तमर्ण (महाजन) हैं और जिन्होंने निर्धन व्यक्तियों को उनकी भूमि से वंचित कर दिया है आरम्भ में छोटे दूकानदारों के रूप में गाँव में बसे। किस प्रकार उन्होंने निज को गाँव में क्रमशः किन्तु ठोस रूप से जमाया उसका बहुत मनोरंजक इतिहास है। अपनी छोटी-छोटी दूकानों में वे गरम मसाले, मर्चा, गुड़, घी, सरसों का तेल और तम्बाकू बेचते थे। इस प्रदेश के कबायली तम्बाकू खाने और पीने दोनों के बहुत शौकीन हैं किन्तु वे हमेशा उसे मोल लेने की स्थिति में नहीं रहते थे। बनियों ने यह देखा तो वे कबायली लोगों को बिना मूल्य तम्बाकू देने लगे जिससे उन्हें अधिकाधिक तम्बाकू का व्यसन पड़ गया। तम्बाकू के बिना मूल्य वितरण से बनियों ने ग्रामवासियों का विश्वास प्राप्त किया। इस मैत्री को दृढ़ बनाने के लिए बनियों ने पर्वो पर ग्रामवासियों, विशेषकर बच्चों, को कपड़े और मिठाइयाँ देना आरम्भ किया। यदि बनियों की सच्चाई के बारे में ग्रामवासियों को तनिक भी सन्देह था तो वह भी जाता रहा। बनिये विनम्र और उदार थे। यदि ग्रामवासी तम्बाकू अथवा उपहारों के बदले में पैसा देना चाहते तो बनिये नम्रतापूर्वक पैसे लेना अस्वीकार कर देते और कहते कि गाँव के नवागन्तुकों को ऐसी छोटी-छोटी वस्तुओं के लिए गाँव के 'ज़मींदारों' से पैसा न्हीं लेना चाहिए। इस प्रकार ग्रामवासी बनियों को अपना मित्र मानने लगे।

प्रायः देखा जाता है कि कृषकों के लिए दुर्दिन बारम्बार विभिन्न रूपों में आते रहते हैं। किसी वर्ष अनावृष्टि है तो अगले वर्ष फ़स्लें रोगों से नष्ट हो जाती हैं और तीसरे वर्ष सम्भवतः अतिवृष्टि होती है। एक फ़स्ल की क्षति भी निर्धन कृषकों के लिए भारी समस्या खड़ी कर देती है, बारम्बार क्षति से तो उनकी कमर ही टूट जाती है। ऐसे समय में ही चितौरा में सामयिक सहायता के लिए बनियों का आगमन हुआ। उन्होंने ग्रामवासियों को एक आना प्रति रुपया प्रति मास के ऊँचे ब्याज पर द्रव्यऋण देना आरम्भ किया। ग्रामवासी जानते थे कि ब्याज बहुत अधिक है। तथापि वे इस बात से बहुत प्रभावित हुए कि ऐसे समय में जब उन्हें नहीं सूझता था कि किससे सहायता की याचना करें, बनिये वस्तुतः 'आपत्काल के मित्र' सिद्ध हुए। बनियों की ओर से किसी भी ठगी का सन्देह किए बिना ग्रामवासी दस्तावेज़ पर अपने अँगूठों के निशान लगा देते। परन्तु बनिये बेईमान थे और उनके खातों में जितनी राशि वस्तुतः ग्रामवासी ऋण पर लेते उससे अधिक राशि दिखाई जाती। फिर ऋण लौटाते समय

भी बनियों के खातों में बड़ी आसानी से ग्रामवासियों की क़िस्तों का कोई उल्लेख नहीं रहता, यद्यपि उन्हें कितना ब्याज चुकाना है इसका उल्लेख अवश्य होता। इस प्रकार ऋण दुगुना, तिगुना होता हुआ इतना अधिक चढ़ जाता कि ऋणी के जीवन-काल में तो उससे मुक्ति पाने की कोई सम्भावना न रहती। यदि कोई थोड़ा दूरदर्शी अधमर्ण (ऋणी) अपने उत्तमर्ण (महाजन) से पूछता कि ऋण कैसे इतना अधिक हो गया तो बनिया मधुर शब्दों का सहारा लेता और उसे विश्वास दिलाने के लिए अपनी ईमानदारी और सच्चे कारोबार की घोषणा करता। यदि ग्रामवासी तब भी सन्तुष्ट न हो तो वह कुछ कर भी न सकता। वह निरक्षर था और ऋण का कोई हिसाब उसके पास न था जब कि बनिये के पास सब कुछ लिखित रूप में था जिसे दुर्भाग्यवश निर्धन ग्रामवासी पढ़ नहीं सकता था। वह मूढ़ तथा मूर्ख था जब कि बनिया चतुर तथा शिक्षित। यदि कोई व्यक्ति ऋण न चुका पाता, और ऐसा ही प्रायः होता, तो उसका पुत्र ऋणी रहता और उसके बाद उसका पुत्र और इस प्रकार कई पीढ़ियों से ग्रामवासी बनियों के ऋणी रहे हैं।

द्रव्य उधार लेना ऋण का एकमात्र रूप नहीं है। अन्न भी बीज अथवा खाने के लिए उधार लिया जाता है। यदि कोई ग्रामवासी एक मन अन्न उधार लेता है तो मौसमी फ़स्ल पर उसे डेढ़ मन वापस करना होता है। यदि किसी विपत्ति के कारण वह ऋण वापस करने में असमर्थ रहा तो उसे मूल का डेढ़ा और अगली मौसमी फ़स्ल पर ब्याज भी देना होता है। अन्न उधार लेने के लिए भी ग्रामवासी बनियों के पास ही जाते क्योंकि उनके पास ही अन्न के वृहत् भांडार होते और वे ही दूसरों को उधार देने की स्थिति में थे। ग्रामवासी दुबारा ठगे गए। बनियों से अन्न और धन उधार लेने का व्यापार अब भी चलता है। परन्तु बनिये सदा उच्चजातीय लोगों के हिसाब गड़बड़ नहीं करते और कभी-कभी लौटाई हुई राशि की रसीद उन्हें देते हैं। इस प्रकार उत्तमर्ण के सबसे अधिक शिकार निम्नजातीय और कबायली लोग हैं। पहले द्रव्यऋण देना बनियों का एकाधिकार था, अब अन्य जन भी यह व्यापार करते हैं।

जब कोई अधमर्ण ऋण चुकाने में असमर्थ होता है और उत्तमर्ण उस पर दबाब डालता है तो उसके सामने उत्तमर्ण को अपनी भूमि रेहन करने अथवा अपने पशुओं और अन्य सम्पत्ति को बेचने के अलावा अन्य रास्ता नहीं रहता। इस प्रकार उत्तमर्णों के हाथों में अनेक खेत आ गए हैं। यह विदित है कि ऋण के बदले भूमि लेते समय उत्तमर्ण पटवारी को घूस देते रहे हैं जिससे उन्हें जितनी भूमि मिलनी चाहिए उससे अधिक उनके नाम लिख दी जाती। यदि बनिये को केवल ५ बीघा भूमि मिलनी चाहिए तो सम्भवतः वह ९ या १० बीघे पा जाता है। यदि ऋण २०० रु. हुआ तो ५०० रु. की सम्पत्ति पर वह अधिकार कर लेता है। इस प्रकार ग्रामवासी ठगे गए

और उन्हें अपनी भूमि से हाथ धोना पड़ा। कतिपय ग्रामवासियों की भूमि पूर्ण या आंशिक रूप से उत्तमर्णों के हाथ में उनके अथवा उनके पूर्वजों द्वारा लिए गए ऋण के बदले में चली गई है।

ऐसे उदाहरणों की भी कमी नहीं है जिनमें उत्तमर्ण द्वारा भूमि, पशु, आभूषण, गृह तथा समस्त सम्पत्ति पर अधिकार कर लेने के बाद भी ऋण शेष रह गया है। ऐसे उदाहरणों में अधमर्ण उत्तमर्ण की सम्पत्ति हो जाता है और उसे उसका काम करना पड़ता है। कभी-कभी किसी अधमर्ण का समस्त परिवार अर्धदास-सा (serf) हो जाता है और यह अर्धदासत्व उत्तराधिकार में उसका पुत्र पाता है और उसके बाद उसका पौत्र और यह क्रम चलता रहता है। इस प्रकार उत्तमर्णों के आगमन से श्रम तथा सेवा के स्वामित्व का उदय हुआ। कोई व्यक्ति एक बार किसी उत्तमर्ण का अर्धदास हुआ तो उसके चंगुल से अपनी अथवा अपने कुटुंब की रक्षा करना असम्भव-सा हो जाता है। अपनी शिक्षा, अंकज्ञान, लालच और कठोर हृदय के बल पर उत्तमर्ण इसकी भरपूर चेष्टा करता है कि ऋण चुकाया न जा सके। वर्ष बीतते जाते हैं और अर्धदासत्व का उत्तराधिकार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को मिलता जाता है। इसके सबसे अधिक शिकार निम्नजातीय और कबायली लोग होते हैं जो न केवल दारिद्रयग्रस्त हैं वरन् अज्ञान के अन्धकार में पड़े रहते हैं। यह विडम्बना इसलिए स्पष्टतर प्रतीत होती है क्योंकि कबायली लोग गाँव के मूल स्वामी थे। किस प्रकार उत्तमर्णों ने ग्रामवासियों का शोषण किया है इसे समझाने के लिए कुछ जाँचे-बूझे दृष्टान्त (case studies) नीचे दिए जा रहे हैं—

१. लगभग ३० वर्ष पूर्व मंगल माझी ने ६६ रु. मूल्य की तीन भैंसें और एक मन कोदों ऋण पर लिया। तिल, सरसों, घी और अन्य खाद्य पदार्थों से वह ऋण चुकाता रहा। दो-तीन वर्षों के बाद बनिये ने मंगल माझी के नाम ६०० रु. का ऋण दिखाया। मूढ़ होने के कारण उसने विश्वास कर लिया कि बनिया सही ही होगा। मंगल माझी इतनी बड़ी राशि चुकाने की कभी आशा नहीं कर सकता था। बनिये ने सुझाया कि ऋण के बदले में वह साढ़े चार बीघा भूमि दे दे। माझी मान गया। साढ़े चार बीघे भूमि का मूल्य १,८०० रु. लगाया गया और बनिये ने उसे १,२०० रु. देने का वादा किया। भूमि के हस्तान्तरण के समय बनिये ने पटवारी को घूस दे कर ग़लत पैमाइश करा कर साढ़े चार बीघे के स्थान पर ८ बीघे हथिया लिया। भूमि की पैमाइश के समय मंगल माझी उपस्थित था परन्तु मूढ़ होने के कारण बनिये और पटवारी की ओर से किसी प्रकार के छल का उसने सन्देह न किया। फिर सम्बन्धित अधिकारियों को घूस दे कर बनिये ने ८ बीघे भूमि के क्रय के दस्तावेज़ पर मंगल माझी के अँगूठे का निशान ले लिया और वह समझता रहा कि साढ़े चार बीघा लिखा है। इस

प्रकार विधिवत् बनिये ने ८ बीघे पर अधिकार कर लिया। उसने न केवल उचित परिमाण से अधिक भूमि पर अधिकार किया वरन् मंगल माझी को १,२०० रु. देना भी अस्वीकार कर दिया। उसने केवल १२० रु. चुकाए और कहा कि शेष बाद में देगा। मंगल माझी ने विरोध किया और कहा कि जब तक द्रव्य नहीं मिलेगा वह भूमि न देगा। परन्तु वह दस्तावेज़ पर निशान लगा चुका था और कुछ कर सकने में असमर्थ था।

अब जिन ८ बीघों पर बनिये ने अधिकार कर लिया था वह भूमि मंगल माझी के घर के समीप थी। कुछ दिन बाद ही बनिया मंगल माझी के पास गया और उसने उसको १,८०० रु. की शेष राशि चुकाने का पूरा आश्वासन दे कर उससे अनुरोध किया कि वह उस खेत के बदले में अपने घर से बहुत दूर अन्य खेत दे दे। माझी को भी यह बात नहीं जँचती थी कि बनिया उसके घर के समीप खेत जोते और वह मान गया। दुबारा पटवारी को घूस दिया गया, ८ बीघे के स्थान पर १२ बीघा नापा गया और बनिये ने मूल ८ बीघे वापस करना अस्वीकार किया। इस प्रकार मूल ऋण न चुका पाने के कारण मंगल माझी को २० बीघे भूमि से हाथ धोना पड़ा। फिर मुक़दमा चला। सताया हुआ होने से मंगल माझी ने अदालत की शरण ली। वह मुक़दमा जीत गया परन्तु उस ८ बीघे भूमि पर अधिकार न कर सका क्योंकि बनिये ने स्थानीय अधिकारियों को घूस दे कर न्यायालय की आज्ञा का कार्यान्वित होना स्थगित करा दिया था।

साधनहीन होने के कारण मंगल माझी चालाक बनिये के सम्मुख विवश था। कई बार बनिया पुलीस की सहायता से मंगल को परास्त करने में सफल हुआ। कई अवसरों पर उसने झूठी नालिश की कि मंगल माझी ने उसकी फ़स्ल चुरा ली है जिस पर माझी पीटा गया। कुछ ग्रामवासियों ने बनिये के विरुद्ध मंगल माझी की सहायता करनी चाही परन्तु बनिये ने उन सब पर चोरी का झूठा अभियोग लगा कर उन्हें भारतीय दंड विधान की ३७९ धारा के अन्तर्गत पकड़वा दिया और मंगल माझी की सहायता करने के कारण उन्हें सताया। उन्हें कई बार मिर्ज़ापुर की अदालत में जाना पड़ा जिसका अर्थ था परीशानी और व्यय। स्वभावतः उसके बाद इस मामले में निज को डालने का दुबारा साहस उन्होंने न किया।

उसी मंगल माझी का दुद्धी के एक अन्य बनिये से एक मामला हुआ। बनिये ने गाँव सभा की पंचायत में मंगल माझी पर मुक़दमा दायर किया कि मंगल माझी ९२ रु. २ आ. का उसका ऋणी है। यह असत्य था परन्तु बनिये ने सरपंच को घूस दे कर अपने पक्ष में निर्णय करा लिया। मंगल माझी ने एस्. डी. ओ. (सब-डिविज़नल ऑफ़िसर) के यहाँ अपील की और उस अदालत में पंचायत का निर्णय अस्वीकृत कर दिया गया।

मंगल माझी को बहुत कड़ुवे पाठ मिले और वह अब शपथ खाता है कि कभी किसी बनिये के पास सहायतार्थ न जायगा। वस्तुतः वह अपने कबीले के लोगों के अलावा अन्य किसी से द्रव्यऋण नहीं लेता।

२. रामचंद्र साहु दुद्धी तहसील का सबसे धनी व्यक्ति माना जाता है परन्तु उसके पिता बुद्धू साहु के पास आरम्भ में अधिक धन न था। जब बुद्धू साहु ने दूकान खोलनी चाही उसे एक ग्रामवासी से १७ रु. ऋण लेना पड़ा था। स्वार्थ की दृष्टि से इस प्रदेश के भीतरी भाग में सरगूजा और दुद्धी की सीमा पर उसने एक दूकान खोली। वहाँ वह गरम मसाले, नमक, सरसों, तम्बाकू, गुड़, बीड़ी, इत्यादि बेचा करता था। समीपवर्ती गाँवों के निवासी उसकी दूकान का ही पोषण करने लगे क्योंकि यह प्रदेश नगरों से अलग था और इन वस्तुओं के क्रय के लिए अन्यत्र जाने का कोई साधन नहीं था। बुद्धू साहु के पक्ष में एक अन्य बात यह काम कर गई कि इन एकान्त-स्थित गाँवों में उस समय मुद्रा का अधिक संचार नहीं था। क्रय-विक्रय विनिमय द्वारा होता था। अतः बुद्धू साहु अन्न के बदले में अपनी वस्तुयें बेचता था। उसकी बेची हुई वस्तुयें अपेक्षाकृत बहुत सस्ती होती थीं और बदले में प्राप्त अन्न से उसे दूना या उससे भी अधिक लाभ होता। तब उसने द्रव्यऋण देना आरम्भ किया। बाद में लाह के बदले में उसने मोटा अन्न देना आरम्भ किया। इस प्रकार उसे बहुत सस्ते मूल्य पर लाह मिलता जिसे वह बाहर दस-बारह गुना मूल्य पर बेचता। अतः यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि उसका पुत्र रामचंद्र साहु एक धनी व्यक्ति है। अपने पिता से प्राप्त धन के अतिरिक्त रामचंद्र साहु बेईमानी से स्वयं भी धन अर्जित करता है। बुद्धू साहु का जो विवरण दिया गया है वह अन्य अनेक बनियों पर लागू होता है।

लाह का व्यापार एक सफल क़दम था जिसमें ज़मींदारों का अज्ञान सहायक हुआ और बनियों ने उसका अनुचित लाभ उठाया। उन्होंने ज़मींदारों को धन और वस्तुओं, विशेषकर शराब, के उपहार से प्रसन्न किया। जिन ज़मींदारों को वे मना लेते थे उन से बनियों ने २० से ले कर ३७ वर्षों तक के ठेके पर केवल साधारण द्रव्य दे कर और कभी-कभी उसके बिना लाह के वृक्ष ले लिए। परन्तु जब बनियों ने वनों के पट्टे उनसे लिखा लिए तो उन्होंने ज़मींदारों को दी गई शराब का हिसाब रखना आरम्भ किया और इधर जमींदार लापरवाही के साथ इस बात से अनभिज्ञ थे। उन्होंने ज़मींदारों को छोटी-छोटी राशियाँ भी ऋण में दीं और अपने खातों में उन्हें दूना-तिगुना कर दिखाया। ऋण, उसका ब्याज और शराब का कई वर्षों का मूल्य मिल कर बहुत लम्बी-चौड़ी राशि बन गई। पट्टा समाप्त होने पर बनियों ने अपना पावना पेश किया। सहस्रों की राशि देख कर ज़मींदार चकराए और उन्होंने लाह के वृक्षों का दुबारा पट्टा लिख दिया। अनेक ज़मींदारों को ऐसा अनुभव उठाना पड़ा।

वे निम्नजातीय लोगों के समान ही निरक्षर और मूढ़ थे और लाह के वृक्षों की आय से ठगी द्वारा वे वंचित कर दिए गए।

३. पलटू चमार के पितामह ने लगभग २५ वर्ष पूर्व सुन्दर साहु से ५० रु. ऋण लिया था। मूल-ब्याज समेत ऋण चुका दिया गया परन्तु बनिये ने झूठे खाते तैयार किए और अब वह कहता है कि कुछ ऋण अभी शेष है। फलत: उसने पलटू चमार को ३ बीघा भूमि रेहन करने के लिए विवश किया। रेहन के बाद बनिये ने भूमि पर अपना अधिकार घोषित किया और वह पलटू चमार को अभी भी ऋण चुकाने के लिए तंग करता है। पलटू चमार के अस्वीकार करने पर वह उसे अदालत में ले जाने की धमकी देता है।

उपर्युक्त तीन मामले इस बात के प्रातिनिधिक उदाहरण हैं कि किस प्रकार बनियों ने कबायली लोगों, धनी उच्चजातीय ग्रामवासियों और निम्नजातीय लोगों को ठगा है।

पंचम अध्याय

पंचायत और नेतृत्व प्रतिमान (Leadership Pattern)

चितौरा में मित्रता तथा सामाजिक बन्धनों का समस्त अनुस्थापन (orientation) जाति के आधार पर हुआ है। प्रत्येक जाति में अव्यक्त सहमति द्वारा कुछ लोगों को नेता स्वीकार करने की प्राचीन परिपाटी चली आ रही है। अपने समुदायों में उठने वाले झगड़ों को निबटाने का अधिकार इन व्यक्तियों को होता है। वे सदा सफल नहीं होते और प्राय: उनके हस्तक्षेप से मामले बिगड़ ही जाते हैं। परन्तु अत्यंत प्राचीन काल से एक प्रकार का सामाजिक संघटन रहा है जिसका सम्मान उसके सदस्य करते रहे हैं और जिसके पास वे अपनी शिकायतें ले जाते रहे हैं। इसे बिरादरी कहते हैं। बिरादरी एक प्रकार की न्याय परिषद होती है। हर जाति-बिरादरी की संरचना (structure) भिन्न होती है। उदाहरणार्थ, पनिका बिरादरी में एक अधिकारी में शक्ति निहित होती है जब कि चमार बिरादरी में ४ और कलवार में ६ अधिकारियों में। परन्तु संरचना भिन्न होने पर भी सभी बिरादरियों के उद्देश्य और लक्ष्य एक ही होते हैं — समुदाय में अशोभनीय घटना को रोकना और अपराधियों को दंड देना। अत: जातीय पंचायतों में ये मामले आते हैं – (१) वैवाहिक नियमों का भंग, (२) अनियमित सम्बन्ध और यौन अपराध, (३) पारिवारिक झगड़े, (४) चोरी और (५) वर्जित जातियों से भोजन अथवा जल का ग्रहण।

किसी मामले का सम्बन्ध एक ही जाति के लोगों से अथवा विभिन्न जातियों के लोगों से हो, विवाह के प्रत्येक पक्ष के मामले की सुनवाई उसकी जातीय पंचायत में ही होती है। कभी-कभी ये मामले गाँव के नेताओं, गाँव पंचायत अथवा अदालती पंचायत या उच्चतर अधिकारियों के पास भी जाते हैं। परन्तु किसी मामले को निबटाने के लिए दो जातीय पंचायतों के इकट्ठा बैठने का कोई उदाहरण नहीं है।

जातीय पंचायत का अधिकार - क्षेत्र चितौरा के ही उस जाति के सदस्यों तक सीमित नहीं है वरन् कई गाँवों तक विस्तृत है। कभी-कभी किसी पंचायत के नियंत्रण में इतना विस्तृत क्षेत्र होता है कि उसके भाग कर दिए जाते हैं और छोटे विवादों को निबटाने के लिए अलग इकाइयाँ स्थापित कर दी जाती हैं जब कि पूरी पंचायत केवल बड़े विवादों पर विचार करने के लिए बैठती है। चमार पंचायत ऐसी ही है। उसका नियंत्रण इन ८ गाँवों में विस्तृत है — चितौरा, दुद्धी, कुसडाँड़, कटौली, रजखड़, बरवाडीह, सिंगरौली और बीडर। इनमें से हर गाँव में चमारों की अपनी एक अलग इकाई है जिसका एक नेता है और जिसमें छोटे विवाद आपस

में ही निबटा लेते हैं। यदि मामला गम्भीर हुआ तो दो-तीन गाँवों की पंचायतें इकट्ठा बैठती हैं। उदाहरणार्थ, चितौरा के चमारों में कोई गम्भीर मामला होने पर चितौरा, दुद्धी और बीडर के चमार समूह शांतिपूर्ण समझौता कराने के लिए जुटते हैं। इसी प्रकार चितौरा के पनिका लोगों के साधारण मामले चितौरा - दुद्धी की पनिका पंचायत[3] में तय होते हैं और बड़े विवाद सिंगरौली की पनिका पंचायत में जाते हैं।

सामान्यतः विभिन्न पंचायत अधिकारियों के पद पैतृक होते हैं। परन्तु यदि कोई अधिकारी बिना पुत्र छोड़े मर जाय या उसका पुत्र मानसिक या शारीरिक दृष्टि से पद के उपयुक्त न हो अथवा अपनी अक्षमता या चरित्रदोष के कारण अपनी जाति के लोगों में बहुत अप्रिय हो तो उस पद के लिए चुनाव होता है। हर जातीय पंचायत में पैतृक सदस्य नहीं होते। कलवार जातीय पंचायत में जिसके अधिकार-क्षेत्र में तीन गाँव हैं हर गाँव से दो वृद्ध सदस्यों को मिला कर न्यायमंडल बनता है जिसका प्रधान वृद्धतम सदस्य होता है।

ब्राह्मणों की कोई संघटित पंचायत नहीं है। उच्चतम जाति समूह के तथा उनका मुख्य व्यवसाय पुरोहिताई होने के कारण आशा की जाती है कि वे नैतिकता तथा चरित्र का उच्चादर्श रखेंगे। तथापि ब्राह्मण, भले ही वे निज के बारे में कितनी ही ऊँची राय रखें, मानव ही हैं और अन्य जनों के समान त्रुटियाँ कर सकते हैं। उनके बीच भी किसी प्रकार की न्याय-सम्बन्धी संस्था की आवश्यकता अनुभव की गई। फलतः चार-पाँच प्रभावशाली ब्राह्मणों ने एक ठोस इकाई स्थापित कर ली और सभी जातीय विषयों में शेष सभी ब्राह्मण उनके निर्णयों को मानने लगे। हाल में ब्राह्मण समूह दो प्रतिस्पर्धी खंडों में विभक्त हो गया है जिसका विस्तृत विवरण 'समूह प्रतिस्पर्धा' के अन्तर्गत दिया जायगा।

जातिक्रम में दूसरा स्थान क्षत्रियों का है (जिन्हें गाँव में साधारणतः ठाकुर के नाम से पुकारते हैं) जिनके समूह में कोई नियमित पंचायत नहीं है। जाति-सम्बन्धी विषय, परस्त्रीगमन के सभी मामले और अन्य समस्यायें कुछ वृद्ध तथा प्रभावशाली ठाकुरों के पास आती हैं। महत्वपूर्ण निर्णय लेने में दो-एक ब्राह्मण इस परिषद की सहायता करते हैं।

पंचायत बुलाने में कुछ व्यय होता है क्योंकि जो व्यक्ति पंचायत बिठाता है उसे तम्बाकू, बीड़ी, शराब इत्यादि से पंचों की सेवा करनी पड़ती है। अतः निम्न जातियों में प्रायः पंचायत की विशेष बैठकें नहीं बुलाई जातीं। कोई मामला निवटाने के लिए जन्म अथवा विवाह सदृश किसी उत्सव के अवसर पर जब उस जाति के सभी सदस्य उपस्थित होते हैं पंचायत के प्रधान के सम्मुख मामला रखा जाता है।

ऐसे अवसरों पर मामले पर विचार करने के लिए समस्त जाति को निमंत्रित किया जाता है। पंचायत बैठती है और तत्काल निर्णय घोषित कर दिया जाता है। पूरी कार्यवाही में दो-तीन घंटों से अधिक समय नहीं लगता। परन्तु हर मामला इस प्रकार नहीं निबटाया जा सकता। कुछ मामले गम्भीर तथा तात्कालिक होते हैं और उनके लिए प्रतीक्षा नहीं की जा सकती। ऐसे मामलों में पंचायत तत्काल बुलाई जाती है और साधारण व्यय करने पड़ते हैं।

अपराधी के लिए साधारण दंड जाति-वहिष्कार है जिसका अर्थ है कि अब से उसका अपने जाति के लोगों से कोई सम्बन्ध न रहेगा। उसकी जाति के सदस्य उसके साथ न बैठेंगे, न बात करेंगे, न भोजन-जल ग्रहण करेंगे और न उसे ऐसा करने देंगे। संक्षेप में वह जातिच्युत हो जाता है। यह दंड उसके परिवार पर भी लागू होता है। परन्तु समाज-वहिष्कृत ऐसा व्यक्ति अपने समुदाय में पुनः प्रवेश पा सकता है यदि वह पंचायत द्वारा लगाई गई शर्तों को पूरा करे। संभवतः उसे जुर्माना देना पड़े, सामुदायिक भोज करना पड़े अथवा पाँच ब्राह्मणों को खिलाना पड़े। इनके अलावा अपराधी को सत्यनारायण कथा सुननी पड़ सकती है या अशुद्धि (pollution) से मुक्ति पाने के लिए गंगास्नान करना पड़े। दंड से जाति का कोई भी सदस्य बरी नहीं है, पंचायत के अधिकारी भी।

जातीय पंचायत के निर्णय सदा न्यायपूर्ण नहीं होते क्योंकि पंच प्रायः पूर्वाग्रह तथा पक्षपात से प्रभावित होते हैं। कभी-कभी जब किसी अधिकारी के परिवार का कोई सदस्य फँसा हो तो न्यायपूर्ण निर्णय की आशा कम ही रहती है। निर्णय करने में घूस का भी महत्वपूर्ण भाग होता है।

विभिन्न जातीय पंचायतों द्वारा निर्णीत मामले

१. अयोध्या चमार बनाम मंगरू चमार—लगभग तीन वर्ष पूर्व अयोध्या चमार का भतीजा सेतू मर गया और अपने पीछे अपनी युवा विधवा छोड़ गया। कुछ दिन बाद उस विधवा का विवाह मंगरू चमार से हो गया परन्तु दस-बारह दिन बाद ही वह अयोध्या चमार के घर लौट आई और उसने शिकायत की कि उसका पति और अन्य सम्बन्धी उसके साथ दुर्व्यवहार करते थे। दो वर्ष बीत गए और कुछ न हुआ। फिर एक दिन मंगरू चमार और उसके चाचा झकड़ी चमार अयोध्या चमार के पास गए और उन्होंने उससे कहा कि मंगरू चमार की पत्नी को उनके साथ भेज दे। अयोध्या चमार ने जो मंगरू चमार से अत्यन्त रुष्ट था अस्वीकार किया। अन्ततः मामले को पंचायत में रखने का निश्चय हुआ। तदनुसार चितौरा-दुद्धी की चमार पंचायत अयोध्या चमार के घर बैठी। पंचायत की सामान्य राय

यही थी कि पति-पत्नी अलग हो गए थे क्योंकि पति ने पत्नी के साथ दुर्व्यवहार किया था, परन्तु पति ने पश्चात्ताप व्यक्त किया था अतः उसकी पत्नी को दुबारा उसके पास जाना चाहिए। पंचायत ने पति की निन्दा की और फिर पत्नी को बुला कर आश्वासन दिया कि अब से उसका पति उसके साथ अच्छा व्यवहार करेगा। अन्ततः पंचायत अयोध्या चमार द्वारा मंगरू चमार की पत्नी को उसके पास भिजवाने में सफल हुई।

२. सेतू चमार बनाम उसकी पतोहू—सेतू चमार अपनी पतोहू पर आसक्त हो गया और एक बार उसने उससे सहवास की इच्छा प्रकट की। वह तैयार न हुई। उसके बजाय उसने अन्य सभी चमारों को इस घटना से अवगत करा दिया। सेतू चमार की ख्याति अत्यन्त सीधे और अच्छे स्वभाव वाले पुरुष के रूप में थी, अतः किसी ने उसकी पतोहू की कहानी पर विश्वास न किया। परन्तु वह अपने अभियोग को दुहराती रही। एक दिन चमार पंचायत के किसी सदस्य ने सेतू चमार से बात-बात में इस विषय पर प्रश्न किया। सेतू चमार ने अपने जीवन की शपथ लेते हुए कहा कि यदि उसने कभी अपनी पतोहू से सहवास करने की चेष्टा की हो तो वह शीघ्र ही मर जायगा। संयोगवश अगले मास ही सेतू चमार विशूचिका से चल बसा। उसकी मृत्यु वस्तुतः संयोगवश हुई या देवताओं ने उसे दंड दिया? ग्रामवासियों ने दूसरी बात पर विश्वास किया। सेतू चमार के घर दसवीं पर चमारों ने कहा कि जब तक उसकी विधवा जुर्माना न देगी वे भोजन न करेंगे। आरम्भ में सेतू चमार की पत्नी पर १० रु. और उसके पुत्र पर २५ रु. जुर्माने की राय हुई। परन्तु उनके आग्रह करने पर कि वे जुर्माने की इतनी राशि दे सकने में असमर्थ हैं जुर्माना घटा कर विधवा के लिए ढाई रु. और लड़के के लिए पाँच रु. कर दिया गया। इस द्रव्य से मिठाइयाँ मोल ले कर जाति के सभी सदस्यों में बाँटी गईं। उसके बाद ही उन लोगों ने मृतक के घर भोजन ग्रहण किया।

३. दुद्धी का भोला पनिका चितौरा की एक पनिका लड़की के साथ भाग गया। वह पकड़े जाने पर पनिका पंचायत के सामने लाया गया जिसने उस पर २ रु. का जुर्माना लगाया और उसे कड़ी चेतावनी दी। लड़की पर कोई जुर्माना नहीं लगा।

४. रामदेव (ब्राह्मण) की पत्नी निस्सन्तान मर गई। लगभग १२ वर्ष पूर्व बिहार से एक ब्राह्मण विधवा गाँव में अपने भाई के पास रहने के लिए आई। रामदेव उसे चाहने लगा और बहुधा उसके पास जाने लगा। कुछ समय बाद वह एक अन्य घर में अकेले रहने लगी। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होने के कारण उसे अपने भाई की किसी प्रकार की सहायता अपेक्षित न थी। रामदेव और उस विधवा के सम्बन्ध लगभग एक वर्ष और चले। अन्त में रामदेव उसे अपने घर में लाया। अन्य ब्राह्मणों ने इसका विरोध किया और दोनों जाति-वहिष्कृत कर दिए गए।

कभी-कभी जाति-वहिष्कृत होने पर भी कोई व्यक्ति भोज या जुर्माना दे कर जाति में पुनर्प्रवेश पाने की चेष्टा नहीं करता। ऐसे मामलों में अपराधी को भले ही अधिक कष्ट न उठाना पड़े परन्तु उसकी सन्तान को विवाह के समय जुर्माना देना पड़ता है। ऐसे कुछ मामले नीचे दिए जा रहे हैं—

(क) लगभग ४० वर्ष पूर्व जब कैलाश तिवारी विधुर हुआ वह भीतरी भागों के किसी गाँव से अपने साथ रहने के लिए एक पनिका स्त्री ले आया। इस कारण उसे ब्राह्मण समुदाय से वहिष्कृत कर दिया गया। परशुराम तिवारी यद्यपि कैलाश तिवारी का वैध पुत्र था उसे भी जाति-वहिष्कृत किया गया क्योंकि वह अपने जाति-वहिष्कृत पिता के साथ ही रहता था। इस प्रकार उसे पत्नी पाने में कठिनाई का सामना करना पड़ा। जब वह २८ वर्ष का हो चुका ब्राह्मणों ने निज द्वारा लगाए गए आक्षेपों (strictures) में कुछ शिथिलता आरम्भ की और अपने उत्सवों तथा बैठकों में उसे बुलाने लगे। दो वर्ष बाद वह सिंगरौली गया जहाँ उसका सम्बन्ध एक ब्राह्मण विधवा से हो गया और वह उसके साथ लगभग एक वर्ष रहा। उसे चितौरा लाने और अपनी पत्नी के रूप में रखने पर वह दुबारा अपने समुदाय के रोष का पात्र बना और ब्राह्मणों ने फिर उसे जाति-वहिष्कृत कर दिया।

(ख) हरिश्चन्द्र का पितामह ब्राह्मण पिता और अहीर माता से उत्पन्न होने के कारण अवैध सन्तान माना जाता था। यह लगभग ५० वर्ष पुरानी बात है, तथापि आज भी अपने समाज में हरिश्चन्द्र की अच्छी स्थिति नहीं है और उसके घर ब्राह्मण भोजन नहीं करते।

(ग) बहुत दिन पूर्व एक ब्राह्मण स्त्री रखने के अपराध में मोती कलवार जाति-वहिष्कृत कर दिया गया था। अपनी पत्नी की मृत्यु पर रामप्रसाद कलवार ने मोती कलवार की कन्या से विवाह कर लिया। अतः रामप्रसाद कलवार भी जाति-वहिष्कृत मान लिया गया। उसे इसकी चिन्ता नहीं थी परन्तु उसकी प्रथम पत्नी से उत्पन्न पुत्र को पत्नी नहीं मिली क्योंकि वह अपने जाति-वहिष्कृत पिता के साथ ही रहता था। रामप्रसाद कलवार के जाति-वहिष्कृत होने के १५-१६ वर्ष उपरान्त नवम्बर १९५५ में कलवार पंचायत उसके पुनर्प्रवेश पर विचारार्थ बैठी क्योंकि उसका पुत्र जाति में वापस आना चाहता था। लम्बी बहस के बाद निर्णय हुआ कि निम्नलिखित शर्तें पूरी करने पर समुदाय में रामप्रसाद कलवार पुनर्प्रवेश पा सकेगा—

(१) वह पत्नी के साथ गंगास्नान के लिए बनारस जायगा।

(२) वे सत्यनारायण कथा का प्रबन्ध करेंगे।

(३) वे बिरादरी को भोज देंगे।

(४) वे पाँच ब्राह्मणों को भोजन करायेंगे और दक्षिणा देंगे।
रामप्रसाद कलवार ने इन शर्तों को स्वीकार किया और पत्नी के साथ गंगास्नान के लिए बनारस गया। उनके वापस आने पर कुछ कलवारों ने उसके पुनर्प्रवेश पर इसलिए आपत्ति की कि सब शर्तें पूरी करने के बाद भी रामप्रसाद कलवार अपनी स्त्री के साथ ही रहेगा और इसलिए अशुद्ध ही रहेगा। जब पंचायत दुबारा जनवरी १९५६ में बैठी उसमें दो दल हो गए थे, एक रामप्रसाद कलवार के पुनर्प्रवेश के पक्ष और दूसरा विपक्ष में। परन्तु पंचायत के प्रधान ने रामप्रसाद कलवार का पक्ष लिया और कहा कि यदि उसकी स्त्री का उसके साथ रहना मुख्य बात थी तो पंचों को इसका विचार पहले करना चाहिए था। रामप्रसाद कलवार को वापस ले लेना चाहिए क्योंकि बनारस जाने में उसने बहुत व्यय किया था। इस प्रकार पंचायत ने रामप्रसाद कलवार के जाति में पुनर्प्रवेश का निर्णय लिया। उसने तब शेष तीन शर्तें निभाई। परन्तु पुनर्प्रवेश के पूर्व उसे लिख कर निम्नलिखित शर्तें माननी पड़ीं —

(१) जब तक कोई तात्कालिक आवश्यकता न हो उसकी स्त्री अपने पिता के घर न जायगी।

(२) अपने पिता के घर गई भी तो वह जल का एक बूँद भी ग्रहण न करेगी।

(३) इन प्रतिबन्धों के तोड़ने पर रामप्रसाद कलवार उसे तलाक़ दे देगा।

इसके अतिरिक्त रामप्रसाद कलवार के पुत्र से कहा गया कि आवश्यकता पड़ने पर यदि उसके पिता ने अपनी पत्नी को तलाक़ नहीं दिया तो उसे अपने पिता से सभी सम्बन्ध तोड़ने होंगे अन्यथा वह भी जाति-वहिष्कृत कर दिया जायगा।

(घ) लालू पनिका की मृत्यु पर उसकी विधवा, दो पुत्र और तीन कन्यायें बच रहीं जिनमें दो कन्याओं का विवाह उसके जीवनकाल में ही हो गया था। गाँव में बदनाम हो जाने पर उसकी विधवा ६ मील दूर महुअरिया गाँव में चली गई जहाँ उसका एक खरवार से अवैध सम्बन्ध हो गया। इस कारण वह और उसकी सन्तानें कबीला-वहिष्कृत कर दी गईं। सबसे बड़ा लड़का सरगूजा चला गया और उसके बारे में कुछ ज्ञात नहीं। दूसरा लड़का भी सरगूजा गया और छिप कर उसने एक पनिका लड़की से विवाह कर लिया। सबसे छोटी लड़की का विवाह उसकी माँ के लिए एक समस्या बन गई। कबीले ने उसे निकाल दिया था और उस समय वह खरवार भी उसे छोड़ चुका था। अतः उसने पनिका पंचायत से पुनर्प्रवेश के लिए अनुरोध किया। कबीले को एक पक्का और एक कच्चा भोज देने के बाद वह वापस ली गई। अब उसकी लड़की का विवाह सरलता से हो सकेगा।

५. गुलाव सिंह (ठाकुर) की विधवा का एक कलवार से प्रेम हो गया और वह उसके साथ रहने लगी। ठाकुरों के वृद्ध जनों ने इस विषय पर परामर्श कर उस स्त्री और उसके तीन लड़कों को जाति-वहिष्कृत कर दिया। जब सबसे बड़े लड़के बिक्रम सिंह ने विवाह करना चाहा उसे वधू मिलने में कठिनाई हुई। लगभग उसी समय रीवाँ की एक ठाकुर स्त्री चितौरा के एक ब्राह्मण के साथ रहने लगी। ब्राह्मणों और ठाकुरों की एक संयुक्त बैठक ने उन्हें अपने-अपने समुदाय से निकाल दिया। उनके संयोग से एक लड़की और एक लड़का हुए। बिक्रम सिंह ने इस लड़की से विवाह किया। बिक्रम सिंह के साले का भी विवाह बाद में एक जाति-वहिष्कृता लड़की से हुआ जो एक 'साधु' और एक निम्नजातीय स्त्री की सन्तान थी।

६. चितौरा के एक अन्य ठाकुर नरेश सिंह का गाँव की एक चमार स्त्री से अवैध सम्वन्ध हो गया। एक दिन वह उसके घर में रँगे हाथों पकड़ा गया और ठाकुर समुदाय से वहिष्कृत हुआ। अब वह खुले रूप से उस चमार स्त्री के साथ रहता है।

गाँव सभा

मार्च १९५३ में पंचायत राज ऐक्ट के लागू होने पर गाँव सभायें स्थापित हुई। किसी गाँव की अपनी गाँव सभा तभी बन सकती है जब उसकी जनसंख्या एक सहस्र या उससे अधिक हो, फलतः किसी-किसी गाँव सभा के अन्तर्गत दो-तीन गाँव आते हैं। इस प्रकार चितौरा, जपला और खजुरी की एक गाँव सभा है। तीनों गाँवों से मिला कर इसके ३६ पंच हैं जो उनमें निवास करने वाली सभी जातियों और कबायली समुदायों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस प्रकार यह एक प्रातिनिधिक संस्था है यद्यपि निर्वाचन के समय विभिन्न पदों के लिए चुनाव लड़ने में निम्नतर जातियों और हरिजनों ने अधिक उत्साह नहीं दिखाया था। इन ३६ पंचों में ही एक सभापति और एक उपसभापति होते हैं।

गाँव सभा का मुख्य कार्य ग्रामोन्नति है। उसके मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं —

(१) जन्म-मरण के अभिलेख रखना,

(२) नालियों, गलियों और गाँव के रास्तों का निर्माण और मरम्मत,

(३) उचित प्रकार की नालियों, स्वास्थ्यप्रद दशा तथा स्वच्छता की व्यवस्था,

(४) रोशनी के प्रबन्ध की देखभाल,

(५) ग्राम-हित के अन्य कामों को प्रोत्साहन।

गाँव सभा न्याय-सम्वन्धी संस्था नहीं है और अधिकृत रूप से उसे न्याय-सम्बन्धी कोई अधिकार भी नहीं दिए गए हैं। परन्तु वस्तुतः ग्रामवासियों ने स्वतः गाँव सभा को ऐसे विषयों में अधिकार दे रखे हैं। जिस मामले को गाँव

के नेता नहीं सुलझा पाते वह गाँव सभा में जाता है। इस प्रकार यह वस्तुतः एक प्रशासकीय तथा न्याय-सम्बन्धी संस्था है।

यद्यपि पंचों का निर्वाचन मार्च १९५३ में हो गया था, चितौरा की गाँव सभा ने दिसम्बर १९५३ में कार्य आरम्भ किया। गाँव सभा वर्ष में दो बार जनवरी और अप्रैल या मई में बैठती है। वर्ष में दो बार होने वाली इन बैठकों के अतिरिक्त असाधारण स्थिति उत्पन्न होने पर सभापति बैठक बुला सकता है।

अदालती पंचायत

अदालती पंचायत के पंचों का भी चुनाव मार्च १९५३ में ही हो गया था यद्यपि सक्रिय रूप से काम करना उन्होंने जून १९५४ के पूर्व अर्थात् गाँव सभा के लगभग ६ मास बाद तक आरम्भ नहीं किया। एक अदालती पंचायत के अधिकार-क्षेत्र में तीन-चार गाँव सभायें आती हैं। अदालती पंचायत दुद्धी में दुद्धी, चितौरा, जाबर और देहगुल की चार गाँव सभायें और २० सदस्य हैं जिनमें हर गाँव सभा से पाँच हैं। ये २० पंच ही अपना एक सरपंच चुनते हैं। वर्तमान सरपंच चितौरा-वासी है।

सरपंच के अलावा हर अदालती पंचायत में एक मंत्री अथवा सेक्रेटरी भी होता है। वह एक रजिस्टर में पंचायत की कार्यवाहियों का विस्तृत विवरण रखता है जिसे बाद में सरपंच जाँचता है। तत्पश्चात् पंचायत निरीक्षक के निर्देशानुसार वह उसमें परिवर्तन करता है। आशा की जाती है कि पंचायत के सभी नियमोपनियम मंत्री को विदित होंगे जिससे वह सही विधि का पालन करने में पंचों का संचालन कर सके। अदालती पंचायतों के बनने के बाद दुद्धी में पंचायत मंत्रियों को एक पक्ष का प्रशिक्षण दिया गया। उन्हें ५० रुपये मासिक वेतन मिलता है।

अदालती पंचायत न्याय-सम्बन्धी संस्था है। गाँव सभा जिन मामलों को निबटाने में निज को असमर्थ पाती है वे अदालती पंचायत में जाते हैं। उनके अलावा विभिन्न गाँवों के पारस्परिक विवाद भी अदालती पंचायत में जाते हैं। इस पंचायत का मुख्य कार्य क़ानून और व्यवस्था की रक्षा करना है। १०० रु. मूल्य तक के दीवानी और फ़ौजदारी दोनों प्रकार के मुक़दमों में निर्णय देने का अधिकार इसे प्राप्त है और यह १०० रु. तक जुर्माना भी लगा सकती है। सामान्यतः निम्नलिखित प्रकार के मामले अदालती पंचायत में आते हैं —

(१) फ़ौजदारी के मुक़दमे।

(२) स्वास्थ्य नियमों के भंग करने के मुक़दमे।

(३) चोरी के मुक़दमे। अपराधी पर ५० रु. तक जुर्माना लग सकता है।

(४) सार्वजनिक शांति और व्यवस्था भंग करने के मुक़दमे। अपराधी पर जुर्माना लग सकता है और उसे पुलिस की हिरासत में भी लिया जा सकता है।

(५) सम्पत्ति-विभाजन के मुक़दमे। तहसीलदार या एस्. डी. ओ. इन मुक़दमों को पंचायत के सुपुर्द करता है।

(६) दूसरे की फ़स्ल को जान-बूझ कर क्षति पहुँचाने या चुराने के मुक़दमे।

जब कोई मुक़दमा अदालती पंचायत में ले जाते हैं तो पहले उसे सरपंच के पास दायर करते हैं। यदि पंचायत के अधिकार-क्षेत्र के अन्तर्गत मुक़दमा स्वीकार कर लिया जाता है तो वादी को आवेदनपत्र तथा सम्मन का शुल्क देना पड़ता है। सम्मन-शुल्क ४½ आना है जिसमें २ आना चौकीदार को मिलता है और शेष २½ आना पंचायत को। फ़ौजदारी के मुक़दमे के लिए आवेदनपत्र शुल्क ८ आना और दीवानी के मुक़दमों में झगड़े की राशि पर वह निर्भर करता है। १० रु. के मूल्य के मुक़दमे के लिए शुल्क ४ आना है, ११ से ले कर ५० रु. के लिए ८ आना। यदि मूल्य ५० रु. से अधिक हुआ तो प्रति १० रु. पर अतिरिक्त ४ आना शुल्क लगता है। १०० रु. मूल्य होने पर शुल्क २ रु. ४ आ. है।

मुक़दमे की सुनवाई के लिए सरपंच कोई दिन नियत करता है जिस दिन दोनों पक्षों की उपस्थिति अनिवार्य है। दोनों पक्षों से परामर्श करने के उपरान्त पंचों में से पाँच निर्णायकों का एक मंडल चुन लिया जाता है। जिन गाँवों के दोनों पक्ष होते हैं उन गाँवों का कम से कम एक पंच होना आवश्यक है। यदि इस मंडल में सरपंच हुआ तो वही उसका प्रधान होता है अन्यथा इन पाँच पंचों में कोई इस उत्तर-दायित्व को निभाता है। सामान्यतः पंचायत बलाने के पूर्व सरपंच समझौते द्वारा मामले को निबटाने की चेष्टा करता है। पंचायत में मुक़दमे साक्ष्य के आधार पर निर्णीत होते हैं। किसी मुक़दमे का निर्णय करने की न्यूनतम अवधि ६ सप्ताह है।

अदालती पंचायत द्वारा निर्णीत मुक़दमे

१. रामलग्न चौबे चितौरावासी बनाम नोहर पुत्र सुमेर तेली खजुरीवासी—रामलग्न चौबे का खेत चितौरा और खजुरी की सीमा पर है। एक दिन नोहर तेली के एक बैल ने इस खेत में घुस कर कुछ फ़स्ल नष्ट कर दी। रामलग्न चौबे ने उसे पकड़ कर काँजीहाउस भेज दिया और उसे छुड़ाने के लिए नोहर तेली को जुर्माना देना पड़ा। रामलग्न चौबे ने अदालती पंचायत में यह अभियोग लगाते हुए मक़-दमा दायर किया कि नोहर तेली और उसमें शत्रुता के कारण उसके खेत में जान-बूझ कर बैल छोड़ दिया गया था। फ़स्ल की क्षति के लिए उसने २० रु. मुआविज़े की माँग की। पंचायत की बैठक में दोनों पक्षों के समर्थक थे। अतः पंचमंडल चुना

गया। मुक़दमे का निर्णय रामलग्न के पक्ष में हुआ किन्तु फ़स्ल की क्षति का मुआविज़ा घटा कर १० रु. कर दिया गया। नोहर तेली को रामलग्न चौबे को १०रु. देना पड़ा।

२. बैजनाथ चौबे चितौरावासी बनाम शिवराम तथा अन्य देहुगुलवासी — जनवरी १९५६ में बैजनाथ चौबे ने अदालती पंचायत में आवेदनपत्र दिया कि देहगुल के शिवराम तथा अन्य जनों ने उसके पुआल का अपने पशुओं के चारे के रूप में प्रयोग कर लिया था। उसने दावा पेश किया कि इससे उसे आर्थिक हानि हुई। पहली बैठक में पंचमंडल चुना गया। अगली बैठक में समझौते द्वारा मुक़दमा तय हो गया।

३. दुक्खी चितौरावासी बनाम हनुमान प्रसाद चितौरावासी — पहले हनुमान प्रसाद के पास महुए का एक वृक्ष था जो दुक्खी के खेत में था। पंचायत राज ऐक्ट की एक धारा के अनुसार यदि किसी खेत में कोई वृक्ष हो तो वह वृक्ष भले ही किसी का रहा हो, उसे खेत के स्वामी का मानना चाहिए। यह सोच कर कि वृक्ष से हाथ धोना पड़ेगा हनुमान प्रसाद ने उसे कटाना चाहा जिससे वह लकड़ी का प्रयोग कर सके। परन्तु दुक्खी ने उसे रोका। स्वभावतः विवाद खड़ा हुआ और मुक़दमा अदालती पंचायत में दायर हुआ। दोनों पक्षों में समझौता हो गया और किसी पर जुर्माना नहीं हुआ।

४. हरखू चमार चितौरावासी बनाम दुद्धी के चार चमार— चितौरा के हरखू चमार और दुद्धी के चार चमारों में जब वे सब शराब के नशे में थे झगड़ा हुआ। हरखू अपने गाँव का अकेला था, अतः उस पर बेभाव की मार पड़ी। उसे उन्होंने ख़ूब पीटा, सब कुछ छीन लिया और हत्या की धमकी दी। वह अदालती पंचायत में मुक़दमा ले गया जहाँ समझौते से वह निबटा दिया गया।

कभी-कभी किसी न किसी कारण से अदालती पंचायत में मुक़दमे अस्वीकृत हो जाते हैं। उदाहरणार्थ, चितौरावासी विन्ध्याचल कलवार ने दुद्धीवासी रामदेव सिंह से ऋण लिया था जिसे उसने नहीं चुकाया। तीन वर्ष बाद रामदेव सिंह ने ऋण वापस पाने के लिए उसके विरुद्ध मुक़दमा दायर किया परन्तु वह अस्वीकृत कर दिया गया क्योंकि निर्धारित अवधि बीत चुकी थी।

मुक़दमे की सुनवाई के समय यदि वादी पैरवी नहीं करता तो मुक़दमा अस्वीकृत हो जाता है। चितौरा के दक्षिणी भाग में एक खेत पर गोकुल माझी ने अपने स्वामित्व का दावा किया। हरिचंद उसे जोतता था। जब गोकुल ने उससे खेत छोड़ने को कहा तो उसने अस्वीकार किया। गरमा-गरम बहस छिड़ी और हरिचन्द ने

गोकुल को गाली दी। गोकुल मुक़दमे को अदालती पंचायत में ले गया किन्तु स्वयं उपस्थित नहीं हुआ। फलतः मुक़दमा अस्वीकृत हो गया।

यदि वादी अल्पवयस्क हो तो भी मुक़दमा अस्वीकृत कर दिया जाता है। बलराम कलवार ने लखन के विरुद्ध मुक़दमा दायर किया कि उसने उसे बुरी तरह से पीटा था। बलराम के अल्पवयस्क होने के कारण मुक़दमा अस्वीकृत हो गया।

उच्चतर अधिकारियों के पास ले जाए गए मुक़दमे

१. दुद्धी प्राइमरी स्कूल से लौटते समय रामचन्द्र साहु और नगीना तिवारी के लड़के किसी छोटी -सी बात पर लड़ बैठे। झगड़े में रामचन्द्र के लड़के को मार पड़ी और उसकी दावात फूट गई। रोता हुआ वह घर पहुँचा और उसने अपने माता-पिता को सारी घटना सुनाई। अगले दिन नगीना तिवारी का लड़का जब ढोर चरा कर रामचन्द्र साहु के मकान के सामने से अपने मकान की ओर लौट रहा था तो साहु के बड़े लड़कों ने उसे रोक कर पिछले दिन की उसकी हरकत पर प्रश्न किया। लड़के ने अपना दोष मानना अस्वीकार किया। उन्होंने एक न सुनी और साहु के बड़े लड़कों में एक किशोर ने क्रोध में उसे कई तमाचे जड़ दिए। लड़का रोता हुआ घर पहुँचा। उसका पिता नगीना तिवारी बाहर गया हुआ था, अतः वह भाग कर गाँव के सरपंच सर्वदमन सिंह के पास गया और सारी घटना उसे सुनाते हुए उसने शिकायत की कि उसे बहुत बुरी तरह पीटा गया है। सर्वदमन सिंह ने लड़के को चुप कराया और कहा कि वह मामले की जाँच करेगा तथा अपने पिता के आने तक वह धैर्य रखे।

दो दिन बाद नगीना तिवारी घर लौटा। वह साइकिल से उतरा ही था कि उसने परिवार के सभी सदस्यों को पछाड़ मार कर रोते हुए पाया। नगीना को बड़ा विस्मय हुआ और उसने कारण पूछा। उसे पता चला कि किशोर साहु ने उसके लड़के को बुरी तरह पीटा है जिससे उसने चारपाई पकड़ ली है। नगीना तिवारी क्रोध के मारे आपे से बाहर हो गया और गाली बकते हुए रामचन्द्र साहु के घर की ओर लपका।

जवाहर सिंह का घर नगीना तिवारी और रामचन्द्र साहु के घरों के बीच पड़ता है। इस घर के लोग एकादशी व्रत मना रहे थे और बाहर बैठे थे। नगीना तिवारी ने उन्हें पूरी घटना सुनाई और रामचन्द्र साहु पर आक्रमण करने की धमकी ज़ोर-ज़ोर से देता रहा। जवाहर सिंह और अन्य जनों ने उसे रामचन्द्र साहु के घर जाने से यथाशक्ति रोका जिससे वह ताव में आ कर कुछ कर न बैठे किन्तु नगीना तिवारी किसी की राय सुनने को तैयार न था। रामचन्द्र साहु के घर पहुँच कर उसे वह गाली

देने लगा। किशोर साहु उस समय घर पर नहीं था, दुद्धी गया था। नगीना किशोर के लौटने की प्रतीक्षा नहीं करना चाहता था। किशोर को पीटने पर वह तत्पर हुआ और दुद्धी की ओर चल पड़ा। लकड़ा बाँध पहुँचने पर साइकिल पर वापस आता हुआ किशोर उसे मिला। नगीना ने उसे रोक कर पूछा कि उसे उसके लड़के को मारने का साहस कैसे हुआ। उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना नगीना ने उस पर कई प्रहार किए और जूते से भी पीटा। किशोर लगातार चिल्लाता रहा कि उसने नगीना के लड़के को कभी नहीं पीटा और नगीना उस पर झूठा दोष लगा रहा है।

यह मामला ग्रामवासियों के वश के बाहर जा चुका था। दोनों पक्षों ने दुद्धी के थाने में अपनी-अपनी प्रथम सूचना लिखाई। रामचन्द्र साहु एक अत्यन्त सम्पन्न व्यक्ति है और कोई उसका विरोध करने का साहस नहीं करता। नगीना को साक्षी मिलने में कठिनाई हुई जब कि रामचन्द्र को चार साक्षी मिल गए।

इस बीच दुद्धी में बनियों और अन्य प्रभावशाली व्यक्तियों की एक सभा हुई जिसने एकमत से निर्णय दिया कि नगीना तिवारी का दोष था। कहा गया कि मात्र लड़कों के झगड़े में उसे हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था। इसके अतिरिक्त उसे क़ानून को अपने हाथों में नहीं लेना चाहिए था, उसके बजाय उसे मामले को ग्रामवासियों के सामने रखना चाहिए था और उनकी राय की प्रतीक्षा करनी चाहिए थी। नगीना तिवारी ने अपनी भूल अनुभव की और तुरत रामचन्द्र साहु से क्षमायाचना की। उसने रामचन्द्र को 'चाचा' कह कर सम्बोधित किया और शांतिपूर्वक झगड़े को निबटाने के लिए अन्य रीतियों से विनम्रता प्रदर्शित की। उसने विश्वास दिलाया कि किशोर साहु उसका भाई है वरन् भाई से भी अधिक प्रिय है और अपने अनज (किशोर) से वह लड़ बैठा जैसा भाई-भाई प्रायः करते हैं। इस प्रकार नगीना ने विभिन्न रीतियों से खेद प्रकट किया।

कुछ बनियों ने सुझाया कि नगीना की क्षमायाचना लिखित रूप में होनी चाहिए। अन्य जनों ने जिन्हें नगीना से सहानुभूति थी असहमति प्रकट की और सुझाव रखा कि मुक़दमे के लिए निश्चित तिथि पर दोनों पक्ष उपस्थित न हों जिससे मुक़दमा आप ही अस्वीकृत हो जायगा। एक दूसरे के विरुद्ध उन्होंने जो मुक़दमे दायर किए थे उन्हें अस्वीकृत कराने के लिए वे आवेदनपत्र भी दे सकते थे। इन सुझावों को सामान्य रूप से मान लिया गया।

मुक़दमे की सुनवाई के लिए निश्चित तिथि पर अनौपचारिक सभा के निर्णय के अनुसार नगीना अनुपस्थित रहा। परन्तु रामचन्द्र अदालत में उपस्थित हुआ और क़ानूनी कार्यवाही आरम्भ हुई। नगीना को तब पता चला कि साहु ने उसे उल्लू बनाया है। फँस जाने पर उसने सभी ब्राह्मणों से सहायता की याचना की

किन्तु असफल रहा। सुबह-शाम वह ठाकुरों, विशेषकर सर्वदमन सिंह और जवाहर सिंह, के यहाँ सहायता की आशा में दौड़ता रहा। अन्त में उन्होंने मुक़दमे में उसकी रक्षा करने में सहायता का वचन दिया।

ठाकुर रामचन्द्र साहु के पास गए किन्तु जब तक अपने कर्म के लिए नगीना अत्यन्त स्पष्ट रूप से लिखित क्षमापत्र न दे वह कुछ सुनने को तैयार न था। इसके अतिरिक्त नगीना को साहु ने निर्देश किया था कि वह लिख कर दे कि धनिकों की अनौपचारिक सभा में किए गए निर्णयों को वह मानेगा। परन्तु मामला ठाकुरों ने अपने हाथ में ले लिया था, अत: गाड़ी वहाँ नहीं रुक सकती थी। ठाकुरों ने ज़ोर दे कर साहु को बतलाया कि लिख कर कुछ नहीं दिया जायगा। यदि साहु लिखित क्षमायाचना के लिए इतना उत्सुक था तो उसे पिछली सभा में माँग करनी थी। अब मुक़दमेबाज़ी शुरू होने तथा एक बार नगीना के धोखा खाने के बाद वह दुबारा धोखा नहीं खा सकता था। यदि नगीना ने लिख कर कुछ भी दिया तो इसका अर्थ होगा कि वह सदा रामचन्द्र के हाथ की कठपुतली बना रहे।

दो महीने बीत गए और क़ानूनी कार्यवाहियाँ चलती रहीं। नगीना का पक्ष अभी भी कमज़ोर था। दुबारा फिर ठाकुरों ने नगीना का पक्ष ले कर रामचन्द्र से बात चलाई। उनमें और रामचन्द्र में गरमागरम बहस हुई परन्तु अन्त में मुक़दमे को अस्वीकृत कराने के लिए साहु को तैयार करने में वे सफल रहे।

२. १९५५ में चन्द्रिका सिंह और दुद्धी तहसील के एक पुलीस रक्षक में झगड़ा हुआ। दुद्धी में तहसील के अहाते में चन्द्रिका सिंह रामलीला देख रहा था। वह अपने कई मित्रों के साथ आया था। तहसील के अहाते में दो आवारा कुत्ते लड़ और दर्शकों के ध्यान को भंग कर रहे थे। चन्द्रिका सिंह ने उन्हें भगाने के लिए एक पत्थर फेंका। एक सिपाही ने जो शायद नशे में था चन्द्रिका सिंह से कहा कि कुत्ता उसका था और उसे मारने के लिए वह क्षमा माँगे। चन्द्रिका सिंह ने क्षमा माँगना अस्वीकार किया और सिपाही ने अपनी लाठी उसे दिखाई। चन्द्रिका सिंह ने भी अपनी लाठी निकाल ली। इस पर तथा उसके मित्रों को देख सिपाही चुप हो गया। उसी रात लगभग ११ बजे चन्द्रिका सिंह को अकेला पा कर उसने उस पर लाठी के तीन-चार प्रहार किए। चन्द्रिका सिंह के मित्रों को समाचार मिलने पर चितौरा के लगभग १०० निवासियों ने रामलीला के पंडाल को घेर लिया। पुलीस रक्षक को उसके एक मित्र ने उसके कमरे में बन्द कर उसकी रक्षा की।

अगले दिन चितौरा के ठाकुरों ने एक डॉक्टर से चन्द्रिका सिंह की परीक्षा कराई। मेडिकल प्रमाणपत्र लेने के बाद वे तहसीलदार के पास गए जिसने पुलीस रक्षक को चन्द्रिका सिंह से क्षमा माँगने तथा उस रात रामलीला के मंच से सार्वजनिक रूप

से क्षमायाचना करने की आज्ञा दी। पुलीस रक्षक ने चन्द्रिका सिंह से तो क्षमा माँगी किन्तु सार्वजनिक रूप से नहीं। पुलीस रक्षकों के जमादार ने तहसीलदार से अनुरोध किया कि सार्वजनिक क्षमायाचना न मँगवाई जाय अन्यथा दुर्व्यवहार के लिए उस पुलीस रक्षक को गिरफ़्तार करना पड़ेगा। इन क़ानूनी अड़चनों का ध्यान रखते हुए तहसीलदार ने ठाकुरों से अनुरोध किया कि वे पुलीस रक्षक को क्षमा कर दें और उन्होंने क्षमा कर भी दिया।

३. भीखा चमार की तीन बहिनों ने पिता की मृत्यु के उपरान्त वेश्यावृत्ति द्वारा द्रव्य कमाना आरम्भ किया। बस ड्राइवर और अन्य लोग नियमित रूप से उनके पास आते। ग्रामवासियों ने उन्हें आने से रोकने की चेष्टा की किन्तु असफल रहे। जब भीखा ने ऐसे चरित्रहीन व्यक्तियों को प्रोत्साहित करने के लिए अपनी बहिनों को बुरी तरह पीटा तो उन्होंने उसे पुलीस से पकड़वाने की धमकी दी। उसी रात पुलीस दारोग़ा और कुछ सिपाही भीखा को पकड़ने आए। गाँव के नेताओं के हस्त-क्षेप से वह बच गया। सरपंच सर्वदमन सिंह ने दारोग़ा को सारी बात समझाई और वह मान गया कि भीखा ठीक था। अगले दिन पंचायत बैठी और उसने भीखा की बहिनों और माँ को (वह भी बिना दर्जे वेश्यातुल्य थी) गाँव से निकाल दिया।

४. बैजनाथ चौबे, रघुपति और रामलग्न तीन भाई हैं, बैजनाथ सबसे बड़ा और रामलग्न सबसे छोटा। बैजनाथ पहले गाँव में आया, उसे काम मिला और यहीं विवाह कर के वह बस गया। सूरत साहु नामक एक व्यक्ति निस्सन्तान मर गया और सम्पत्ति में मुख्य रूप से एक घर और बाँग छोड़ गया। तत्काल उसे बैज-नाथ चौबे ने हथिया लिया। इसके बाद उसने बीडर से अपने भाइयों को बुलवा लिया और उनकी शिक्षा पर धन व्यय किया। जब भाइयों में झगड़ा हुआ और रामलग्न सरगूजा भाग जाने का विचार कर रहा था बैजनाथ की स्त्री ने सक्रिय भाग ले कर रघुपति और रामलग्न का विवाह करा उन्हें जीवन में स्थिर करा दिया।

कुछ वर्षों के बाद रघुपति परगना सिंगरौली में लेखपाल नियुक्त हो गया। अप पत्नी की मृत्यु पर उसने कहार जाति की एक रखैल रख लिया। इस पर उसके अग्रज ने उससे पूरा सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया। उसके बच्चों को वह अपने साथ ले आया। लड़के के बड़े होने और विवाह करने पर चाचा-भतीजे में झगड़ा हुआ और वे अलग हो गए।

बैजनाथ और रामलग्न दोनों के एक भी पुत्र न था। भतीजा चला गया था, निदान उन्होंने अपने दामादों के नाम कुछ भूमि कर देने का निश्चय किया। इस प्रकार वे अपनी-अपनी कन्याओं के पक्ष में रजिस्ट्री कराने के लिए उत्सुक थे।

उस समय तक स्वामित्व के तथा भूमि-सम्बन्धी सब काग़ज़ केवल बैजनाथ के नाम में थे। रघुपति और रामलग्न ने सोचा कि यदि बैजनाथ ने सारी भूमि अपने दामाद को दे दी तो वे दोनों उसे रोक न सकेंगे क्योंकि उनके नाम कुछ भी न था। अतएव १९५०-५१ में जब दससाला बन्दोबस्त हुआ तो ज़रूरी काग़ज़-पत्रों में इन दो भाइयों ने अपने नाम भी अंकित करा दिए। सबको विदित था कि यह तहसीलदार की आज्ञानुसार हुआ था। बैजनाथ चौबे को इसका पता चला और आज्ञापत्र की प्रतिलिपि ले कर उसने काग़ज़ों की दुरुस्ती के लिए अदालत में आवेदनपत्र दिया।

दोनों पक्षों को प्रमाण और साक्षी उपस्थित करने पड़े। समुचित जाँच के बाद तहसीलदार ने अपनी रिपोर्ट दी कि बैजनाथ चौबे को सारी भूमि उत्तराधिकार में नहीं मिली थी वरन् उसने अपने जीवनकाल में ही उसे अर्जित किया था और इसलिए वह केवल उसकी थी। सब-डिविज़नल मैजिस्ट्रेट की अदालत में भी यही निर्णय हुआ और तदनुसार आदेश हुआ कि बैजनाथ चौबे वास्तव में सम्पत्ति का अधिकारी था और उसके अतिरिक्त शेष लोगों के नाम काट दिए जायँ।

अन्य दोनों भाई अदालत के निर्णय से सन्तुष्ट न हुए और भूमि पर अधिकार करने के लिए उन्होंने दृढ़ निश्चय किया। उन्होंने अनुचित दबाव का सहारा लिया और मार-पीट की धमकी दी। कुछ समय तक अराजकता रही क्योंकि जब जो व्यक्ति अधिक बलवान होता वही खेत जोतता और फ़स्ल काटता। दोनों पक्षों की ओर से दुद्धी थाने में कई रिपोर्टें लिखाई गईं। प्रति दिन कोई असाधारण घटना होती।

यह सब जुलाई १९५४ में हुआ जब कृषकों के लिए सबसे अधिक व्यस्त रहने का मौसम था। भारतीय दंड विधान की १०७ धारा के अन्तर्गत पुलीस ने दोनों पक्षों के अगुओं को हिरासत में ले लिया। उन्हें आए दिन अदालत में उपस्थित किया जाता। साक्षी भी उपस्थित किए गए। पारिवारिक जीवन और उनके घरों की व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई। एस्. डी. एम्. की अदालत में रामलग्न की ओर से साक्षी के रूप में सर्वदमन सिंह आया। उसने एस्. डी. एम्. को सारी बात बतलाई और निर्णय देने में उसे प्रभावित किया। बैजनाथ चौबे, रामलग्न चौबे, रघुपति के पुत्र शिवपति और बैजनाथ के दामाद शम्भूनाथ के लिए एक वर्ष के लिए पाँच-पाँच सौ रुपयों की ज़मानतों का आदेश हुआ। जाँच के बाद बिना किसी दंड के अन्य बन्दी मुक्त कर दिए गए। यह भी सर्वदमन सिंह के अनुरोध के अनुसार हुआ।

तत्पश्चात् बैजनाथ चौबे ने भारतीय दंड विधान की ३८९ धारा के अन्तर्गत दुबारा रामलग्न चौबे और अन्यों के विरुद्ध मुक़दमा दायर किया। क़ानूनी कार्य-वाहियाँ फिर चलीं तथा भाइयों में झगड़े बढ़े। प्रायः मार-पीट होती और दोनों पक्षों ने गुंडे लगाए। ग्रामवासियों ने अब मामले पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना आरम्भ किया। उन्होंने अनुभव किया कि बाहरी लोग दुर्भाव से उनके गाँव में हस्तक्षेप कर रहे थे। गाँव का साधारण जीवन नष्ट हो चुका था और किसी भी समय शांति भंग हो सकती थी।

गाँव की सभी जातियों के सदस्यों और प्रतिनिधियों की एक सभा सावन में नाग-पंचमी के दिन बुलाई गई। एकमत से प्रस्ताव हुआ कि चौबे बन्धु परस्पर शांति-पूर्वक झगड़ा निबटा लें अन्यथा सारा गाँव उनका बहिष्कार करेगा क्योंकि उन्होंने बाहर से गुंडे बुलवाए थे और इन बाहरी लोगों के हस्तक्षेप से गाँव के दृढ़ संघटन पर भीषण आघात पहुँचा था।

उस सभा में दोनों पक्षों ने अपने-अपने पंच मनोनीत किए और उनके निर्णय के अनुसार चलने का वचन दिया। पंचों ने खेतों का निरीक्षण और माप किया। कई बैठकों के बाद वे सम्पत्ति-विभाजन के विषय में निर्णय पर पहुँच सके। सर्व-दमन सिंह और राजकिशोर सिंह ने पंचमंडल में सक्रिय भाग लिया। बाद में खेतों का बँटवारा हुआ और लेखपाल द्वारा काग़ज़-पत्रों को प्रमाणित और उन पर हस्ता-क्षर करने के बाद दुद्धी के रजिस्ट्री कार्यालय में हर भाई के अंश की रजिस्ट्री कराने के लिए अपेक्षित कार्यवाही की गई।

सितम्बर १९५५ के अन्त में झगड़ा निबटा और गाँव में दुबारा शांति स्थापित हुई। सारी भूमि-सम्पत्ति दो भागों में बाँटी गई। अर्धांश बैजनाथ के पास रह गया और दूसरे अर्धांश को अन्य दो भाइयों में समान रूप से बाँट दिया गया।

५. चितौरा में २० अक्तूबर, १९५६, को एक असाधारण दुःखद घटना हुई। ग्रामवासियों को पहले की ऐसी किसी घटना का स्मरण नहीं। एक सत्रहवर्षीया स्त्री की हत्या उसके देवर ने कर दी। उसके विवाह के समय से ही वह उसके प्रति प्रेम करने की चेष्टा कर रहा था। देवर जिसका नाम पशुपति तिवारी था एक ब्राह्मण तथा उसकी अहीर रखैल की सन्तान था और अन्य प्रकार से भी शरारती था। वह लड़की चरित्ररक्षा तथा पतिव्रता बनी रहने पर दृढ़ थी और अपने देवर की धमकियों से डरती नहीं थी। प्रायः उसे बड़ी संकोचमय स्थिति का सामना करना पड़ता और वह ग्रामवासियों, मित्रों तथा सम्बंन्धियों के पास शिकायत करती परन्तु किसी ने उस पर ध्यान न दिया क्योंकि उनका विचार था कि वह देवर-भाभी के प्राचीन काल से चले आ रहे हँसी-दिल्लगी के सम्बन्ध की सीमा के अन्तर्गत व्यव-

हार कर रहा था। हन्ता ने उसी स्थान पर हत्या के चौबीस घंटों के अन्दर आत्म-हत्या कर ली। इस दुहरी दुर्घटना से ग्रामवासियों को गहरा धक्का लगा। किस प्रकार की परिस्थिति में इन दोनों की मृत्यु हुई आज तक बिलकुल ठीक-ठीक ज्ञात नहीं है।

६७ वर्ष के कोदई तिवारी चितौरा गाँव के एक वृद्ध निवासी हैं। उनकी वैध स्त्री से ३५ वर्षीय कार्तिक तिवारी नामक एक पुत्र है। जब वह बहुत छोटा था तभी उसकी माँ चल बसी। कोदई तिवारी ने एक अहीर स्त्री को रखैल रख लिया और इस अनियमित सम्बन्ध से पशुपति उत्पन्न हुआ। आत्म-हत्या के समय पशुपति की आयु २४ वर्ष थी। जब कोदई रखैल के साथ रहने लगा तो कार्तिक को उसका चाचा शोभा तिवारी अपने साथ लेता गया। बड़ा होने पर कार्तिक सुयोग्य बना और उसने अपनी आर्थिक मर्यादा ऊँची करने के हेतु कठोर श्रम किया तथा समाज में ऐसा स्थान बना लिया जिस पर लोगों की स्पर्धा हो। ठेकेदारी का उसका व्यापार उन्नति पर था। जब उसने दुद्धी की एक ब्राह्मण कन्या से विवाह किया तो उसके पिता कोदई ने उसे गाँव वापस आने के लिए कहा। अन्त में कार्तिक को समझा-बुझा कर मनाया गया और परिवार का पुर्नमिलन हुआ।

कार्तिक की स्त्री लक्ष्मी अपने नए घर में सन्तुष्ट नहीं थी। वह अपने पति की आज्ञा तथा इच्छा का पूरा पालन करती किन्तु अपनी सौतेली सास तथा चरित्रहीन देवर से दूर रहती। ब्राह्मण कन्या होने से उसे उनकी निम्न जाति से बहुत चिढ़ थी। वह उनके लिए भोजन पकाना और उनके द्वारा युक्त किए हुए बर्तन मलना अस्वीकार करती। इससे कलह बढ़ा और घर के अन्दर सम्बन्धों में तनाव आ गया। देवर ने उसे नीचा दिखाने की ठान रखी थी। वह उस पर आसक्त भी था और यद्यपि अन्यों को उसके इस भाव का पता न था लड़की को उसकी भावधारा पर सन्देह था। उसके पति और सम्बन्धीगण इस विषय पर उसकी शिकायतों की या तो उपेक्षा करते या अविश्वास। दो अवसरों पर ऐसा गम्भीर उपद्रव हुआ कि सारे गाँव का ध्यान आकर्षित हुआ और बिरादरी पंचायत बुलानी पड़ी। परन्तु वास्तविक विषय उठाया ही न जा सका क्योंकि लोगों को बहकावे में डालने के लिए पशुपति ने भूमि तथा सम्पत्ति-विभाजन के तथा अन्य सम्बन्धित विषय ला उपस्थित किए। अपनी भाभी के प्रति उसके मस्तिष्क में जो कुचालें थीं उनको ढकने में वह सफल हुआ। जब भी वह उसे धमकाता कभी वह अपने बड़े भाई का नाम न लेता मानों उसका कोई सरोकार न था। पंचायत ने निर्णय दिया कि वैध स्त्री की सन्तान होने के कारण कार्तिक का १० आने सम्पत्ति पर अधिकार था और अवैध सन्तान होने के कारण पशुपति का मात्र ६ आने सम्पत्ति पर। यद्यपि पंचायत के निर्णय

से पशुपति सन्तुष्ट-सा दिखाई देता था उससे उसका कोई मतलब सीधा न हुआ था। वह तो कुछ और ही चाहता था तथा पहले की भाँति उसका हृदय भड़कता रहा।

लक्ष्मी की हत्या के दिन २० अक्तूबर, १९५६, को उसका पति कार्तिक तथा कुछ मित्र-सम्बन्धी किसी मुक़दमे में साक्ष्य देने दुद्धी गए थे। पशुपति के लिए यही अवसर था क्योंकि उसे पता था कि वे सारे दिन बाहर रहेंगे। उसके मस्तिष्क में एक योजना जन्म ले चुकी थी। उसने अपनी माँ से कहा कि लड़की की इच्छाशक्ति को कुचलने में उसकी सहायता तथा प्रोत्साहन अपेक्षित था। माँ ने पहले से यह न भाँपा कि परिणाम इतना दुःखद होगा। उसने सोचा कि यदि वह लड़की के सतीत्व को नष्ट कर सका तो वह सीधी हो जायगी। एक भुइयाँ स्त्री से पशुपति का अवैध सम्बन्ध था। घर के ऊपरी काम-काज में माँ की सहायता करने के लिए उसने उस दिन उसे लगा दिया। दिन में ढाई बजे के लगभग पशुपति भोजन पका रहा था और उसकी भाभी तथा वह भुइयाँ स्त्री चक्की चला रही थीं। पशुपति ने उनसे कहा कि वे पहले उसके लिए आटा पीस दें। उन्होंने मान लिया यद्यपि जिस ढिठाई से उसने आदेश दिया था उसका विरोध उसकी भाभी ने किया। परन्तु वह झगड़ा करने पर उतारू था। फिर उसने अपनी भाभी से खटाई माँगी जिसे देना उसने अस्वीकार किया। इस पर वह उसकी ओर बढ़ा और उसके गाल को खींचते हुए बोला— 'इस जीभ से मना करने का तेरा साहस कैसे हुआ ?' लड़की ने उसके हाथ को झटकने की चेष्टा की और क्रोध से कहा कि उसे इस प्रकार की गन्दी हँसी-दिल्लगी बिलकुल पसन्द नहीं है और उत्तर माँगा कि अपने अशुद्ध हाथ से स्पर्श करने का साहस उसे क्यों कर हुआ। पशुपति ने उसके शब्दों पर बिलकुल ध्यान न दिया और उसकी पीठ धीरे से ठोंकते हुए उसे और उत्तेजित किया। इस पर वह अत्यधिक क्रुद्ध हुई और उसने उससे उत्तर माँगा। इसके अतिरिक्त उसे कड़े शब्दों में चेतावनी दी कि वह अपने पति से सारी बात कहेगी। उत्तर में उसने उसकी पीठ पर फिर प्रहार किया। हताश हो कर वह कुँयें में कूद कर आत्महत्या की चेष्टा में दौड़ी। भुइयाँ स्त्री ने उसे पकड़ लिया और उससे कहा कि उसे यह सब उपेक्षा की दृष्टि से देखना चाहिए क्योंकि देवर-भाभी के सम्बन्ध में इसकी अनुमति थी। पशुपति अब तनिक डर गया था और उसने पति से शिकायत करने के लिए उसे मना किया। परन्तु वह उसकी बेहूदगी की शिकायत करने के निश्चय पर दृढ़ थी भले ही उसे अपनी जान गँवानी पड़े। इस बात से पशुपति का क्रोध भी भड़क उठा और उसने उसकी पीठ पर बहुत ज़ोर का प्रहार किया। उसने दुबारा कुँयें में कूदने की चेष्टा की परन्तु वहाँ तक पहुँचने के पूर्व ही पशुपति ने दौड़ कर उसकी साड़ी पकड़ ली। उसने पूरा बल लगा कर उससे मुक्ति पाने की चेष्टा की, तथापि अन्त में पशुपति

उसे घसीट कर अपने कमरे में ले जाने में सफल हुआ। लड़की उसे लगातार गाली देती रही और उसकी क़समें उसकी सास और भुइयाँ स्त्री को सुनाई दे रही थीं। पशुपति विचलित होने वाला नहीं था। उसने उसे अपनी खाट पर पटक दिया और अन्दर से दरवाज़े को बन्द कर दिया। बाहर दोनों स्त्रियाँ समझ रही थीं कि वह लड़की से संभोग कर रहा है परन्तु उन्हें इसकी कल्पना भी न थी कि लड़की की हत्या हो जायगी। भुइयाँ स्त्री ने एक बार द्वार तक जा कर एक छेद से झाँका। उसने बाद में लोगों को बताया कि लड़की एक शेरनी की भाँति बड़े रौद्र रूप से संघर्ष करती रही और वह इस भयानक दृश्य को देर तक न देख सकी। बतलाते हैं कि लड़की ने अन्त में कहा, "जानवर, मुझे मार डाल। मैं कह रही हूँ कि मेरी जान ले ले किन्तु मुझे सती रहने दे। इसी प्रकार तू सम्मान के साथ इस कहानी का अंत कर सकेगा। इसी प्रकार तू मेरे सारे कष्टों का अंत कर सकेगा। मैं तुझे यही एकमात्र रास्ता वता सकती हूँ। जानवर, साहस कर। उस कुल्हाड़ी को उठा और मेरे धड़ से सिर को अलग कर दे। मैं वचन देती हूँ कि मैं बिलकुल नहीं रोऊँगी, न चिल्लाऊँगी और मैं हँसी-खुशी तेरे प्रहार को स्वीकार करूँगी। तेरी माँ और बहिन की शपथ कि तू मुझे मार। यदि तुझमें कुछ भी पुरुषत्व है तो उसे बटोर कर आ।" पागलपन के वशीभूत हो उसने कुल्हाड़ी उठाई और बेचारी लड़की की हत्या कर दी।

कमरे से बाहर आ कर पशुपति ने अपनी माँ को बतलाया कि उसने लड़की को मार डाला है। जिन बक्सों में वह जानता था कि धन रखा हुआ है उन्हें तोड़ कर लगभग १,२०० रु. ले कर के भगा। हत्या लगभग ५½ बजे सायंकाल हुई थी। ६½ बजे सायंकाल लौटने पर कार्तिक ने अपनी स्त्री को मृतावस्था में पाया। उसके क्रन्दन ने सारे गाँव का ध्यान आकर्षित किया और तुरत सब को हत्या का पता लग गया। दुद्धी थाने में रिपोर्ट लिखाई गई। हत्यास्थल की रखवाली के लिए एक सिपाही नियुक्त कर दिया गया और शवपरीक्षा के लिए शव को ले गए। अगले दिन प्रातःकाल शवपरीक्षा के नियत समय पर गाँव के सभी प्रमुख व्यक्ति डॉक्टर के पास गए और बोले कि टुकड़े-टुकड़े कर शरीर का अनादर न किया जाय। परन्तु डॉक्टर ने उनकी बात न मानी।

कनहर नदी के किनारे मृत लड़की का जब दाह-संस्कार हो रहा था उन शोक-ग्रस्त व्यक्तियों को समाचार मिला कि हत्यारे पशुपति ने ठीक उसी स्थल पर जहाँ उसने विगत दिन अपनी भाभी की हत्या की थी फंदा लटका कर आत्महत्या कर ली है। लोगों को इस समाचार से तनिक संतोष हुआ क्योंकि अब हत्या का बदला लिया जा चुका था। परन्तु उन्हें इस बात पर बड़ा विस्मय हुआ कि वह व्यक्ति

जो भाग निकला था उसी स्थल पर वापस आए जहाँ उसने नृशंसतम अपराध किया था। वे समझ नहीं पा रहे थे कौन सी शक्ति या प्रेरणा उसे वापस खींच लाई। वे यह भी न समझ सके कि हन्ता किस प्रकार उस स्थल पर पहुँच सका जिसकी रक्षा पुलीस कर रही थी। पुलीस के सिपाही के मिले होने का लोगों ने सन्देह किया।

शव के साथ गए हुए लोग घटनास्थल की ओर तेज़ी से लौटे। उन्होंने पशुपति के निर्जीव शरीर को एक रस्सी से लटकते हुए पाया। इस वीभत्स दृश्य से लोग संत्रस्त हो गए। कोई भी रस्सी को ढीली करने के लिए तैयार न था। साहसी माने जाने वाले लोगों ने भी अस्वीकार किया। अन्त में केदार सिंह ने अपने को आगे किया किन्तु वह अकेले इस काम को न कर सका। एक अन्य व्यक्ति धनुषधारी चौबे ने उसको सहारा दिया और दोनों मिल कर शरीर को नीचे भूमि पर ले आए।

उस समय पुलीस का कोई सिपाही ड्यूटी पर न था। हर किसी ने पशुपति की माँ से प्रश्न किया क्योंकि आत्महत्या के समय केवल वही उपस्थित थी। उसकी बताई हुई कहानी इस प्रकार है——

"११ बजे के लगभग मैंने अपने लड़के को वापस आते देखा। उसके मुँह पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। मैंने सिपाही को बतलाया कि मेरा लड़का लौट आया है और उससे विनती की कि उस पर वह दया करे और उसे जीवनदान दे। उसने वचन दिया कि उसकी रक्षा के लिए वह यथाशक्ति प्रयत्न करेगा। परन्तु उसके निकट आते ही सिपाही ने उसे डाँटना-डपटना आरम्भ किया और कहा कि जो रुपये ले कर भागे थे मेरे हवाले करो। मेरे लड़के ने पाँच-पाँच रुपये के दो नोट निकाले, सिपाही के पैरों पर रखा और उसके पैरों को पकड़ कर बारम्बार प्राणरक्षा की भीख माँगी। सिपाही ने मुझसे कहा कि मेरे लड़के को इस ज़िले से भाग जाना चाहिए और कम से कम एक वर्ष के लिए बाहर रहना चाहिए और वह इस बीच चेष्टा करेगा कि उसके विरुद्ध चल रहा मुक़दमा उठा लिया जाय। फिर सिपाही ने मेरे लड़के को अन्दर ले जा कर तनिक देर तक बातचीत की। उसने मुझे सुनने की अनुमति न दी और मुझसे कहा कि यह मेरे हित में होगा यदि मैं चली जाऊँ। जब वे दोनों अन्दर बात कर रहे थे एक अन्य सिपाही आ टपका और दोनों को ज़ोर-ज़ोर से पुकारने लगा। फिर तीनों इकट्ठा बैठे और जब वे बात कर रहे थे मुझे बाहर चली जाने को बाध्य किया। यह सब इतनी द्रुत गति से हुआ कि मैं किंकर्तव्यविमूढ़ हो गई। मुझे बतलाया गया था कि वे मेरे शुभचिन्तक थे और मुझे पूरी सहायता देंगे। मुझे उस समय भी सन्देह था कि मेरे लड़के के पास वे १,२०० रु. थे और सम्भवतः ये सिपाही उससे इस द्रव्य को हथियाने के फेर में थे। अभी जब मैं स्थिति को समझने की चेष्टा ही कर रही थी मैंने उस सिपाही को जिसकी ड्यूटी बदलने वाली थी थाने

की ओर भागते हुए देखा। दूसरा सिपाही मेरे लड़के के साथ घर के अन्दर ही बैठा था। पहले सिपाही के पास जिसकी ड्यूटी पूरी हो चुकी थी एक थैला था जिसमें सम्भवतः कोई वस्तु रखी थी और इससे मेरे सन्देह की पुष्टि हुई। अन्दर क्या बात-चीत हो रही थी सुनने के लिए मैं द्वार के जितना निकट जा सकती थी गई। मैंने अपने लड़के को बोलते हुए सुना। वह सिपाही से कह रहा था कि पहले वह भोजन कर ले तब कुछ होगा। उसने कई बार कहा कि वह बहुत भूखा है। हत्या करने के पूर्व उसने जो भोजन पकाया था उसे उसने खाया नहीं था। कमरे में जो बासी खाना रखा हुआ था उसे ही वह खाना चाहता था और तब सिपाही जो भी कहता उसे करता। सम्भवतः सिपाही ने उसे अनुमति दे दी और उसने भोजन किया। तब बाहर आ कर उसने मुझे अपना चेहरा दिखाया। उसने हाथ से संकेत भी किया कि वह अपना गला काटने जा रहा है। परन्तु मैंने संकेत को समझने में भूल की और अपने मन में इसका यह अर्थ लगाया कि उसने सिपाही से कहा कि उसने (सिपाही ने) लड़की की हत्या की है। मुझे उस सारे समय बाहर बैठने का आदेश था। कुछ मिनट बीतने पर सिपाही बाहर आ कर वृक्ष के नीचे खाट पर पसर गया। मैं देर तक सह न सकी और मेरे मन में विभिन्न भाव उठते रहे। मैंने बारम्बार सिपाही से कहा कि उसे मेरे लड़के की सुरक्षा करनी होगी और उससे पूछा क्यों वह उसे अकेला घर के अन्दर छोड़ आया था। मैंने पूछा कि मेरा लड़का क्या कर रहा है और उसे देखने की अनुमति माँगी। उसकी अनुमति के पूर्व ही मैं उद्वेगवश घर के अन्दर भागी। मैंने द्वार खोला और अपने लड़के को रस्सी से लटकते हुए पाया। उसके शरीर में अभी भी कुछ जीवन शेष था क्योंकि वह हिल-डुल रहा था। मैंने तीन बार शरीर में हलकी गति होते देखा और फिर वह ठंडा पड़ गया। मैं दौड़ कर सोते हुए सिपाही के पास वापस आई और मैंने पूछा क्यों यह सब हुआ। वह यह कहते हुए चला गया कि उसे थाने में सूचना देनी होगी और मेरी बात सुनने के लिए उसके पास समय नहीं है।"

इस दुहरी दुर्घटना से चितौरा गाँव संत्रस्त रहा है। साधारणतः रात में लोग हत्यास्थल पर जाने का साहस नहीं करते। अनेक लोगों का विश्वास है कि लक्ष्मी एक देवी थी जिसने सतीत्व एवं दृढ़चरित्रता का जो गुण विवाहिता स्त्रियों में होने चाहिए एक आदर्श स्थापित करने के हेतु आत्मोत्सर्ग किया।

षष्ठ अध्याय

गुटों की प्रतिस्पर्धा तथा गाँव का नेतृत्व प्रतिमान

संयुक्त प्रांत ज़मींदारी उन्मूलन ऐक्ट, १९४६ के लागू होने के पूर्व गाँव के नेतृत्व के इतिहास को सरलता से गाँव के सपुरदारों के कार्यकाल के आधार पर चार कालों में बाँट सकते हैं। पाँचवाँ काल उत्तर-ज़मींदारी काल है। पाँचों काल ये हैं—

(१) श्री नन्हकू माझी सपुरदार का काल
(२) श्री रामदेव मिश्र सपुरदार का काल
(३) श्री जोखन माझी सपुरदार का काल
(४) श्री सर्वदमन सिंह सपुरदार का काल
(५) उत्तर-ज़मींदारी उन्मूलन काल

१. **नन्हकू माझी के कार्यकाल में नेतृत्व** — नन्हकू के जीवनकाल में गाँव का वास्तविक एकमात्र नेता वही था। अधिकृत रूप से गाँव का लगान वसूलने, भूमि की व्यवस्था करने तथा सामान्य प्रशासन चलाने के लिए वह नियुक्त किया गया था। उसने संयुक्त रूप से सामाजिक तथा राजनीतिक नेता का कार्य इस सुचारु रूप से निभाया कि लोगों ने उसे अपना प्रतिनिधि और प्रवक्ता स्वीकार कर लिया। उसके कार्यकाल की एक अत्यन्त विशिष्ट बात यह थी कि ऐसा एक भी दीवानी या फ़ौज-दारी का मामला नहीं हुआ जिसे अंतिम रूप से उसने तय न किया हो। निर्णय देने के पूर्व वह गाँव के वृद्ध जनों से परामर्श करता था जिनमें प्रमुख थे उसके चमार मित्र दलई और भुनई, सत्यनारायण सिंह (ठाकुर) और नकछेदी साहु (कलवार) का बड़ा भाई। उसके निर्णय इतने न्यायपूर्ण होते थे कि ऐसा एक भी उदाहरण नहीं है जब उसके निर्णय का पालन न हुआ हो। लोगों से उसके सम्बन्ध इतने अलिप्त थे, उसके निर्णय इतने निष्पक्ष, न्यायपूर्ण और बुद्धिमत्तापूर्ण होते थे और इन सब के ऊपर वह इतना उदारहृदय और निर्धन तथा अभावग्रस्त का इतना सहायक था कि आज भी उसका नाम परम श्रद्धा के साथ लिया जाता है। उसके इतना बड़ा नेता इस गाँव में कभी उत्पन्न नहीं हुआ।

इस प्रकार आरम्भ में नेतृत्व पर एकाधिकार एक व्यक्ति का ही था जो सरकारी कर्मचारी और सामाजिक नेता दोनों था। वह एक कार्यकारी अधिकारी था और गाँव के न्यायमंडल का न्यायाधीश भी। अंत तक वह जनता का ही व्यक्ति बना रहा और उनके दु:ख-सुख में बराबर भाग लेता रहा।

२. रामदेव मिश्र के कार्यकाल में नेतृत्व और सामाजिक तथा राजनीतिक नेतृत्व का विभाजन — १९०० के लगभग नन्हकू माझी की मृत्यु के उपरान्त हाल का एक प्रवासी रामदेव मिश्र अपनी शिक्षा-विषयक योग्यता के कारण तथा दुद्धी तहसील के चपरासी अपने श्वसुर सम्पत तिवारी की सिफ़ारिश पर सपुरदार नियुक्त हुआ। यवा तथा नवागन्तुक होने के कारण उसे पूर्ण रूप से अपने श्वसुर पर भरोसा करना पड़ता था और उसका श्वसुर ही वास्तविक सपुरदार के रूप में काम करता था। पद पाने पर सम्पत तिवारी ने लोगों के प्रति दुर्व्यवहार और निर्धन लोगों से बेगार लेना आरम्भ किया। उसने बैजनाथ चौबे के एक भुइयाँ हरवाह से सजावल के घर के लिए बेगार लेना चाहा। १९१२ में तहसील बनने के पूर्व दुद्धी का सर्वोच्च अधिकारी सजावल ही था। चौबे ने हरवाह को भेजना अस्वीकार किया। इस पर सम्पत तिवारी ने उस निर्धन भुइयाँ को उसकी भूमि से बेदख़ल कर दिया परन्तु अदालत के हस्तक्षेप तथा बैजनाथ चौबे की सहायता से भूमि उसे वापस मिल गई। इस मामले में सभी क्षत्रियों ने सम्पत तिवारी का साथ दिया।

गाँव की गुटबन्दियों का यही श्रीगणेश था। १९१६ के लगभग बैजनाथ चौबे के नेतृत्व में एक नए गुट ने जन्म लिया। सम्पत तिवारी के दुर्व्यवहार से क्षुब्ध लोगों ने उसकी सहायता की। यहाँ प्रश्न उठता है: बैजनाथ चौबे किस प्रकार नेता वन गया? इसके लिए चौबे की जीवनी पर दृष्टिपात करना आवश्यक है। वह इस प्रकार है —

बैजनाथ चौबे १९०४ में इस गाँव में एक अध्यापक के रूप में आया और अपने श्वसुर के साथ रहने लगा। अन्य ग्रामवासियों का विश्वास है कि वह अध्यापक नियुक्त होने के कारण यहाँ नहीं आया वरन् इसलिये कि वह पहले राबर्ट्सगंज में रहता था और वहाँ के ज़मींदार से झगड़ पड़ा। कहा जाता है कि कोन के ज़मींदार ने उसे बाहर निकाल दिया। चितौरा में रहते हुए एक बार वह अपने श्वसुर से झगड़ पड़ा और फलतः गाँव छोड़ कर बघाड़ू चला गया। लगभग एक वर्ष के बाद वह लौटा और पलकधारी सिंह के पिता ने उसे भूमि का एक टुकड़ा दे दिया। उसने उससे भी झगड़ा किया। फिर वह स्थायी रूप से गाँव में बस गया।

इस बीच गाँव के क्षत्रिय वैवाहिक सम्बन्धों को ले कर उठ खड़े होने वाले झगड़ों के कारण दो दलों में बँट गए। क्षत्रियों की इस फूट का चौबे ने लाभ उठाया। एक दल के नेता प्यारे सिंह और मोती सिंह थे तथा दूसरे के केसर सिंह और राम-करन सिंह। चौबे दूसरे दल का समर्थक था।

गाँव की इन घटनाओं अर्थात् सम्पत तिवारी के भुइयाँ और अन्य निम्नजातीय लोगों के प्रति दुर्व्यवहार तथा क्षत्रिय जाति की फूट ने मिल कर चौबे को दूसरे दल

का नेता बना दिया और उसे एक अत्यन्त शक्तिसम्पन्न स्थिति में ला बिठाया। यही नहीं, चौबे ने कुछ और काम भी किया जिससे वह गाँव का एक महत्वपूर्ण व्यक्ति बन गया। नन्हकू माझी का पुत्र जोखन माझी अपनी पैतृक सपुरदारी के अधिकार की पुनः प्राप्ति के हेतु चेष्टा कर रहा था। चौबे ने जोखन माझी से सम्पत तिवारी और उसके दामाद रामदेव मिश्र के विरुद्ध सपुरदारी के पद के लिए दावा करने को कहा। जोखन ने चौबे की सलाह के अनुसार चल कर सपुरदारी के अधिकार को प्राप्त किया।

इस प्रकार द्वितीय काल में स्थिति बदली और नेतृत्व ने नया रूप धारण किया। अधिकारी रूप से नेता कोई व्यक्ति था और वास्तविक नेता एक अन्य व्यक्ति। रामदेव मिश्र अधिकारी रूप से अथवा विधिसम्मत नेता था और सम्पत महराज वास्तविक तथा व्यावहारिक रूप से। इस विभाजन के साथ-साथ हम शक्ति तथा पद का दुरुपयोग देखते हैं। परिणामस्वरूप एक विरोधी तत्व के रूप में एक अन्य प्रकार के, मुख्य रूप से सामाजिक, नेतृत्व का उदय हुआ। इन विरोधी नेताओं में प्रथम बैजनाथ चौबे था। यह एक ऐसी स्थिति थी जिसने गाँव के नेतृत्व को विधिसम्मत और वास्तविक नेताओं में विभक्त कर रखा था। अब तक नेतत्व का सम्बन्ध सारे समाज से था और उसमें व्यक्तिगत स्वार्थ का लेशमात्र भी न था। परन्तु चौबे के अभ्युदय के उपरान्त खुले रूप से दलगत स्वार्थ पर बल दिया जाने लगा। रामदेव मिश्र की सपुरदारी के काल में दो नई बातें हुईं। पहले तो सारा गाँव दो दलों में बँट गया —एक चौबे के नेतृत्व में और दूसरा सम्पत महराज के। दूसरे, क्षत्रिय स्वयं दो दलों में बँट गए।

चौबे का अनुगमन सभी निम्नजातीय लोगों, कबायलियों और एक क्षत्रिय दल ने किया जब कि सम्पत महराज अपनी जाति तथा क्षत्रियों के दूसरे दल का नेता था। इस समय से गाँव की गुटबन्दियों और पूर्वोक्त नेतृत्व के द्वैध विभाजन का अध्याय आरम्भ होता है। अधिकारी रूप से सम्पत तिवारी नेता था क्योंकि वह विधिसम्मत सपुरदार था और चौबे अनधिकृत रूप से तथा सामाजिक नेता था। चौबे निर्धनों तथा कष्टग्रस्त व्यक्तियों की यथार्थ सहायता करता था।

३. **व्यक्तिगत, अन्तरजातीय तथा जाति के अन्तर्गत स्वार्थों पर अवलम्बित दलबन्दी के आधार पर जोखन माझी का कार्यकाल**—जोखन माझी के साथ गाँव की गुटबन्दियों के इतिहास का तृतीय अध्याय आरम्भ होता है। इस काल में और भी घटनायें हुईं। १९२१ के लगभग जोखन माझी सपुरदार बना और प्रायः १४ वर्ष पद पर रहा। वह स्वयं कुछ न करता वरन् उसका अनुज सम्भल माझी वास्तविक सपुरदार था। जब तक जोखन माझी सपुरदार रहा वह चौबे को उसकी

सहायता के उपलक्ष्य में कृषि के निमित्त भूमि देता रहा। इसके अतिरिक्त चौबे ने निर्धन भुइयों से उस द्रव्य के बदले में उनके कुछ खेत ले लिए जो द्रव्य उसने उनको सम्पत तिवारी के विरुद्ध मुक़दमा लड़ने के लिए ऋण पर दिया था।

अभाग्यवश जोखन माझी और उसके अनुज ने लोककल्याण की चिन्ता न की। वे दोनों भारी पियक्कड़ निकले और समय पर सरकारी लगान वसूलने और जमा करने में लापरवाही बरतने लगे। अपने कर्तव्यों की उपेक्षा करने के अतिरिक्त वे बड़े उपद्रवी भी थे। वे उचित रूप से मामले न निबटाते जिससे लोगों को दुद्धी जाना और बहुत-सा द्रव्य, शक्ति तथा समय नष्ट करना पड़ता तथा वे सरकारी कर्मचारियों को भी अप्रसन्न करते। इसके विपरीत सम्पत तिवारी, मोती सिंह और अन्यों ने चौबे को उखाड़ने का भरपूर प्रयत्न किया। वे ज़िलाधीश द्वारा ऐसी आज्ञा निकलवाने में सफल हुए कि बैजनाथ चौबे गाँव की शांति के लिए ख़तरा है, इसलिए उसे बाहर किया जाय। अतिरिक्त प्रमाण के रूप में यह तथ्य उपस्थित किया गया कि कोन के ज़मींदारों से झगड़ा करने पर वहाँ से निकाले जाने पर चौबे इस गाँव में आया था।

जब यह आज्ञा निकाली गई चौबे गाँव में नहीं था। परन्तु साधनसम्पन्न होने के कारण वह एक अंग्रेज़ मिशनरी की, जो पहले दुद्धी में रह चुका था, सहायता लेने के लिए बनारस गया। उस मिशनरी ने दुद्धी चर्च के तत्कालीन मिशनरी को पत्र लिखा और इस दूसरे मिशनरी के प्रयत्नों से आज्ञा रद की गई। इसके अतिरिक्त कोन के ज़मींदार को यह प्रमाणित करने के लिए बुलाया गया कि चौबे को कोन से किसी कुकृत्य के कारण नहीं निकाला गया था। इसके बाद चौबे और अधिक शक्तिशाली हो गया। व्यक्तिगत लाभ तथा लोगों की सहानुभूति पाने के लिए १९२१ में वह कांग्रेस का सदस्य बना। नौकरी से त्यागपत्र दे कर वह कांग्रेस आंदोलनों में दो-तीन बार जेल गया और इस प्रकार उसने और अधिक लोकप्रियता अर्जित की।

इधर जोखन माझी और उसका अनुज संभल माझी और अधिक दर्पपूर्ण एवं उपद्रवी बन गए। वे प्रायः नशे में चमारों के घरों में घुस कर उन्हें पीटते और उनकी स्त्रियों को छेड़ते। ब्राह्मण दो नेताओं के बीच विभक्त थे। कुछ चौबे का अनुगमन करते क्योंकि उसने विशेषाधिकार प्राप्त कर लिया था और अन्य सम्पत तिवारी के पीछे चलते। आगे ब्राह्मणों में इस बात को ले कर और भी फूट हुई कि सुमेर शुक्ल ने एक क्षत्रिय विधवा को रख़ैल के रूप में अपने घर में डाल लिया था। कुछ ब्राह्मण जातीय नियमों के विरुद्ध उसके यहाँ भोजन ग्रहण करते रहे और अन्योंने उसका बहिष्कार किया। शुक्ल के विरोधियों में चौबे भी था जिसने गाँव में नए

दल को जन्म दिया था। एक खेत को ले कर जिसे सुमेर शुक्ल ने अपने अधिकार में कर लिया था सुमेर शुक्ल का झगड़ा कुबेर शुक्ल के परिवार से हुआ। जब कुछ क्षत्रियों ने सुमेर शुक्ल की सहायता की, विशेष रूप से इस झगड़े में, तो चौबे और उसके पक्ष ने सुमेर शुक्ल के विरोधियों का साथ दिया। इस प्रकार ब्राह्मणों में भी फूट हुई परन्तु चौबे इन घटनाओं को सन्तुलित भाव से देखने वाला व्यक्ति न था। जितने क्षत्रिय उसके विरोधी और सरकारी नौकर थे उनका स्थानान्तरण दुद्धी से बाहर कराने का उसने भरपूर प्रयत्न किया और इसमें वह सफल रहा। सम्पत तिवारी का स्थानान्तरण बनारस और जंग बहादुर तथा सत्य नारायण सिंह का चुनार को हुआ।

चौबे की सफलता अधिक दिन न टिक सकी। जोखन माझी के काले कारनामे असह्य हो गए और चमारों तथा अन्यों ने जिनके साथ दुर्व्यवहार हुआ था जोखन के हटाए जाने के लिए ज़िलाधीश को संयुक्त रूप से शिकायती पत्र भेजा। जाँच के बाद १९३९ के लगभग जोखन पदच्युत कर दिया गया। साथ ही चौबे का भ्रष्टाचरण, विशेषकर ग्रामवासियों से घूस लेना, उसके पतन का कारण हुआ। दुद्धी के बनिया छेदी साहु के विरुद्ध किसी ऋण को ले कर मंगल माझी के मुक़दमे में चौबे के भ्रष्टाचरण का उद्घाटन हुआ। पता चला कि चौबे ने छेदी साहु से घूस ले कर मंगल माझी से ८ बीघे के बजाय १२ बीघे के दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर (अँगूठे का निशान) करा लिया।

इस काल में गाँव के नेतृत्व में पुनः परिवर्तन हुआ और विभिन्न गुटों में शक्ति सन्तुलन दुबारा इधर से उधर हुआ। जब कि पहले दलों की प्रतिस्पर्धा रक्षात्मक थी अर्थात् हर दल अपने ही स्वार्थों की रक्षा के लिए यत्न करता था, अब वे अधिक आक्रामक हो गए। उनका उद्देश्य हो गया कि हर सम्भव रीति से प्रतिस्पर्धियों का अन्त किया जाय। उदाहरणार्थ, बैजनाथ चौबे के प्रतिस्पर्धियों ने चेष्टा की कि उसे तहसील के बाहर निकाल दिया जाय। इसी प्रकार बैजनाथ चौबे ने अपने विरोधियों का स्थानान्तरण अन्य स्थानों को करा दिया। विरोधियों को आर्थिक संघर्ष में परास्त करना भी अन्य चालों में एक थी। इस प्रकार अपने प्रतिस्पर्धियों को क्षति पहुँचा कर अधिकाधिक भूमि पर अधिकार तथा अधिकाधिक धनसंचय करने की बैजनाथ चौबे ने चेष्टा की। अन्त में, यह ध्यान का विषय है कि गुटों के विकास के इस चरण में मुख्य फूट उच्च जातियों में आरम्भ हुई। पहले ब्राह्मणों में फूट हुई जिसमें एक दल का नेता चौबे था और दूसरे का सम्पत तिवारी। उसके बाद ही क्षत्रियों तथा बनिया सदृश अन्य उच्च जातियों में भी उसी प्रकार फूट हुई। केवल उनके नीचे की जातियों, यथा चमारों, में अभी तक खुले रूप से फूट नहीं पड़ी थी।

४. **सर्वदमन सिंह का कार्यकाल**—सपुरदार के पद पर सर्वदमन सिंह की नियुक्ति से चौथा काल आरम्भ होता है। यू. पी. ज़मींदारी उन्मूलन ऐक्ट के १९५२ में लागू होने तक वह इस पद पर रहा। उसके कार्यकाल में उसके पिता प्यारे सिंह के नेतृत्व में क्षत्रियों या कम से कम उनके एक दल की शक्ति बढ़ गई। परन्तु क्षत्रियों के सहायक ब्राह्मण नेता सम्पत तिवारी को अधिक व्यक्तिगत लाभ न हुआ। इसके अतिरिक्त अपनी चतुराई और धूर्तता के रहते हुए भी क्षत्रिय नेतृत्व के विरोध में उसका प्रतिस्पर्धी चौबे अपनी स्थिति खो बैठा।

सपुरदार के पद पर सर्वदमन सिंह की नियुक्ति से चौबे का प्रभाव घटने लगा क्योंकि सभी चमार और निम्नजातीय लोग, कबायली भी, सर्वदमन सिंह के साथ थे। यह देख कर कि मंगल माझी के विरुद्ध छेदी साहु से चौबे ने घूस लिया था कुछ माझी भी चौबे पर अविश्वास करने लगे।

इसी काल में बनियों में भी गुटबन्दी फैली। पहले बियाहुत बनियों में सम्पत्ति को ले कर रामचन्द्र साहु और श्रीप्रकाश साहु की वैयक्तिक प्रतिस्पर्धा के कारण फूट थी। यह घटना लगभग १३ वर्ष पुरानी है जब एक ऋण के बदले में श्रीप्रकाश साहु के एक सम्बन्धी के एक खेत पर रामचन्द्र साहु ने अधिकार कर लिया। कालान्तर में अयोध्यावासी बनियों में एक विवाहोत्सव को ले कर टुनटुन साहु और अन्यों के बीच फूट पड़ गई।

५. **यू. पी. ज़मींदारी उन्मूलन ऐक्ट के लागू होने के उपरान्त**—यू. पी. ज़मींदारी उन्मूलन ऐक्ट के लागू होने पर सपुरदारी प्रथा का अन्त हो गया। परन्तु गुट बने रहे और १९५३ में उ. प्र. पंचायत राज ऐक्ट के लागू होने पर तज्जनित राजनीतिक संस्थाओं में भी वे व्याप्त हो गए। क्षत्रियों का नेता सर्वदमन सिंह गाँव सभा का प्रधान और अदालती पंचायत का सरपंच बना। १९५३ में कुछ सरकारी पंचायतों में चुनाव गुटबन्दी के आधार पर हुए। यह सही है कि स्वतंत्रता-प्राप्ति तथा पंचायत राज ऐक्ट के लागू होने के बाद जनता के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है। एक समान उद्देश्य के हेतु संघर्ष करने में अपेक्षित एकता की एक नई अनुभूति परिलक्षित है। एकता की भावना का सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण गाँव पंचायत के चुनाव के समय देखने में आया जिसमें सर्वदमन सिंह के विरुद्ध बैजनाथ चौबे बुरी तरह से पराजित हुआ। सर्वदमन सिंह को दो जाति-बहिष्कृत परिवारों को छोड़ प्रायः सभी ठाकुर परिवारों, सभी चमारों, अधिकांश बनियों और अनेक ब्राह्मण परिवारों का समर्थन प्राप्त है। बैजनाथ चौबे का परिवार स्वयं विभक्त है और उसके दोनों अनुज सम्पत्ति-विभाजन के प्रश्न पर उससे झगड़ कर विरोधी दल में जा मिले हैं। उसके पुराने मित्र संभल माझी, जयराम पासी, बंसी तिवारी और

भुइयाँ लोग अभी भी उससे चिपके हुए हैं। हाल तक कोदई भी चौबे के सबसे बड़े समर्थकों में था परन्तु कुछ दिनों पूर्व उसमें और चौबे के भानजे बंसी तिवारी के बीच हुए एक झगड़े के कारण जिसमें लगता था कि चौबे अपने भानजे का समर्थन कर रहा है, कोदई चौबे के दल से अलग और बीच के अथवा तटस्थ दल में सम्मिलित हो गया है।

जाति का अन्तर्गत नेतृत्व

ब्राह्मण दोनों चौबे बन्धुओं बैजनाथ चौबे और रामलग्न चौबे के नेतृत्व में दो मुख्य भागों में बँटे हुए प्रतीत होते हैं। यद्यपि ये दो भाग दोनों भाइयों के व्यक्तिगत स्वार्थों पर आधारित हैं, इन्होंने वृहत्तर रूप भी धारण कर लिया है। किसी भी अन्तरजातीय झगड़े में बैजनाथ चौबे का बहुत महत्वपूर्ण स्थान रहता है।

उनके बाद क्षत्रिय आते हैं जिनमें प्यारे सिंह के दल का बोलबाला है। दूसरा दल आर्थिक कष्टों तथा उसके सभी सदस्यों के जाति-वहिष्कृत होने के कारण बहुत शक्तिहीन हो गया है। इस दल का नेता रामकरन सिंह है। इस जाति में एक तटस्थ वर्ग भी है जो दोनों दलों में किसी से भी सम्बद्ध नहीं है।

गाँव में तीसरी बड़ी जाति बनियों की है। वे तीन समूहों में बँटे हैं और उनमें दो समूहों के उपभाग भी हैं। बियाहुत (कलवार) बनियों में दो दल हैं। एक का नेता रामचन्द्र साहु है जो गाँव का सबसे धनी व्यक्ति है और दूसरे दल का नेता श्रीप्रकाश साहु है। इस जाति के इस समूह की एक विशेषता यह है कि दोनों नेता एक दूसरे के घर नहीं जाते परन्तु उनके समर्थक मुक्त रूप से परस्पर मिलते हैं। अयोध्यावासी बनियों में भी दो दल हैं। एक के नेता दो भाई भुलई साहु और नागू साहु हैं तथा दूसरे का नेता नकुल साहु है। परन्तु अग्रहरी बनियों में एकता है और उनका नेता श्रीविलास साहु है। यह बहुत ही ध्यान देने योग्य तथ्य है कि अन्य जातियों के विरोध में बनिया समुदाय के तीनों भाग संयुक्त हो जाते हैं। ऐसे अवसरों पर दो प्रमुख जातीय नेता रामचन्द्र साहु और भुलई साहु होते हैं।

गाँव की जनसंख्या में चमारों का एक महत्वपूर्ण भाग है और उच्च जातियों के विपरीत उनमें अभी भी दृढ़ एकता है। इस जाति में कोई भाग या गुट नहीं हैं। उनमें एकमत है और वे अवसर आने पर परस्पर तन-मन-धन से सहायता करते हैं। इसका कारण संभवतः उनकी निर्धनता तथा जीवननिर्वाह की चिन्ता है। एक अन्य कारण उनकी अत्यन्त शक्तिशाली तथा संघटित जातीय पंचायत हो सकती है। वही जाति के सभी भीतरी झगड़ों को निबटाती है।

माझी पहले एक थे परन्तु दुद्धी के छेदी साहु के विरुद्ध मंगल माझी के मुक़दमे को ले कर उनमें फूट पड़ गई क्योंकि संभल माझी ने अपने कबायली भाई मंगल

माझी के ही विरुद्ध छेदी साहु की सहायता की थी। तब से इस कबीले के लोगों में दो भाग हैं।

पनिकों में एकता है और इस कबीले का वृद्धतम व्यक्ति महादेव पनिका उनका नेता है।

चेरो लोगों का भी एक नेता है रामदेव बैगा जो गाँव का बैगा होने के कारण कबीले में सबसे शक्तिशाली व्यक्ति है।

शेष जातियों और कबीलों में न तो दल हैं न कोई महत्वपूर्ण नेता। इसका कारण सम्भवतः यह है कि वे अत्यन्त दरिद्र हैं और जीवननिर्वाह के हेतु उन्हें घोर संघर्ष करना पड़ता है। उससे उन्हें अन्य विषयों के लिए अवकाश ही नहीं मिलता। वे तड़के घर से निकल जाते हैं और सारे दिन के कठिन श्रम के बाद शाम को लौटते हैं और उस समय भोजन तथा आराम को छोड़ उन्हें किसी अन्य विषय पर सोचने की इच्छा नहीं रहती।

टोलों का नेतृत्व

इन अन्तरजातीय तथा जाति के अन्तर्गत भागों के अतिरिक्त ग्रामवासियों में अपने-अपने टोलों की बड़ी दृढ़ भावना होती है। पश्चिमी टोले के सभी निवासियों ने एक दल बना रखा है और उनमें दृढ़ एकता है। पूर्वी टोले वालों ने भी एक अन्य दल बना रखा है परन्तु पश्चिमी टोले वालों की भाँति न तो उनमें उतनी दृढ़ एकता है न उतनी शक्ति। इन टोलों में एक के सदस्य दूसरे द्वारा आयोजित किसी उत्सव में सम्मिलित नहीं होते। अभी तक इन दोनों के बीच खुले रूप से कोई विरोध या झगड़ा नहीं हुआ है। पश्चिमी टोले का नेतृत्व जवाहर सिंह, प्यारे सिंह, आदि के हाथों में बतलाया जा सकता है और पूर्वी टोले का रामचन्द्र साहु, भुलई साहु, आदि के हाथों में।

ग्रामव्यापी नेतृत्व

अभी ग्रामव्यापी नेतृत्व का अभाव है और सार्वजनिक हितार्थ रचनात्मक नेतृत्व का विचार बहुत धीरे-धीरे विकसित हो रहा है। आज तक गाँव में केवल एक नर-पुंगव अथवा असाधारण व्यक्ति हुआ है जो लोकप्रिय था और सारे गाँव के कल्याणार्थ जिसकी सेवाओं के कारण लोग अभी भी उसका सम्मान करते हैं।

जो असाधारण बातें किसी व्यक्ति को नेता बनाती हैं वे हैं धन, वृद्धत्व, शिक्षा, नगरवासियों पर प्रभाव, दल के स्वार्थों की पूर्ति के लिए अवकाश तथा कुछ व्यक्तिगत गुण यथा नम्रता, सहानुभूति तथा उदार हृदय एवं परोपकारी प्रकृति। इस

गाँव में नेतृत्व का आधार व्यापक नहीं है और वे व्यक्ति ही नेता बन सके हैं जिन्होंने नेता बनने के लिये प्रयास किया है। शेष व्यक्ति अत्यंत दरिद्र हैं और अपने काम में व्यस्त रहते हैं। उनके लिए नेतागिरी एक विलास है और वे उसके लिए अक्षम हैं।

लोग राजनीतिक और सामाजिक नेता के बीच कोई भेद नहीं करते। पारिवारिक झगड़ों और विवादों में अथवा जब कभी कोई व्यक्तिगत मामले निबटाने होते हैं सर्वदमन सिंह को बुलाना आवश्यक होता है। पारिवारिक सम्पत्ति के वितरण में भी सर्वदमन सिंह का भाग रहता है। अदालत उसे सबसे शक्तिशाली और विश्वसनीय वक्ता मानती है और सरपंच होने के कारण जिन विषयों में प्रमाण की अपेक्षा होती है उसे ही सबसे अधिक विश्वस्त मानते हैं।

युवा नेताओं का सर्वथा अभाव है जिससे प्रकट होता है कि नेतृत्व के लिए सबसे अधिक अपेक्षा वयस् की होती है। ग्राम पंचायत के सभी सदस्यों का वयस् ३५ वर्ष से ऊपर है। परन्तु शिक्षा की वृद्धि तथा सामुदायिक विकास योजनाओं में मंगल दल सदृश युवकों के कार्यकलापों के संघटन के फलस्वरूप धीरे-धीरे नवयुवकों का उदय हो रहा है। तथापि अभी नेतृत्व के लिए वृद्ध होना सबसे बड़ी गारंटी है। नवयुवक वृद्ध जनों अथवा पंचायत के किसी सदस्य के साथ बैठे हुए या गाँव की समस्याओं पर विचार-विमर्श करते हुए बहुत कम दिखाई देते हैं।

गाँव के नेतृत्व में स्त्रियों का कोई योगदान नहीं है। गाँव के हाल के इतिहास में किसी स्त्री नेता का एक भी उदाहरण नहीं मिलता। जिन स्त्रियों का सम्मान होता है वह इसलिए कि वे या तो वृद्धा हैं या उनके परिवारों की मर्यादा उच्च है।

नेतागण—उदाहरणात्मक अध्ययन

बैजनाथ चौबे १९०४ में राबर्ट्सगंज तहसील में कोन के क्षेत्र में दुद्धी से २२ मील दूर बीडर गाँव से प्राइमरी स्कूल अध्यापक के रूप में दुद्धी आया। उसने १९१८ में नौकरी से त्यागपत्र दिया। चितौरा के क्षत्रियों से उसके कभी अच्छे सम्बन्ध नहीं रहे। लगता है कि बैजनाथ चौबे के बसने के पूर्व गाँव में गुट थे ही नहीं अथवा यदि थे तो उनका इतिहास अविदित है। गाँव में कुछ लोग बैजनाथ चौबे को ही गाँव के सभी झगड़ों की जड़ बतलाने को तत्पर रहते हैं। परन्तु यह वक्तव्य पक्षपातपूर्ण है। वह शिक्षित था और उसने ग्रामवासियों पर अपनी श्रेष्ठता स्थापित करने की चेष्टा की। उसने क्रमशः बहुत सारी भूमि और सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया। बाहरी होने के कारण उसकी उन्नति तथा बढ़ते हुए महत्व को देख कर गाँव के पुराने नेता उससे ईर्ष्या करने लगे। सामाजिक आंदोलनों में भी चौबे की रुचि थी और वह कांग्रेसी था यद्यपि बाद में स्वेच्छा से कांग्रेस दल छोड़ने या उससे निष्कासित

होने के कारण वह समाजवादी बन गया। उसके अनुसार गाँव के नेताओं से उसके प्रथम संघर्ष का कारण उसका बेगार-विरोध था और इसी प्रश्न को ले कर उसका सम्पत तिवारी से झगड़ा हुआ था।

झगड़ों के कारण

केसर सिंह के पिता राधिका सिंह ने चौबे का समर्थन क्यों किया ? सत्यनारायण सिंह निज को राधिका सिंह, शिवमंगल सिंह (रामकरन सिंह के पिता) तथा शत्रुघ्न सिंह (रनबहादुर सिंह के पिता) की अपेक्षा श्रेष्ठ और शुद्ध क्षत्रिय समझता था। सत्यनारायण सिंह का पिता शिवप्रसाद सिंह बड़हर से आया था। शिवमंगल सिंह का पिता दलन सिंह और दो अन्य परिवार रीवाँ से आए थे और सत्यनारायण सिंह उनकी जाति-उत्पत्ति पर भी सन्देह करता था। वह उनके घरों में भोजन नहीं ग्रहण करता था। १९२७ तक सत्यनारायण सिंह के परिवार से इन क्षत्रिय परिवारों के अच्छे सम्बन्ध नहीं रहे। उस वर्ष में कई वैवाहिक सम्बन्धों के माध्यम से सभी क्षत्रिय एक हो गए।

अधिकांश चमार सत्यनारायण सिंह और सम्पत तिवारी के दल के लोगों के सेवक थे, स्वभावतः उन्होंने इस दल का साथ दिया। भुइयाँ चौबे के पड़ोसी और बाद में श्रमिक भी थे, फलतः उन्होंने उसी प्रकार बैजनाथ चौबे का साथ दिया।

फागू तिवारी (बंसी तिवारी के पिता) ने चौबे का समर्थन किया क्योंकि उन्होंने एक दूसरे की बहिनों से विवाह किया था। पूछने पर प्यारे सिंह ने सम्पत तिवारी और सत्यनारायण सिंह के साथ चौबे के संघर्ष का उल्लेख न किया। इसके विपरीत उसने बतलाया कि चौबे का पहला झगड़ा अपने साले-बहनोई फागू तिवारी से हुआ। परन्तु उसने कोई विवरण न दिया। उसने बतलाया कि चितौरा छोड़ कर चौबे दो-तीन वर्ष के लिए बघाडू में बस गया था। वहाँ माझियों से झगड़ कर वह चितौरा वापस आया। यहाँ दुबारा होली के अवसर पर दी जाने वाली अश्लील गालियों की प्रथा को ले कर उसने पलकधारी सिंह के पिता शिवधारी सिंह से झगड़ा मोल लिया। चौबे ने उसे रोकना चाहा और इस पर शिवधारी सिंह से झगड़ा हुआ। यह घटना १९१४ के आसपास की है। इस प्रकार प्यारे सिंह के वक्तव्य के अनुसार चौबे ने समाज-सुधार में सक्रिय भाग लिया और बेगार को ले कर सम्पत तिवारी से हुए पहले संघर्ष का चौबे का विवरण सही प्रतीत होता है।

सत्यनारायण सिंह का चौबे से क्यों संघर्ष हुआ ? सत्यनारायण सिंह वास्तविक सपुरदार सम्पत तिवारी का मित्र था। सत्यनारायण सिंह के पिता के चितौरा में प्रवास करने के कुछ काल बाद उसी स्थान अर्थात् बड़हर से बैजनाथ शुक्ल भी

चितौरा आया। सत्यनारायण सिंह और बैजनाथ शुक्ल का पुत्र सुमेर शुक्ल मित्र भी थे। सत्यनारायण सिंह की दूसरी पत्नी रीवाँ की थी। उसकी बड़ी बहिन विधवा होने पर चितौरा में रहने के लिए आई जहाँ सुमेर शुक्ल से उसके अवैध सम्बन्ध हो गए। सुमेर शुक्ल ने उसे अपने घर में डाल लिया और उनसे एक कन्या का जन्म हुआ जिसे बाद में होड़ल सिंह ने रख लिया। होड़ल सिंह (शत्रुघ्न सिंह का पुत्र) और उसके अनुज रनबहादुर सिंह को जाति-वहिष्कृत कर दिया गया और वे अब भी जातिच्युत हैं। उपर्युक्त कारणों से सत्यनारायण सिंह और सुमेर शुक्ल अच्छे मित्र थे। सुमेर शुक्ल ने बलपूर्वक दुद्धी के शिवनाथ शुक्ल की भूमि पर अधिकार कर लिया। चितौरा के क्षत्रियों ने सुमेर शुक्ल की सहायता की। चौबे ने शिवनाथ शुक्ल और उसकी विधवा माँ का समर्थन किया और उनकी ओर से फ़स्ल काटी। इस प्रकार चौबे का सत्यनारायण सिंह से संघर्ष हुआ।

भुइयों के कुछ खेतों को ले कर दुबारा उपद्रव हुआ। जब विंढम ज़िलाधीश था भुइयों के कुछ खेतों पर सम्पत तिवारी की सहायता से दुंद्धी के मूरत साहु ने बेईमानी से अधिकार कर लिया ा। खेतों की पुनः प्राप्ति में चौबे ने भुइयों की सहायता की। १९१७ में उन्हीं खेतों के बारे में दुद्धी के बहादुर साहु से चौबे का फिर संघर्ष हुआ। बहादुर साहु तहसीलदार को अपने पक्ष में करने में सफल हुआ। तहसीलदार चौबे से रुष्ट था। बैजनाथ चौबे का कथन था कि भुइयों के खेत उन्हें वापस दिलाने में उसने एक सौ रुपए व्यय किए थे और उसके बदले में उसने भुइयों से तीन बीघा भूमि ले ली। सम्पत तिवारी के अनुसार यह भूमि भुइयों की नहीं थी वरन् बहादुर साहु के पिता मूरत साहु ने उसे ख़रीद लिया था। उन दिनों दुद्धी इस्टेट के सभी स्कूल तहसीलदार के अधीन थे। चौबे ने सोचा कि जब तक वह तहसीलदार के अधीन शिक्षक है उससे झगड़ना उसके लिए असम्भव है। अतएव उसने १९१८ में त्यागपत्र दे दिया। बाद में उसने इस भूमि को दुबारा प्राप्त कर लिया। १९२० में वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में सम्मिलित हुआ और उसने १९२१ में अहमदाबाद कांग्रेस में भाग लिया।

१९४० तक के गुट

१९२७ में कतिपय वैवाहिक सम्बन्धों द्वारा क्षत्रियों के दोनों दलों में एकता स्थापित हुई—

(१) प्यारे सिंह की बहिन का विवाह दशरथ सिंह से हुआ।
(२) प्यारे सिंह के द्वितीय पुत्र का विवाह रामकरन सिंह की कन्या से हुआ।
(३) सत्यनारायण सिंह के छोटे लड़के महादेव सिंह का विवाह केसर सिंह की बहिन से हुआ।

इन सम्बन्धों के पूर्व दो सम्बन्ध पहले ही से थे —

(१) सत्यनारायण सिंह की बहिन का विवाह राजकिशोर सिंह के पिता हरखलाल सिंह से हुआ था।

(२) सत्यनारायण सिंह के ज्येष्ठ पुत्र मोती सिंह का विवाह दशरथ सिंह की बहिन से हुआ था।

इस प्रकार महत्वपूर्ण क्षत्रिय परिवारों के निम्नलिखित प्रधान परस्पर सम्बन्धित हैं—मोती सिंह, प्यारे सिंह, राजकिशोर सिंह, दशरथ सिंह, रामकरन सिंह और केसर सिंह। १९४२ में मोती सिंह के ज्येष्ठ भतीजे राघोराम सिंह का विवाह प्यारे सिंह की कन्या से हुआ। मोती सिंह और प्यारे सिंह के परिवारों के बन्धन पर्याप्त रूप से दृढ़तर हो गए। अब एक भी क्षत्रिय परिवार नहीं है जो बैजनाथ चौबे का समर्थन करता हो।

अगली महत्वपूर्ण घटना थी माझियों और चमारों का संघर्ष। जैसा पहले कहा जा चुका है चमारों ने सम्भल माझी पर जो अपने अग्रज जोखन माझी के नाम पर सपुरदार के रूप में काम करता था आरोप लगाया कि वह उनकी (चमारों की) स्त्रियों को छेड़ता था। चमारों को अपने क्षत्रिय स्वामियों का समर्थन प्राप्त था जिन्होंने संभल राम के कुकृत्यों को दबाने के लिए जोखन राम के हटाए जाने की माँग ज़िलाधीश से की। सम्भल राम का समर्थन उसके आजीवन मित्र बैजनाथ चौबे ने किया। १९३९ में सम्भल राम हटा दिया गया।

इस मामले के अलावा केसर सिंह बनाम रामनरेश सिंह के मुक़दमे में बैजनाथ चौबे का प्रत्यक्ष संघर्ष क्षत्रियों से हुआ। रामनरेश सिंह चाहता था कि उसके मौसेरे भाई सुरेश सिंह से केसर सिंह की बहिन का विवाह हो जाय। बैजनाथ चौबे और उसके मित्रों कोदई तिवारी और नगीना तिवारी ने केसर सिंह को राय दी कि वह अपनी बहिन का विवाह सुरेश सिंह से न करे क्योंकि सुरेश सिंह चरित्रहीन तथा लड़की की अपेक्षा बहुत वयस्क था। केसर सिंह ने उसका विवाह अन्यत्र करा दिया। इस पर सभी क्षत्रिय अप्रसन्न हुए और उनका दावा था कि जब लड़की और सुरेश सिंह बहुत छोटे थे तभी उनका विवाह हो गया था। उसी समय से चितौरा के अन्य सभी क्षत्रिय परिवारों से केसर सिंह अलग है। वह पश्चिमी टोले में दो अन्य क्षत्रिय परिवारों (रामकरन सिंह और होड़ल सिंह) के साथ रहता है। केवल रामकरन सिंह के सम्बन्ध अभी भी क्षत्रियों से हैं। होड़ल सिंह और रनबहादुर सिंह दोनों भाई जाति-वहिष्कृत कर दिए गए थे क्योंकि होड़ल सिंह ने सुमेर शुक्ल की कन्या को रख लिया था।

सत्यनारायण सिंह की मृत्यु के बाद क्षत्रियों के गुट के नेता प्यारे सिंह और रामनरेश सिंह हुए। इस गुट और चौबे के गुट की पारस्परिक स्थिति में एक अन्य महत्वपूर्ण अन्तर सम्पत तिवारी के पुत्र कोदई तिवारी के कारण आया। सम्पत तिवारी क्षत्रियों के दल का मित्र था परन्तु कोदई तिवारी बैजनाथ चौबे का मित्र बन गया। कहा जाता है कि कई वर्ष पूर्व चौबे ने कोदई तिवारी की या तो सहायता की थी या किसी मामले में 'ब्लैकमेल' किया था जिससे कोदई तिवारी ने सम्भवत: लिखित वचन दिया था कि वह आजीवन चौबे के प्रति सच्चा रहेगा। कोदई तिवारी ने एक अहीर स्त्री को रख लिया था और उससे उसकी एक सन्तान है। परन्तु उसका अनुज शोभा तिवारी प्यारे सिंह के साथ है। उसे और दो-एक शुक्ल परिवारों को छोड़ कर १९२० और १९४० के बीच चितौरा के सभी ब्राह्मणों ने बैजनाथ चौबे का समर्थन किया। इस काल के अन्त में गुटों की स्थिति इस प्रकार थी—
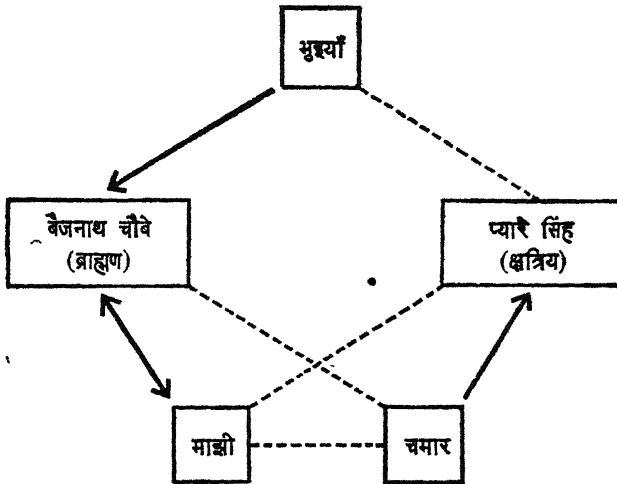
१९४० के बाद के गुट

बनिये जिन्होंने अभी तक किसी गुट का समर्थन नहीं किया था मंगल माझी के मामले में आगे आए। मंगल माझी ने १९३० के पूर्व कभी दुद्धी के रतन साहु से द्रव्यऋण लिया था और उसे वापस कर दिया था। रतन साहु की मृत्यु के बाद उसके पुत्र छेदी साहु ने मंगल माझी से कहा कि उसके नाम में खाते में कुछ बकाया है। बैजनाथ चौबे के हस्तक्षेप से तय हुआ कि मंगल अपनी ८ बीघा भूमि का स्वामित्व छेदी को हस्तान्तरित कर देगा और बदले में कुछ द्रव्य पाएगा। जब यह कार्य सम्पन्न

हुआ चौबे अनुपस्थित था और छेदी ने दस्तावेज़ पर मंगल माझी का अँगूठा-निशान ले लिया जिससे उसे ८ बीघे के स्थान पर १२ बीघा भूमि पर अधिकार मिला। मंगल और भी ठगा गया और उसे वादा किया हुआ द्रव्य न मिला। यह घटना १९३० की है। मंगल अदालत में गया किन्तु निष्फल। यह झगड़ा बहुत दिनों तक चलता रहा। १९४६ में चौबे ने ग्रामवासियों को मंगल माझी के पक्ष में एकत्रित किया और उन्होंने छेदी साहु की फ़स्ल को काट लिया। छेदी ने धारा ३७९ (चोरी, इत्यादि) के अन्तर्गत ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट की अदालत में मंगल, चौबे, आदि के विरुद्ध मुक़दमा दायर किया। मुक़दमा लगभग १८ मास चलने के बाद अस्वीकृत कर दिया गया। मूल झगड़े का निबटारा न हुआ। १९४८ में मंगल माझी ने दुवारा फ़स्ल काटी। अगले वर्ष उसे छेदी साहु के आदमियों ने बुरी तरह पीटा। तह-सील अधिकारी छेदी साहु के पक्ष में थे जिसकी वकालत चितौरा का बच्छराज सिंह जो दुद्धी में चपरासी था करता था। इस समय स्थानीय कांग्रेस दल का सभापति होने के कारण बैजनाथ चौबे भी एक प्रभावशाली व्यक्ति था। उसने मिर्ज़ापुर के दो कांग्रेस नेताओं श्री विल्सन और ग्रामवासीजी को दुद्धी आमंत्रित किया और एक प्रस्ताव पारित हुआ कि दुद्धीवासी सरकारी कर्मचारियों का दुद्धी से स्थाना-न्तरण किया जाय। बच्छराज सिंह और दशरथ सिंह (प्रधान चपरासी) का स्थानान्तरण हुआ। वे १९५० में चौबे की स्वीकृति पर दुद्धी वापस आए क्योंकि उस अवसर पर चौबे को एक यज्ञ के लिए क्षत्रियों की सहायता अपेक्षित थी जिसमें १०५ गायें दान में दी जाने वाली थीं।

मंगल माझी के मामले में चितौरा के बनिये और क्षत्रिय दुद्धी के छेदी साहु के पक्ष में थे। मंगल का कथन है कि छेदी ने क्षत्रियों को घूस दे दिया था। उसके अनु-सार चौबे ने भी उसका (मंगल का) समर्थन किसी न्यायभावना से प्रेरित हो कर नहीं वरन् छेदी द्वारा अपनी स्वार्थपूर्ति की आशा न देख कर किया था। प्रमाण-स्वरूप वह दुद्धी के गब्बू साहु से हुए अपने हाल के झगड़े का उल्लेख करता है जिसमें साहु ने उसके खेतों पर अधिकार कर लिया था और चौबे ने उसकी सहायता की थी।

इस काल की एक अन्य महत्वपूर्ण घटना थी बैजनाथ चौबे का अपने अनुजों राम-लग्न और रघुपति से झगड़ा। पहले वे आदर्श बन्धुगण माने जाते थे और उनका परिवार गाँव का समृद्धतम परिवार था। चार वर्ष पूर्व तक सभी भूमि बैजना चौबे के नाम में थी। उसने उसमें से लगभग ३½ बीघा अपनी कन्या को दे दिया और इस पर उपद्रव उठ खड़ा हुआ। तत्पश्चात् उसने रामलग्न और रघुपति को संयुक्त रूप से ८ बीघा ११ विस्वा भूमि दे दिया और जोतों का अधिकांश उसके पास ही रहा क्योंकि उसका कहना था कि सारी भूमि उसके श्रम का ही फल थी।

परन्तु दोनों छोटे भाइयों ने बैजनाथ चौबे के साथ-साथ खतौनी इत्यादि सरकारी काग़ज़ों में शेष जोतों अर्थात् लगभग ५७ बीघों पर अपने नाम भी लिखवा लिए। किन्तु चौबे ने अगस्त १९५४ में किसी समय डिप्टी कलेक्टर से निर्णय करा लिया कि उसकी भूमि केवल उसके नाम में लिखी जाय। अन्य दो भाइयों ने अदालत में इन जोतों के एक अंश पर अपना दावा पेश कर उसे प्राप्त कर लिया है। रघुपति १९५२ में अलग हुआ और रामलग्न १९५४ में।

इस झगड़े से क्षत्रियों की बन आई और उन्होंने ब्राह्मणों में जो बहुत-कुछ एकता के सूत्र में बँधे हुए थे फूट डालना चाहा। उन्होंने रामलग्न और रघुपति का समर्थन किया और कुछ अन्य ब्राह्मण परिवारों जैसे भिखारी मिश्र, रामचन्द्र मिश्र, विद्याधर चौबे, आदि के परिवारों को बैजनाथ चौबे के विरुद्ध खड़ा कर दिया। इस प्रकार ब्राह्मण समूह में फूट पड़ गई और अब ये दोनों दल बहुधा उन मामलों में भी जिनसे उनका कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रहता परस्पर विरोध करते दिखाई देते हैं। उदाहरणार्थ, हाल में दशरथ सिंह ने अपने बड़े भाई की विधवा श्रीमती सीता के कुछ खेतों पर अधिकार करना चाहा। विधवा का समर्थन चौबे और उसके (चौबे के) हरवाह ने किया। यद्यपि दशरथ सिंह दुद्धीवासी था, रामलग्न चौबे तथा उपर्युक्त अन्य ब्राह्मण परिवारों ने उसका साथ दिया।

ब्राह्मणों और क्षत्रियों दोनों में मोती सिंह, जवाहर सिंह, नगीना तिवारी, शिवगोपाल तिवारी, श्रीराम मिश्र सदृश अवसर जोहने वाले लोग हैं।

गुटों की वर्तमान स्थिति को चित्र-रूप में अगले पृष्ठ पर दिखलाया गया है।

इनमें से अधिकांश गुट नातेदारी पर आधारित हैं। १९२७ के पूर्व क्षत्रिय दो दलों में बँटे थे। क्षत्रियों में एकता स्थापित करने के हेतु सर्वोत्तम उपाय सोचा गया कि गाँव के क्षत्रिय परिवारों में कुछ वैवाहिक सम्बन्ध किए जायँ। यह १९२७ में हुआ और बहुत कुछ इन बन्धनों के कारण क्षत्रियों ने क्रमशः सर्वोपरि स्थान प्राप्त कर लिया। इसके फलस्वरूप ही कुछ ब्राह्मण क्षत्रिय गुट से हट कर बैजनाथ चौबे के गुट में आ मिले। उनमें एक कोदई तिवारी भी था परन्तु हाल में कुछ खेतों को ले कर बंसी तिवारी से हुए झगड़े के कारण वह बैजनाथ चौबे के गुट से अलग हो गया। बंसी तिवारी चौबे का समर्थन केवल इसलिये करता है कि चौबे उसका मामा है। बैजनाथ चौबे और रामलग्न चौबे के झगड़े में भिखारी मिश्र ने रामलग्न चौबे का समर्थन नहीं किया। गत वर्ष रामलग्न चौबे ने भिखारी मिश्र के पुत्र श्रीपति का विवाह अपने साले की लड़की से करा दिया। उस समय से भिखारी मिश्र रामलग्न चौबे का साथ देता है। किसी गुट की सदस्यता का आधार कभी वैयक्तिक नहीं होता वरन् परिवार पर निर्भर करता है।
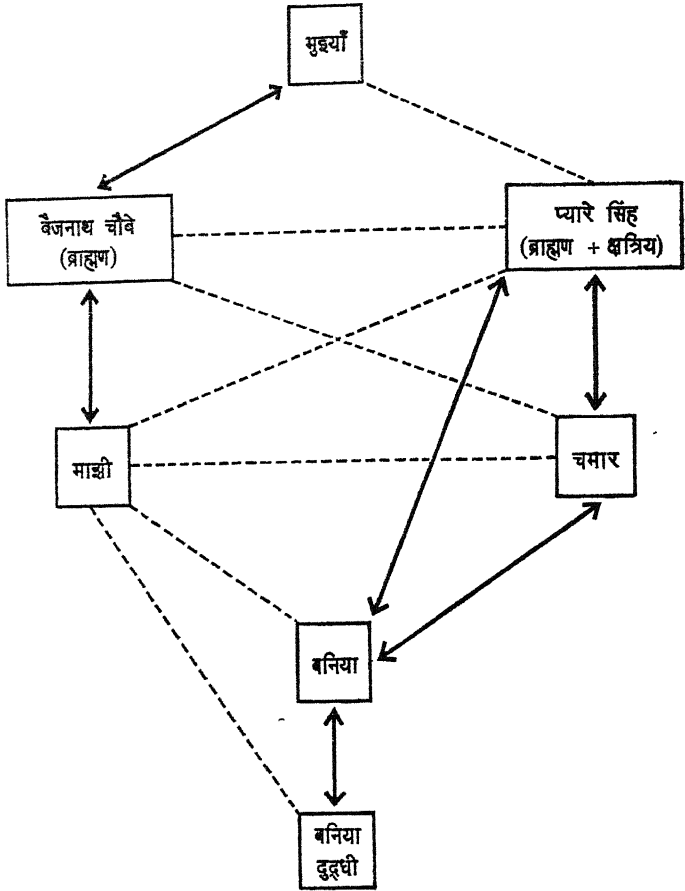
एक ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि परस्पर विरोधी गुटों के सदस्य आपस में बातचीत बन्द नहीं कर देते अपितु इसके विपरीत नम्रता का व्यवहार रखते हैं। इससे वे एक हो कर सामान्य शत्रु का सामना करने में समर्थ होते हैं। उदाहरणार्थ, १९३६ में जब ग्रामवासियों से बलात् दुबारा लगान वसूला जा रहा था सारा गाँव बैजनाथ चौबे के नेतृत्व में एक हो गया। बैजनाथ चौबे के साथ अभद्रता का व्यवहार करने पर गाँव की सभी जातियों और गुटों के लगभग ३५ अगुआ तहसीलदार के पास गए। मामला फिर ज़िलाधीश के पास गया। चौबे ने ज़िले के सर्वोच्च कांग्रेस नेता

स्वर्गीय बैरिस्टर यूसुफ़ इमाम को भी दुद्धी आमंत्रित किया जिससे वह स्थिति की जाँच कर ग्रामवासियों की सहायता करें। अन्ततः ग्रामवासियों की जीत हुई।

चितौरा में गुटों का उदय भूमि-सम्बन्धी झगड़ों, शक्ति (जैसे सपुरदारी) अर्जित करने के निमित्त झगड़ों तथा समाज-सुधार विषयक झगड़ों को ले कर हुआ। जिन शक्तियों ने गुटों की वृद्धि में योगदान दिया है वे हैं जनसंख्या की वृद्धि, संयुक्त परिवार का उत्तरोत्तर क्षीण होना, बढ़ती हुई ऊर्ध्वाधर आर्थिक चलनशीलता जिसके कारण कुछ परिवार ऊपर उठ रहे हैं और कुछ नीचे खिसक रहे हैं, और शिक्षा की वृद्धि। परन्तु इन शक्तियों के कारण ही नातेदारी पर आधारित गुटों का अन्त भी सम्भव है। ऐसे कतिपय उदाहरण हैं जिनमें किसी संयुक्त परिवार के सदस्य परस्पर विरोधी गुटों में सम्मिलित हैं। रामलग्न चौबे, रघुपति चौबे, मृगु तिवारी (बंसी तिवारी का भाई) और शोभा तिवारी (कोदई तिवारी का भाई) इसके कुछ उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त परस्पर विरोधी गुटों के बच्चों में, जो एक साथ शिक्षा पा रहे हैं, ऐसे बंधन विकसित हो जाते हैं जिनका गुटों की स्थिति पर प्रभाव पड़ना सम्भव है।

सप्तम अध्याय

अन्तरजातीय सम्बन्ध

जातीय भावना से ओतप्रोत चितौरावासियों के दो समूह हैं—कबायली और अकबायली। कबायलियों में ५ समुदाय हैं और अकबायलियों में ११ जाति समूह। ये समुदाय और जाति समूह हैं —

कबायली	अकबायली	
माझी	ठाकुर	तेली
भुइयाँ	ब्राह्मण	कुम्हार
चेरो	कलवार	केवट
पनिका	अग्रहरी	पासी
खरवार	अहीर	चमार
	लोहार	

कबायली लोग गाँव के मूल निवासी हैं और अकबायली वे हैं जो बाद में आए और जिन्होंने चोरी तथा बल से गाँव की भूमि के विधिसम्मत अधिकार से कबायलियों को वंचित कर दिया। चितौरा के अधिकांश निवासी सवर्ण हिन्दू हैं। कबायली जनसंख्या पूरी जनसंख्या की एक-चौथाई से कम है। कबायलियों की अपनी एक विशिष्ट संस्कृति थी। उनके भोजों और उत्सवों, उनके जादू-धर्म से सम्बन्धित रीति-रस्मों को ब्राह्मण पंडित नहीं वरन् बैगा या पठारी सम्पन्न कराता था और कभी-कभी अभी भी कराता है। चितौरा के बाहर के कबायली जीवन पर एक टिप्पण अन्यत्र दिया गया है और इस स्थान पर इतना कहना पर्याप्त होगा कि आसंस्करण के परिणामस्वरूप चितौरा के कबायलियों ने सवर्ण हिन्दुओं के रीति-रस्मों और विश्वासों के पक्ष में अपने रीति-रस्मों और आचारों को बहुत सीमा तक छोड़ दिया है। इस परिवर्तन को जो क्रमिक तथा प्रायः अगोचर था १९५२ में एक समाज सुधारिका देवी के आगमन से आकस्मिक रूप से बल मिला। देवी ने कबायली (माझी) होते हुए भी हिन्दुओं के रहन-सहन का प्रचार किया।

इस प्रकार कबायलियों और अकबायलियों के बीच की खाई पट रही है। सुविधा के हेतु इन पाँच कबायली समूहों और ११ हिन्दू जाति समूहों को एक स्तरबद्ध मंडल (stratified constellation) के रूप में देख सकते हैं। गाँव में अपनी-अपनी मर्यादा और प्रतिष्ठा के अनुसार ये १६ समूह तीन स्तरों पर स्थित हैं।

इन १६ समुदायों को सामाजिक सीढ़ी पर उचित क्रम में रखने के पूर्व उनके तुलनात्मक आकार पर ध्यान देना उपयुक्त होगा। गाँव का सबसे बड़ा समुदाय चमारों का है। वे सारी जनसंख्या के २३ प्रति शत हैं। उनके बाद कलवार आते हैं तथा उनके बाद ब्राह्मण और ठाकुर। अन्य हिंदू जातियों के दो-एक परिवार ही हैं।

चितौरा गाँव मैदानों के गाँवों से सर्वथा भिन्न रूप में बसा हुआ है। चितौरा में घर बिखरे हुए हैं जिससे विभिन्न जातियों के बीच और एक ही जाति के सदस्यों के बीच भी दिन प्रति दिन अवकाश में स्थापित होने वाले सम्पर्क प्रायः नहीं हो पाते। चितौरा में चार टोले हैं चितौरा ख़ास, महुअरिया, चुटकाई बहरा और पिपरही। पिपरही में केवल कुछ कबायलियों और दो-एक सवर्ण हिन्दू परिवारों के झोपड़े हैं। यह चितौरा ख़ास से लगभग १½ मील दक्षिण में है। चितौरा ख़ास में निवास करने वाली मुख्य जातियों के नाम पर विभिन्न टोले हैं यथा ब्राह्मण टोला, ठाकुर टोला, कलवार टोला और चमार टोला। ब्राह्मणों और ठाकुरों के घर गाँव के पूर्वी कोने में पास-पास बसे हैं, अतः अन्य जातियों की अपेक्षा इन दो जातियों में अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध होने की संभावना है।

ब्राह्मण और ठाकुर

गाँव में इन दो जातियों की संख्या प्रायः बराबर है और उनकी सामाजिक मर्यादा प्रायः समान है। आर्थिक दृष्टि से वे अन्य जातियों की अपेक्षा कहीं अधिक सम्पन्न हैं। सामान्यतः उनमें बहुत अच्छे मैत्री-सम्बन्ध नहीं हैं क्योंकि दोनों जातियाँ गाँव के मामलों में प्रधानता चाहती हैं। इस समय भी गाँव के दो सबसे महत्वपूर्ण और शक्तिशाली गुटों के प्रधान इन दो जातियों के ही हैं यद्यपि ठाकुरों की स्थिति अधिक विशेषाधिकारपूर्ण है और ब्राह्मणों की अपेक्षा उनके समर्थक अधिक हैं।

शास्त्र की दृष्टि से ठाकुर निज को ब्राह्मणों से निम्न मानते हैं क्योंकि ब्राह्मण पुरोहित वर्ग के हैं। वर्तमान समय में चितौरा में चार ब्राह्मण परिवार अभी भी अपनी परम्परागत पंडिताई के काम में लगे हैं जब कि शेष ब्राह्मण परिवारों ने जीवन-निर्वाह के अन्य साधन अपना लिए हैं यथा कृषि, व्यापार तथा ठेकेदारी। पंडिताई में लगे हुए ब्राह्मण भी आय के एक पूरक साधन के रूप में कृषि का सहारा लेते हैं। ब्राह्मणों में एक उपसमूह महाब्राह्मणों का है जो सभी मृतक-संस्कार कराते हैं। ठाकुरों की, जो भूस्वामी हैं तथा आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हैं, बहुत प्रतिष्ठा है। वस्तुतः कई ठाकुर दुद्धी तहसील में कर्मचारी हैं और गाँव पंचायतों में बड़े महत्वपूर्ण पदों पर हैं, अतः गाँव के सभी विषयों में उनका बहुत बोलबाला है और इस प्रकार

ब्राह्मणों की अपेक्षा अधिक सम्मान प्राप्त करते प्रतीत होते हैं। अन्य जनों की अपेक्षा ब्राह्मणों के अधिक सद्गुणी होने की आशा की जाती है, अतः उनके अनैतिक कार्यों की अन्य लोगों के अनैतिक कार्यों की अपेक्षा अधिक कड़ी आलोचना होती है।

कलवार

कलवारों में दो उपजातियाँ हैं बियाहुत कलवार तथा अयोध्यावासी अथवा टाँक कलवार। बियाहुत कलवार निज को टाँक कलवारों से श्रेष्ठतर मानते हैं परन्तु दोनों समूहों के प्रति अन्य जातियों का व्यवहार समान रहता है। कलवार समृद्ध कृषक हैं और उनमें से अनेक ब्याज पर ऋण देते हैं।

चमार

चितौरा के सभी चमार एक ही उपजाति बड़हरिया के हैं। यह उपजाति धूसिया से भिन्न है जिसके सदस्य निम्न माने जाते हैं। चितौरा के चमार अब सुअर नहीं पालते क्योंकि इसे निम्न जाति का लक्षण माना जाता है।

पासी

जातिक्रम में पासी भी बहुत नीचे हैं परन्तु चितौरा के एकमात्र पासी परिवार का प्रधान एक अवकाशप्राप्त स्कूल अध्यापक है जिसके कारण साधारणतः उसकी जो मर्यादा रहती उससे उच्चतर मर्यादा उसे प्राप्त है।

१६ जातियाँ और समुदाय निम्नांकित क्रम में तीन स्तरों पर स्थित हैं—

उच्च स्तर { ब्राह्मण, ठाकुर

मध्य स्तर { कलवार - अग्रहरी, लोहार–अहीर–केवट, कुम्हार–तेली, खरवार, चेरो, माझी, पनिका-पासी

निम्न स्तर { चमार, भुइयाँ

पुरोहित वर्ग के ब्राह्मण तथा भूस्वामी ठाकुर उच्च स्तर में हैं। निम्न स्तर में भी दो ही समूह हैं—समाज-दलित तथा अर्थसंकटग्रस्त चमार और भुइयाँ। शेष १२ समूह मध्य स्तर में आते हैं परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि उन सब की सामाजिक

मर्यादा समान है। आगे चल कर इस पर प्रकाश डाला गया है। निम्नलिखित विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए पर्यवेक्षण के आधार पर १६ समूहों का क्रम निर्धारित किया गया है—जातीय उत्सवों अथवा संस्कारों में ब्राह्मण पंडितों का भाग लेना या न लेना, भोजन तथा जल का ग्रहण करना या न करना, बैठने में भेदभाव तथा अभिवादन की प्रणाली।

उत्सवों तथा संस्कारों में पंडित का भाग लेना या न लेना

मनुष्य तथा ईश्वर के मध्यस्थ के रूप में पंडित या पुरोहित उच्चासन पर अधिष्ठित होता है। वह ब्राह्मण समाज का एक शुद्ध उच्चवर्ण व्यक्ति होता है। अतएव वह एक निम्नवर्ण व्यक्ति के घर में प्रवेश कर अथवा उस घर के स्वामी से भोजन या जल ग्रहण कर निज को अशुद्ध नहीं करता। विभिन्न जातियों के प्रति उसका व्यवहार विभिन्न होता है जैसे सम्मान के पात्रों के प्रति सम्मान, जो बहुत नीचे नहीं गिरे हैं उनके प्रति अनुग्रहशीलता और उनके लिए जिनकी छाया भी इस दैवी प्रतिनिधि पर नहीं पड़ सकती, घृणा नहीं तो प्रायः संपूर्ण उपेक्षा। विभिन्न जातियों के प्रति पंडित के व्यवहार को स्पष्ट रूप से निम्नलिखित तालिका में दिखलाया गया है जिससे पता चलता है कि किन-किन जातियों के किन धार्मिक उत्सवों में वह भाग लेता है या नहीं—

भाग १

	जन्म	छट्ठी	बरही	अन्नप्राशन	मुण्डन	विवाह
ठाकुर	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ
कलवार	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ
अग्रहरी	हाँ	नहीं	नहीं	हाँ	हाँ	हाँ
केवट	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ
लोहार	हाँ	नहीं	नहीं	हाँ	हाँ	हाँ
अहीर	हाँ	नहीं	नहीं	हाँ	हाँ	हाँ
कुम्हार	हाँ	नहीं	नहीं	हाँ	नहीं	हाँ
तेली	हाँ	नहीं	नहीं	हाँ	नहीं	हाँ
खरवार	हाँ	नहीं	नहीं	हाँ	हाँ	हाँ
चेरो	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं
माझी	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	हाँ
पनिका	हाँ	नहीं	नहीं	हाँ	नहीं	हाँ
पासी	हाँ	नहीं	नहीं	हाँ	नहीं	हाँ
चमार	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	हाँ
भुइयाँ	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं

भाग २

	मृत्यु	दसवाँ	तेरहीं	बरषी	कृषि-सम्बन्धी उत्सव	त्योहार
ठाकुर	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ
कलवार	हाँ	नहीं	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ
अग्रहरी	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ
केवट	हाँ	नहीं	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ
लोहार	हाँ	नहीं	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ
अहीर	हाँ	नहीं	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ
कुम्हार	हाँ	नहीं	नहीं	हाँ	हाँ	हाँ
तेली	हाँ	नहीं	नहीं	हाँ	हाँ	हाँ
खरवार	हाँ	नहीं	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ
चेरो	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं
माझी	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	हाँ	नहीं
पनिका	नहीं	नहीं	नहीं	हाँ	नहीं	नहीं
पासी	नहीं	नहीं	नहीं	हाँ	हाँ	हाँ
चमार	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	हाँ	नहीं
भुइयाँ	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं

विभिन्न उत्सवों में पंडित का कर्तृत्व बड़ा महत्वपूर्ण होता है। जन्म के समय केवल वही शिशु की कुण्डली तैयार कर सकता है। उसके द्वारा विभिन्न उत्सवों के लिए शुभ लग्न निकलवाना, पूजा कराना, देवों तथा पूर्वजों के आशीर्वाद प्राप्त करना, छोटे-मोटे कामों के लिए सही व्यक्तियों की नियुक्ति कराना, इत्यादि अनिवार्य होता है। ऊपर दी हुई तालिका के अनुसार ठाकुरों और अग्रहरियों के सभी उत्सवों में तथा कलवारों और केवटों के एक छोड़ शेष सभी उत्सवों में पंडित सम्मिलित होता है। उनके बाद क्रम में लोहार और अहीर आते हैं तथा उनके पीछे कुम्हार और तेली। पंडित का सबसे कम समय और ध्यान चमारों को उपलब्ध होता है। उनके पहले पासी आते हैं जो उनसे केवल एक सीढ़ी ऊपर हैं। यद्यपि तालिका में कबायली समूह सम्मिलित किए गए हैं, उनके उत्सवों में पंडित के भाग लेने या न लेने के आधार पर जातिक्रम में उनकी स्थिति के विषय में कोई पक्की राय नहीं

स्थिर की जा सकती। अधिकांशतः उनके अपने पुरोहित होते हैं जो उनके उत्सव सम्पन्न कराते हैं और उनके देवताओं का आवाहन करते हैं यद्यपि कुछ कबायली समुदाय केवल अपने ही पुरोहितों को नहीं बुलाते वरन् कभी गाँव के पंडित को भी अथवा बाहर के भी किसी पंडित को अपने उत्सवों की शोभा बढ़ाने के लिए निमंत्रित करते हैं। इस प्रकार नियमित रूप से पंडित के यजमान उच्चवर्ण लोग ही होते हैं।

शिशुजन्म पर कुण्डली तैयार करने तथा छट्ठी और बरही के लिए शुभ तिथि तथा लग्न निकालने के हेतु पंडित को निमंत्रित किया जाता है। शिशुजन्म के समय पासियों और चमारों को पंडित की सेवाओं की अपेक्षा नहीं होती क्योंकि उन्हें यह जानने की विशेष चिन्ता ही नहीं रहती कि शिशु का जन्म शुभ लग्न में हुआ है या नहीं। अन्य सभी जातियाँ शिशुजन्म पर पंडित को बुलाती हैं। ठाकुरों, कलवारों और केवटों के यहाँ छट्ठी और बरही में भाग लेने के लिए पंडित को निमंत्रित किया जाता है। केवल चमार अन्नप्राशन के लिए पंडित को नहीं बुलाते। इस उत्सव में पंडित कथा पढ़ता है। वह कुछ जातियों के मुण्डन-संस्कार में भाग लेता है।

सभी जातियों के विवाह-संस्कार में पंडित की उपस्थिति अनिवार्य है। वह जा कर देखता है कि लड़की और लड़के की कुंडलियाँ मिलती हैं या नहीं। निमंत्रण मिलने पर इसके निमित्त वह उच्चवर्ण के घरों में जाता है परन्तु निम्नवर्ण परिवारों को पंडित के पास जाना पड़ता है। पासियों और चमारों के अतिरिक्त सभी जातियों के मृतक-संस्कारों में पंडित भाग लेता है। जब कोई उच्चवर्ण परिवार कथा कराना चाहता है तो उसके घर में ही इस उत्सव का आयोजन होता है, परन्तु जब कोई चमार कथा के उत्सव का आयोजन करता है तो वह किसी देवस्थान पर होता है क्योंकि पंडित किसी चमार के घर में नहीं जा सकता। इन सब संस्कारों-उत्सवों में भाग लेने के उपलक्ष्य में पंडित भोजन पाता है। जहाँ जाति-प्रतिष्ठा के कारण उसके लिए पकाया हुआ भोजन वर्जित होता है वहाँ वह 'सीधा' ग्रहण करता है।

भोजन तथा जल का ग्रहण करना या न करना

भोजन दो प्रकार का होता है, पक्का और कच्चा। सामान्यतः किन्हीं दो जातियों के लोग परस्पर कच्चा भोजन नहीं ग्रहण करते। यदि किसी निम्नवर्ण के लोग केवल ब्राह्मणों और ठाकुरों से भोजन ग्रहण करते हों और किसी अन्य जाति से नहीं तो वे घी या तेल में छानी हुई पूड़ियाँ ही ग्रहण करते हैं क्योंकि विश्वास है कि तेल से अशुद्धि नहीं होती। नियमतः किसी जाति के लोग किसी अन्य जाति से भात नहीं ग्रहण करते, विशेष रूप से यदि ग्रहण करने वाला व्यक्ति उच्चतर जाति का

हो। माझी तो अपने कबीले के अंतर्गत ही कुछ उपजातीय लोगों से भात नहीं ग्रहण करते। चमारों के अतिरिक्त हिन्दू जातियाँ कबायलियों से भात नहीं ग्रहण करतीं। इसी प्रकार माझी और खरवार किसी अकबायली से, ब्राह्मणों से भी, भात नहीं ग्रहण करते।

निम्नलिखित समाजचित्र (sociogram) में ठाकुरों और अन्य जातियों के बीच भोजन करने-कराने की स्थिति दिखलाई गई है—
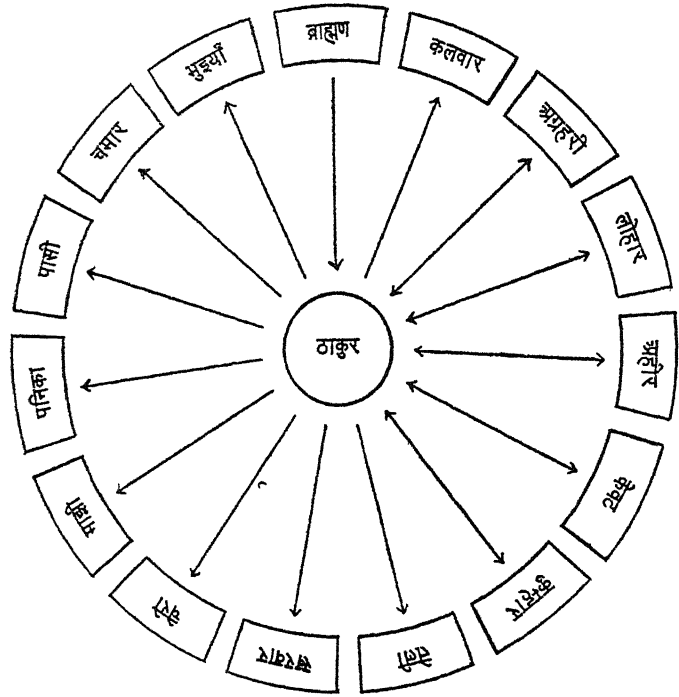
ब्राह्मण किसी अन्य जाति के लोगों से, ठाकुरों से भी, कच्चा भोजन नहीं ग्रहण कर सकते। ठाकुर ब्राह्मण से ब्राह्मण के घर में नहीं किन्तु अन्यत्र कच्चा भोजन स्वीकार कर सकता है। ब्राह्मण ठाकुरों से मिठाइयाँ और दूध से बने पदार्थ ग्रहण कर सकते हैं। ठाकुरों के अतिरिक्त अन्य जातियों और ब्राह्मणों में भोजन के सम्बन्ध उसी प्रकार के हैं जैसे अन्य जातियों और ठाकुरों में। भोजन ग्रहण करने के विषय में सभी उच्च जातियाँ ठाकुरों का अनुसरण करती हैं। कलवारों, अग्रहरियों, लोहारों, अहीरों, केवटों और खरवारों में पक्के भोजन का मुक्त विनिमय

है परन्तु सामान्यतः वे कुम्हारों, तेलियों, चेरों, माझियों, पनिकों, पासियों, चमारों और भुइयों से पक्का भोजन नहीं ग्रहण करते। परन्तु इसके अपवाद भी हैं, यथा चेरो लोगों से ठाकुर पक्का भोजन नहीं ग्रहण करते जब कि लोहार, अहीर, केवट कुम्हार और तेली करते हैं। कबायली समूहों में खरवार, चेरो और माझी समान मर्यादा वाले माने जाते हैं और उनमें पक्के और कच्चे भोजन का मुक्त विनिमय है। पनिका और भुइयाँ अन्य तीन कबायली समूहों से पक्का और कच्चा भोजन ग्रहण करते हैं परन्तु वे पनिका और भुइयाँ से नहीं करते।

निम्नलिखित समाजचित्र में ठाकुरों और अन्य जातियों के बीच जल के आदान-प्रदान की स्थिति को दिखलाया गया है—
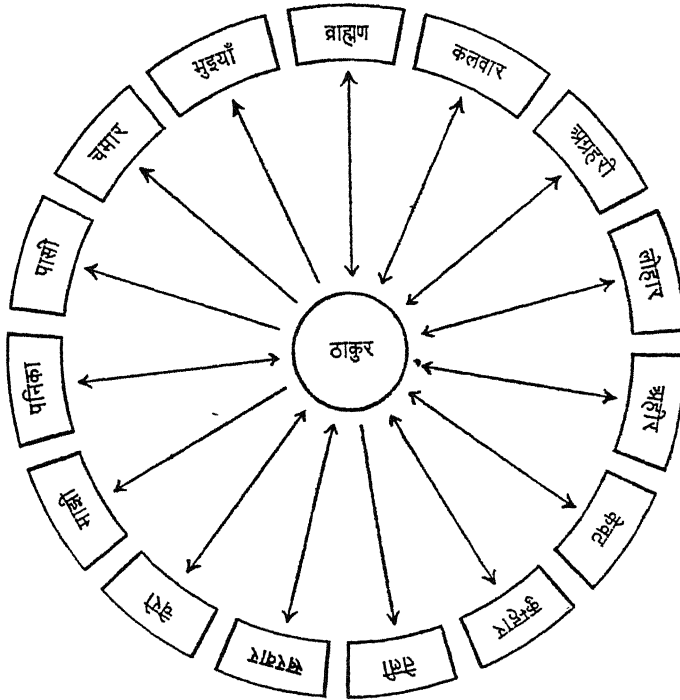
निम्नवर्ण के लोग सभी उच्चतर वर्णों से जल ग्रहण कर सकते हैं परन्तु उच्च-वर्ण के लोग केवल स्पृश्य जातियों से। विश्वास किया जाता है कि जिस जाति से जल ग्रहण किया जा सकता है उससे पक्का भोजन भी ग्रहण किया जा सकता है। पक्के भोजन और जल का ग्रहण साथ-साथ चलता है। परन्तु इसके अपवाद भी

हैं। ठाकुर चेरो लोगों से जल ग्रहण करते हैं परन्तु पक्का भोजन नहीं। इसी प्रकार कलवार तेली से जल ग्रहण करते हैं किन्तु पक्का भोजन नहीं। निम्न जातियाँ और कबायली परस्पर जल ग्रहण करते हैं।

बैठने में भेदभाव

निम्नवर्ण के लोग उच्चवर्ण के लोगों के साथ एक स्तर पर नहीं बैठ सकते। उच्च-वर्ण के व्यक्ति का निम्नवर्ण के व्यक्ति से ऊँचे बैठना अनिवार्य है। यदि कोई उच्च-वर्ण पुरुष किसी निम्नवर्ण पुरुष के पास से गुज़रे जो बैठा हुआ हो तो निम्नवर्ण पुरुष के लिए सम्मान प्रदर्शित करने के हेतु उठ कर खड़ा होना अनिवार्य है।

इस स्थान पर दो बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। एक यह कि अदालती पंचायत की बैठकों में कोई जातिभेद नहीं बरता जाता। इन अवसरों पर जाति के भेदभाव के बिना सभी लोग इकट्ठा बैठते हैं। दूसरी बात यह है कि आदर केवल जाति के लिए ही नहीं होता। वयस्, शिक्षा, व्यवसाय, इत्यादि भी इसका निर्णय करते हैं। इस प्रकार जयराम पासी होते हुए भी उच्चवर्ण लोगों के साथ समान स्तर पर बैठ सकता है क्योंकि वह कभी स्कूल अध्यापक था। उच्चवर्ण लोग स्वयं उसे लकड़ी का कोई आसन बैठने को देते हैं। माझियों का, जो कबायली जनसंख्या का एक अंग हैं, सम्मान किया जाता है क्योंकि वे गाँव के मूल बसने वालों में थे और बहुत दिनों तक सपुरदारी उनके पास रही।

अभिवादन तथा सम्बोधन की प्रथा

विभिन्न स्तरों की जातियों में अभिवादन की प्रथा विभिन्न है। उच्चवर्ण लोगों में अभिवादन करने की साधारण रीति के अनुसार हाथ जोड़ कर 'नमस्ते' कहते हैं। मध्य जातियों के लोग परस्पर हाथ जोड़ कर 'जय रामजी' या 'राम राम' कहते हैं किन्तु उच्चतर जाति वालों को 'नमस्ते'। निम्नवर्ण का पुरुष उच्चतर वर्ण के पुरुष को 'पालागन' कहता है या उसका चरण-स्पर्श करता है और इस अभिवादन के उत्तर में उच्चतर वर्ण का पुरुष आशीर्वाद के रूप में 'ख़ुश रहो' या 'सुखी रहो' कहता है। आजकल अभिवादन का एक प्रचलित रूप है 'जय हिन्द'।

गाँव में नातेदारी के सम्बोधनों का बहुत प्रचार है। उच्च और निम्न सभी जातियों के लोग एक दूसरे की जातियों के वृद्ध जनों को 'दादा' और 'काका' कह कर सम्बोधित करते हैं।

बर्तनों का स्पर्श

किसी उच्चवर्ण परिवार के बर्तनों का स्पर्श चमार और भुइयाँ सदृश अशुद्ध जातियों द्वारा नहीं होना चाहिए। यदि मिट्टी का कोई बर्तन किसी अशुद्ध वर्ण के व्यक्ति से छू जाय तो उसे फेंक देते हैं। यदि वह परिवार इस स्थिति में नहीं है कि उस बर्तन को फेंक दे तो उसे साफ़ कर अन्न अथवा किसी अन्य सूखे खाद्य पदार्थ के संग्रह के लिए उसका प्रयोग करते हैं। फिर कभी जल भरने अथवा रखने के लिए उसका प्रयोग नहीं होना चाहिए। अशुद्ध हुआ बर्तन यदि धातु का हो तो उसे भलीभाँति गर्म कर के मिट्टी और गोबर से शुद्ध करते हैं।

त्योहारों में अन्तरमिश्रण

होली के अतिरिक्त अन्य त्योहारों में कोई जातिभेद नहीं बरता जाता। होली में निम्नवर्ण लोग उच्चतर वर्णों पर रंग नहीं डाल सकते यद्यपि अबीर-गुलाल मल सकते हैं। इसका कारण यह है कि छूत केवल पानी में होता है। मुक्त रूप से मिलने-जुलने पर भी सभी सामाजिक बैठकों में भोजन-जल के नियमों का पालन होता है।

विभिन्न जातियों के अन्तरसम्बन्ध

गाँव में जातिवाद के प्रबल होते हुए भी ग्राम्य जीवन में निस्सन्देह एक ऐसा सामाजिक सम्बन्ध निहित है जो एक प्रकार से उच्चवर्ण तथा निम्नवर्ण के बीच की खाई को कम करता है। इस कार्य में जजमानी प्रथा तथा परम्परागत जाति व्यवसायों का महत्वपूर्ण कर्तृत्व रहा है। जैसा पहले देख चुके हैं गाँव की सभी जातियों से पंडित का सम्पर्क है। लोहार बढ़ईगीरी का काम करता है, इसलिए वह सभी ग्रामवासियों की सेवा करता है। वह उनके हलों और बैलगाड़ियों की मरम्मत करता है और विवाहोत्सवों में मंडप सजाने के लिए लकड़ी के तोते बना कर देता है। वर्ष भर मिट्टी के बर्तनों की निरन्तर पूर्ति में कुम्हार रत रहता है। उच्च अथवा निम्न सभी जातियों को शिशुजन्म के समय चमारिन की सेवाओं की अपेक्षा होती है। चितौरा में धोबी और नाई बिलकुल नहीं हैं और चितौरावासियों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पड़ोसी गाँवों के धोबी और नाई बुलाए जाते हैं।

चेरो लोगों को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है क्योंकि बैगा का पैतृक पद सदा किसी चेरो के पास ही रहता है। बैगा को भूमि का स्वामी मानते हैं और इसलिए भूमि से सम्बन्धित सभी उत्सवों में उसकी उपस्थिति आवश्यक है। कृषि-सम्बन्धी विधिक्रियाओं तथा विवाह-सम्बन्धी 'मटकोड़वा' उत्सव में भी उसका महत्वपूर्ण कर्तृत्व होता है।

उच्चवर्ण लोग जो मुख्यतः भूस्वामी हैं निम्नतर जातियों पर बहुत अधिक निर्भर रहते हैं जिनके सहयोग के बिना वे अपने खेतों को जोत-बो नहीं सकते, निराई, कटाई, दँवाई, ओसाई कुछ भी नहीं कर सकते और न उपज को इकट्ठा कर सकते हैं। साथ ही साथ निम्नवर्ण लोग और कबायली काम के लिए उच्चतर जातियों की दया पर निर्भर हैं। दैनिक जीवन में इस पारस्परिक अन्तरनिर्भरता के कारण, जातिवाद के कट्टर नियमों के होते हुए और उनसे बँधे रहने पर भी, सभी उच्च और निम्न जातियाँ तथा सभी कबायली और अकबायली समुदाय घनिष्ठतापूर्वक साथ-साथ रहते हैं।

संक्रमण युग

कतिपय कारणों के साथ-साथ कार्य करने के फलस्वरूप इस तथा अन्य गाँवों में जाति के प्रभाव में शिथिलता आई है। कट्टरता का स्थान उदारता ने लिया है। इस परिवर्तन को लाने में जिन कारणों ने योगदान दिया है वे हैं नागरिक सम्पर्क, ज़मींदारी प्रथा का उन्मूलन, सरकार द्वारा उन्नति के हेतु किए गए विभिन्न कार्य तथा निम्नतर जातियों में बढ़ती हुई जागरूकता। जो अधिकार तथा सुविधायें उच्चतर जातियों को उपलब्ध हैं अपने लिए बलपूर्वक उनकी माँग करने की निम्नतर जातियों की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ रही है। वे अनुभव करती हैं कि सदा दूसरों की दया पर आश्रित, दासता का जीवन बिताना उनके लिए आवश्यक नहीं। एक समय था जब निम्नतर जातियों को उच्चतर जातियों की हर आज्ञा का चुपचाप पालन करना पड़ता था परन्तु अब किसी भी प्रकार के दुर्व्यवहार का विरोध किया जाता है और निरंकुश आज्ञाओं की अवहेलना होती है। चमार अब बेगार नहीं करते। जैसा देख चुके हैं जाति व्यवस्था के अन्तर्गत खान-पान सम्बन्धी नियमों का सदैव कठोरता से पालन होता आया है किन्तु आजकल ब्राह्मण तक निम्नतर जातियों से कच्चा भोजन ग्रहण करने में नहीं हिचकते। ब्राह्मणों में जो अधिक चतुर हैं वे यह कहेंगे, "जब आप लोग होटल में खाते हैं तो वहाँ कौन खाना पकाता है? केवल सवर्ण ही नहीं पकाते।" बैठने के सम्बन्ध में भी भेदभाव द्रुत गति से समाप्त हो रहे हैं। चमार और कबायली अपने उत्सवों में सम्मिलित होने के निमित्त पंडित को निमंत्रित करने लगे हैं। यदि गाँव का पंडित उनके निमंत्रण को अस्वीकार करे तो वे बाहर से किसी पंडित को बुलाते हैं। इस प्रकार शताब्दियों तक जिन ज़ंजीरों ने निम्नतर जातियों को बाँध रखा था उन्हें वे तोड़ रही हैं। उच्चवर्ण के लोग भी अनुभव करते हैं कि निम्नतर जातियों के प्रति उन्हें अधिक सहिष्णु होना चाहिए। वस्तुतः अधिक सहिष्ण होने के लिए वे बाध्य हैं क्योंकि एक ओर जब निम्नवर्ण लोगों और सरकार ने मिल कर एक विरोधी शिविर बना रखा हो वे जातीय नियमों तथा परम्परागत विश्वासों को ले कर देर तक अलग नहीं बैठे रह सकते।

अष्टम अध्याय

नातेदारी तथा वैवाहिक प्रथायें

ब्राह्मणों और क्षत्रियों में

यह अनुसंधान पहले क्षत्रियों में तथा बाद में ब्राह्मणों में आरम्भ किया गया। नमूने की कुछ वंशावलियों के आधार पर नातेदारी के शब्द अधिकाधिक संख्या में एकत्र किए गए। प्रत्येक में नातेदारी के शब्दों, सम्बोधन के शब्दों तथा उल्लेख के शब्दों की जाँच की गई।

यह देखा गया कि ब्राह्मणों और क्षत्रियों में प्रचलित नातेदारी के शब्द प्रायः समान थे यद्यपि कभी-कभी एक ही सम्बन्ध के लिए दो या अधिक शब्द प्रयोग किए जाते थे। वैसी स्थिति में सूचनादाताओं के विभिन्न समूह एक या दूसरे शब्द को अधिक पसन्द करते थे।

वैवाहिक नियमों के विषयों में भी अन्य समुदायों की अपेक्षा इन दो समुदायों में परस्पर समान लक्षण अधिक हैं। दोनों में विधवा-पुनर्विवाह निषिद्ध है यद्यपि गाँव के अन्य सभी समुदायों में उसकी अनुमति है, यहाँ तक कि कलवार सदृश समृद्ध जाति में भी जिसे अग्रहरी के साथ स्थानीय रूप से बनिया या वैश्य प्रकार की जाति माना जाता है। उसी प्रकार ब्राह्मणों और क्षत्रियों दोनों में बालविवाह अपेक्षाकृत अधिक होते हैं तथा विवाह का सामान्य वयस् अन्य समूहों की अपेक्षा निम्नतर होता है।

१. ब्राह्मणों और क्षत्रियों में नातेदारी की शब्दावली

नातेदारी के शब्दों का व्यवस्थाबद्ध रूप से संग्रह करने की चेष्टा की गई है जिससे अधिकाधिक संख्या में इन शब्दों के संग्रह के साथ-साथ सुगमता से इनकी सहायता से वैवाहिक प्रथाओं आदि का पता किया जा सके। इस प्रकार की व्यवस्थाबद्धता से विभिन्न समुदायों के तुलनात्मक अध्ययन में सुविधा हो सकती है।

स्वाभाविक विकास की अवस्थाओं तथा नातेदारी के सम्बन्धों के विस्तार के अनुरूप नातेदारी के शब्दों का संग्रह किया गया है। साधारण परिवार के प्राथमिक सम्बन्धों के बाद संयुक्त परिवार के सदस्यों के सम्बन्धों से ले कर 'नेपॉटिक' (nepotic), 'एवंकुलर' (avuncular) तथा अन्य सम्बन्धों का अध्ययन किया गया है। इस श्रृंखला की हर कड़ी से सम्बन्धित व्यक्तियों को वंशावली-चित्र में दिखाया गया है तथा शब्दों को तालिका में दिया गया है यथा—

(क) नाभिकीय (Nuclear) परिवार में नातेदारी
(प्राथमिक नातेदार)
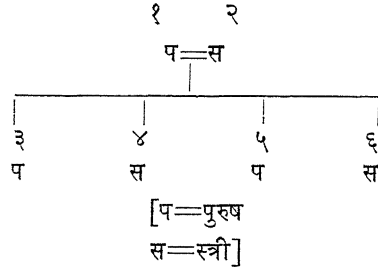
क्रम संख्या	सम्बन्ध	उल्लेख द्वारा का	नातेदारी का शब्द	सम्बोधन का शब्द	उल्लेख का शब्द	विशेष
१	पत्नी	१–२	स्त्री, पत्नी, औरत	कोई शब्द नहीं किन्तु (३) की माई, अरे, सुनो, इत्यादि	औरत, पत्नी	
२	पति	२–१	पति, मालिक भतार	कोई शब्द नहीं किन्तु (३) के पिता जी	पति, मालिक	
३	पुत्र	१–३ २–३	लड़का, बेटवा	नाम से या बाबू	लड़का, बेटवा	पुरुष बोले या स्त्री
४	पुत्री	१–४ २–४	लड़की, बिटिया	नाम से या बिटिया, दैया, मैया	लड़की, बिटिया	,,
५	पिता	३–१ ४–१	वाप, पिता, दादा	बाबजी, दादा, दाऊ	बाप, पिताजी, दादा, दाऊ	,,
६	माता	३–२ ४–२	मा, माई	माई, अइया	मा, माता, महतारी	,,
७	अग्रज	५–३ ४–३	बड़ा भाई	भैया	बड़ा भाई	,,

क्रम संख्या	सम्बन्ध	उल्लेख द्वारा का	नातेदारी का शब्द	सम्बोधन का शब्द	उल्लेख का शब्द	विशेष
८	अनुज	३–५ ४–५	छोटा भाई	नाम से या बाबू	छोटा भाई	,,
९	बड़ी बहिन	५–४ ६–४	बड़ी बहिन	दीदी, बहिन	बड़ी बहिन, दीदी	,,
१०	छोटी बहिन	३–६ ४–६	छोटी बहिन	नाम से या मैंया, दैया	छोटी बहिन	,,

कन्याओं के अतिरिक्त, जो विवाह के उपरान्त चली जाती हैं, उपर्युक्त सभी सम्बन्धी परिवार के स्थायी सदस्य होते हैं। सम्बोधन के प्रायः सभी शब्द नातेदारी के तथा उल्लेख के शब्दों से भिन्न होते हैं। इन शब्दों से उचित घनिष्ठता तथा स्नेह का पता चलता है। पति-पत्नी के बीच सम्बोधन का कोई प्रत्यक्ष शब्द व्यवहार में नहीं है। कोई पुरुष एकाधिक बार विवाह कर सकता है और बहुत कम अवस्थाओं में दो पत्नियाँ साथ-साथ रह सकती हैं, अतएव अतिरिक्त सम्बन्धी भी होते हैं यथा—

(१) सौतेले बच्चे जिन्हें सौतेली माँ उन्हीं शब्दों से सम्बोधित करती है जिनसे वह अपने पुत्र और कन्या को करती है।

(२) सौतेली माँ जिसे सौतेले बच्चे 'बड़की माई' या 'छोटकी माई' कह कर पुकारते हैं।

(३) सहपत्नियाँ जो परस्पर 'बड़की' या 'बड़को' और 'छोटकी' या 'छोटको' कहती हैं।

(ख) पितृपक्ष के नातेदार (Agnatic Kins)

पितृमूलक संयुक्त परिवार की संस्था का परम्परा से आदर है, अतः हिन्दू समुदायों में पितृपक्ष के सम्बन्धियों का विशेष महत्व है। संयुक्त परिवार के विकासानुसार समूहों में इन नातेदारों का अध्ययन किया जा सकता है। पुत्र के विवाह के बाद संयुक्त परिवार का श्रीगणेश होता है तथा दो पुत्रों के विवाहोपरान्त परिवार में अन्तरवैयक्तिक सम्बन्ध अधिक जटिल हो जाते हैं। तीसरी पीढ़ी के शिशुओं के जन्म के पूर्व एक ऐसे आरम्भिक संयुक्त परिवार में प्रयुक्त होने वाले नातेदारी के

शब्दों से अध्ययन आरम्भ करना लाभप्रद होगा। आगे चल कर विस्तार की ऊर्ध्वधिर (vertical), क्षैतिज (horizontal) और सांपार्श्विक (collateral) दिशाओं में अध्ययन किए जा सकते हैं।

(अ) आरम्भिक संयुक्त परिवार में नातेदारी

(पितृमूलक)

१ २
प═स

३ ७ प═स | ४ स | ५ ८ प═स
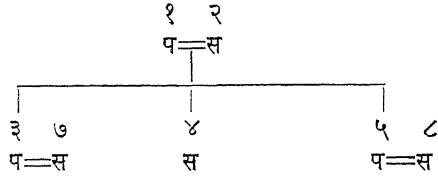
क्रम संख्या	सम्बन्ध	उल्लेख द्वारा का	नातेदारी का शब्द	सम्बोधन का शब्द	उल्लेख का शब्द	विशेष
१	पुत्रवधू	१–७, २–७	पतोहू, पतोह	दुलही	पतोहू	पुरुष बोले या स्त्री
२	पति का पिता	७–१	ससुर	बपुही, बाबा, पिता जी, बाबे	ससुर	
३	पति की माँ	७–२	सास	माई, माँ जी, अइया	सास	
४	अग्रज की पत्नी	५–७, ४–७	भौजाई, भाभी	भौजी, भाभी	भौजाई, भौजी, भाभी	
५	पति का अनुज	७–५	देवर	नाम से (छोटा होने पर), बाबू या अमुक के दादा	देवर	
६	पति की छोटी बहिन	७–४	ननद	नाम से या मैंया, दैया	छोटकी ननद	
७	अनुज की पत्नी	३–८	भवह, भयव	कोई शब्द नहीं (कोई सम्पर्क नहीं)	(५) की दुलही या अमुक की माई	जब पुरुष बोले

क्रम संख्या	सम्बन्ध	उल्लेख द्वारा का	नातेदारी का शब्द	सम्बोधन का शब्द	उल्लेख का शब्द	विशेष
८	अनुज की पत्नी	४–८	भवह्	भौजी	(५) की दुलही या अमुक की माई	जब स्त्री बोले
९	पति का अग्रज	८–३	भसुर, जेठा	कोई शब्द नहीं (कोई सम्पर्क नहीं)	भसुर	
१०	पति की बड़ी बहिन	८–४	ननद	दीदी	बड़की, ननद	
११	पति के अनुज की पत्नी	७–८	देउरानी, गोतनी	छोटकी, अमुक की माई, दीदी, गनिया	छोटकी, गोतनी	
१२	पति के अग्रज की पत्नी	८–७	जेठान, जेठानी, जेठ गोतनी	बड़की, अमुक की माँ, दीदी	जेठान, जेठानी	

'अमुक' के स्थान पर पुत्र या पुत्री का नाम लिया जाता है।

पतियों के बड़े-छोटे होने के अनुसार पत्नियाँ परस्पर बड़की (सबसे बड़ी), मझली (दूसरी), सँझली (तीसरी) या छोटकी (सबसे छोटी) शब्दों से सम्बोधन करती हैं।

(आ) ऊर्ध्वाधर विस्तार वाले संयुक्त परिवार में नातेदारी
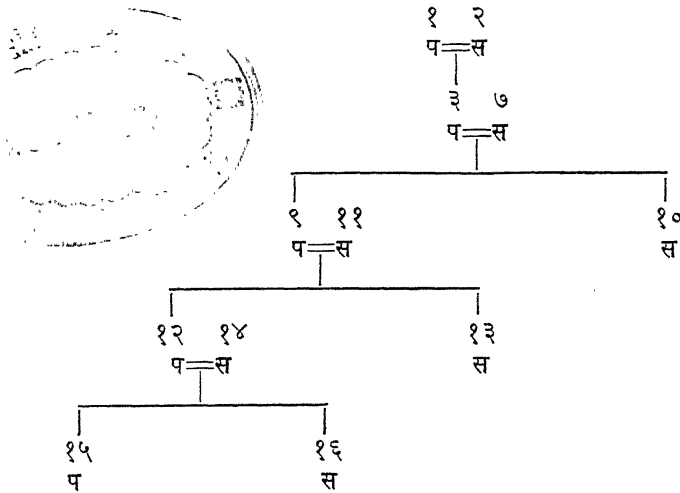
क्रम संख्या	सम्बन्ध	उल्लेख द्वारा का	नातेदारी का शब्द	सम्बोधन का शब्द	उल्लेख का शब्द	विशेष
१	पौत्र	१– ९	नाती, कभी-कभी पोता या परपुत्र	नाम से या बाबू	नाती	पुरुष बोले या स्त्री
२	पौत्री	१–१०	नतिनी, कभी-कभी पोती या परपुत्री	नाम से या मैंया, कभी-कभी नतिनी	नतिनी	
३	पितामह	९– १ १०– १	बाबा, दादा,	बाबा	बाबा	,,
४	पिता की माँ	९– २ १०– २	दादी, आजी	दादी, आजी	दादी,आजी	,,
५	पौत्रवधू	१–११ २–११	नतिनी, पतोहू	दुलही	नतिनी, पतोहू	,,
६	पति का पितामह	११– १	अजिया ससुर	बाबा	बाबा	
७	पति के पिता की माँ	११– २	अजिया सास	दादी	दादी	
८	प्रपौत्र	१–१२ २–१२	परनाती	बाबू या नाम से	परनाती	,,
९	प्रपौत्री	१–१३ २–१३	परनतिनी	मैंया या नाम से	परनतिनी	,,
१०	प्रपितामह	१२– १ १३– १	आजा, परदादा	आजा, बाबा	आजा,बाप के बाबा	,,
११	पितामह की माँ	१२– २ १३– २	आजी	आजी	आजी	,,
१२	प्रपौत्र-वधू	१–१४ २–१४	परनतिनी, पतोहू	कोई उदाहरण नहीं	कोई उदाहरण नहीं	,,
१३	पौत्र का पौत्र	१–१५ २–१५	सरनाती	,,	,,	,,
१४	पौत्र की पौत्री	१–१६ २–१६	सरनतिनी	,,	,,	,,

क्रम संख्या	सम्बन्ध	उल्लेख द्वारा का	नातेदारी का शब्द	सम्बोधन का शब्द	उल्लेख का शब्द	विशेष
१५	पितामह का पितामह	१५–१ } १६–१ }	परबाजा	,,	,,	,,
१६	प्रपितामह की माँ	१५– २ } १६– २ }	परबाजी	,,	,,	,,

टिप्पणी १. पौत्र और पौत्री को सामान्यतः नाती और नतिनी कहते हैं जो शब्द दौहित्र और दौहित्री के लिए प्रयोग किए जाते हैं। कुछ सूचनादाता ही बोता, बोती, परपुत्र और परपुत्री शब्दों से परिचित हैं। किन्तु प्रत्यक्ष सम्बोधन करने में उन्हें नाम से या बाबू और मैंया कह कर पुकारते हैं जिन शब्दों का प्रयोग पुत्र और पुत्री को भी सम्बोधित करने में किया जाता है।

२. दादा और आजा शब्द कुछ भ्रमोत्पादक हैं। आजकल बहुधा दादा शब्द पिता के लिए प्रयुक्त होता है यद्यपि कुछ सूचनादाताओं ने उसका उल्लेख पितामह के लिए किया। पिता की माँ को सदा दादी कहते हैं और प्रपितामह को परदादा कह सकते हैं। इसके विपरीत प्रपितामह को सदा आजा कहते हैं। किन्तु आजी कभी-कभी पिता की माँ के लिए कह सकते हैं।

(इ) क्षैतिज तथा सांपार्श्विक विस्तार वाले संयुक्त परिवार में नातेदारी
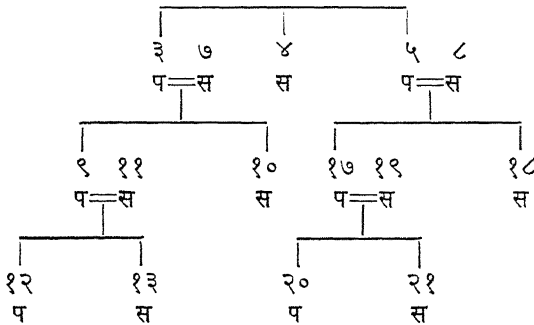
क्रम संख्या	सम्बन्ध	उल्लेख द्वारा का	नातेदारी का शब्द	सम्बोधन का शब्द	उल्लेख का शब्द	विशेष
१	पिता का अग्रज	१७– ३ १८– ३	बड़का बाप, बड़का दादा	बड़का बाप बड़का दादा, कभी-कभी चाचा या काका	बड़का बाप, बड़का दादा	पुरुष बोले या स्त्री
२	पिता के अग्रज की पत्नी	१७– ३ १८– ७	बड़की माई	बड़की माई	बड़की माई	,,
३	पिता की बड़ी/छोटी बहिन	१७– ४ ९– ४ १८– ४ १०– ४	फूआ	फूआ	फूआ	,,
४	अनुज का पुत्र	३–१७ ४–१७	भतीजा	बाबू या नाम से	भतीजा या छोट भाई के लड़का	,,
५	अनुज की पुत्री	३–१८ ४–१८	भतीजी	मैंया, बिटिया या नाम से	भतीजी या छोट भाई की लड़की	,,
६	देवर का पुत्र	७–१७	भतीजा	(४) के समान		
७	देवर की पुत्री	७–१८	भतीजी	(५) के समान		
८	पिता का अनुज	९– ५ १०– ५	चाचा, काका	चाचा, काका	चाचा, काका	,,
९	पिता के अनुज की पत्नी	९– ८ १०– ८	चाची, काकी	चाची, काकी	चाची, काकी	,,
१०	अग्रज का पुत्र	५– ९ ४– ९	भतीजा	बाबू या नाम से	भतीजा या भैया के लड़का	,,
११	अग्रज की पुत्री	५–१० ४–१०	भतीजी	बिटिया, मैंया या नाम से	भतीजी या भैया की लड़की	,,

क्रम संख्या	सम्बन्ध	उल्लेख द्वारा का	नातेदारी का शब्द	सम्बोधन का शब्द	उल्लेख का शब्द	विशेष
१२	पति के अग्रज का पुत्र	८– ९	भतीजा	(१०) के समान		
१३	पति के अग्रज की पुत्री	८–१०	भतीजी	(११) के समान		
१४	पिता के अग्रज/अनुज का पुत्र	१७– ९ ९–१७ १८– ९ १०–१७	चचेरा भाई	बड़े के लिए वही जो अपने अग्रज के लिए, छोटे के लिए वही जो अपने अनुज के लिए		,,
१५	पिता के अग्रज/अनुज की पुत्री	१७–१० ९–१८ १८–१० १०–१८	चचेरी बहिन	बड़ी के लिए वही जो अपनी बड़ी बहिन के लिए, छोटी के लिए वही जो अपनी छोटी बहिन के लिए		,,
१६	अग्रज/अनुज की पुत्रवधू	३–१९ ४–१९ ५–११ ४–११	चचेरी पतोह	दुलही	पतोहू	,,
१७	पति के अग्रज/अनुज की पुत्रवधू	८–११ ७–१९	,,	,,	,,	,,
१८	श्वसुर का अग्रज/अनुज	१९– ३ ११– ५	चचेरा ससुर	..	बड़का/छोट ससुर	
१९	श्वसुर के अग्रज/अनुज की पत्नी	१९– ७ ११– ८	चचेरी सास	..	बड़की/छोटकी सास	
२०	श्वसुर की बड़ी/छोटी बहिन	१९– ४ ११– ४	फुफेरा सास	अइया	फुफेरा सास	

क्रम संख्या	सम्बन्ध	उल्लेख द्वारा का	नातेदारी का शब्द	सम्बोधन का शब्द	उल्लेख का शब्द	विशेष
२१	पितामह का अग्रज/ अनुज	२०– ३ २१– ३ १२– ५ १३– ५	बाबा	बाबा	बड़के/ छोटके बाबा	,,
२२	पितामह के अग्रज/ अनुज की पत्नी	२०– ७ २१– ७ १२– ८ १३– ८	दादी	दादी	दादी	,,
२३	पितामह की बड़ी/ छोटी बहिन	२०– ४ २१– ४ १२– ४ १३– ४	दादी, फुफेरा दादी	..	दादी	,,
२४	अग्रज/ अनुज का पौत्र	५–१२ ४–१२ ३–२० ४–२०	नाती	बाबू या नाम से	नाती, भाई के नाती	,,
२५	अग्रज/ अनुज की पौत्री	५–१३ ४–१३ ३–२१ ४–२१	नतिनी	मैंया या नाम से	नतिनी, भाई की नतिनी	,,
२६	पति के भाई का पौत्र	७–२० ८–१२	नाती	(२४) के समान (२५) के समान		

नातेदारी के शब्दों के उपर्युक्त विश्लेषणात्मक अभिलेखों से नातेदारी की प्रणाली के कुछ महत्वपूर्ण लक्षणों का पता चल सकता है—

१. प्रथमतः आरम्भिक संयुक्त परिवार में नातेदारी के इन शब्दों द्वारा लिंग तथा वयस् के अनुसार सम्बन्धियों का बहुत सूक्ष्म भेद पता चलता है। संयुक्त परिवार के आधार पर एक ही परिवार के सदस्यों के रूप में इन सम्बन्धियों से परस्पर घनिष्ठ सम्पर्क रखने की आशा की जाती है, फलतः उनके सम्बोधन के शब्द जो 'नातेदारी के शब्दों' तथा 'उल्लेख के शब्दों' से भिन्न होते हैं उन दृढ़ बन्धनों को प्रकट करते हैं जिनका इनके बीच होना वांछनीय है। इस प्रकार किसी स्त्री के पति या बच्चे उसके सास-ससुर को जिन शब्दों से पुकारते हैं वह भी उन शब्दों का ही प्रयोग

करती है। उसका पति जिन स्नेहपूर्ण शब्दों से अपने अनुज और अपनी बड़ी या छोटी बहिनों को सम्बोधित करता है उन शब्दों से ही वह भी उन्हें सम्बोधित करती है यद्यपि वह पति के अग्रज तथा कुछ सीमा तक श्वसुर के प्रति भी मौनपूर्ण-सा व्यवहार रखती है। पति के अग्रज को सम्बोधित करने के लिए कोई शब्द नहीं है। इन अन्तरवैयक्तिक सम्बन्धों तथा नातेदारी के शब्दों के व्यवहार का पालन पारस्परिक है। दो भाइयों की पत्नियाँ परस्पर दीदी (बड़ी बहिन) के स्नेहपूर्ण शब्द से सम्बोधित करती हैं। अधिक स्नेह व्यक्त करने के हेतु वे क्रमशः बड़की और छोटकी शब्दों से परस्पर सम्बोधन करती हैं।

२. ऊर्ध्वाधर विस्तार वाले संयुक्त परिवार में भी वयस् तथा लिंग के भेद के वही सिद्धांत तथा स्नेह के सभी क्रम देखने में आते हैं। इस प्रकार अपने पुत्र और पुत्री को जिन स्नेहपूर्ण शब्दों (अर्थात् पुत्र के लिए नाम से या बाबू और पुत्री के लिए मैंया या दैया) से सम्बोधित किया जाता है उन शब्दों का ही प्रयोग पौत्र-पौत्री तथा प्रपौत्र-प्रपौत्री के लिए करते हैं और परिवार के सदस्यों को जिन शब्दों से पति सम्बोधित करता है उन शब्दों का ही प्रयोग उनके लिए पत्नी करती है। दो विशेष लक्षणों पर ध्यान देना उचित है—

(अ) पौत्र-पौत्री को नाती-नतिनी शब्दों से सम्बोधित करते हैं। इन शब्दों का ही प्रयोग दौहित्र-दौहित्री के लिए भी किया जाता है यद्यपि कुछ सूचनादाताओं ने साथ ही यह भी बतलाया कि पोता-पोती शब्द केवल पौत्र-पौत्री के लिए प्रयुक्त होते हैं।

(आ) 'स्व' से ऊपर या नीचे दूसरी पीढ़ी के बाद पीढ़ियों में भेद कम होता प्रतीत होता है। जैसा पहले कह चुके हैं पिता तथा पितामह के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्दों में बहुत विभ्रम है।

३. जहाँ तक क्षैतिज और सांपार्श्विक दिशाओं के विस्तार में संयुक्त परिवार के अन्दर और बाहर के नातेदारों का सम्बन्ध है, पीढ़ियों में नातेदारी के शब्दों का वर्गीकृत प्रयोग होता है। चचेरे भाई-बहिनों को अपने सगे भाई-बहिनों के समान ही सम्बोधित करते हैं यद्यपि 'चचेरा भाई' और 'चचेरी बहिन' स्पष्टतः सम्बन्ध-भेद को व्यक्त करते हैं और यह कि वे चाचा के समूह के सदस्य हैं। उससे दूर के पितृपक्ष के नातेदारों को सामान्यतः गोतिया (अर्थात् एक कुल के) अथवा गोतिया भाई और गोतिया बहिन कहते हैं।

पितृपक्ष के नातेदारों में विवाह अथवा किसी प्रकार का यौन सम्बन्ध वर्जित है क्योंकि कुल या गोतिया विशुद्ध रूप से एक बहिर्वैवाहिक समूह है।

(ग) 'नेपॉटिक' नातेदार और दामादों के द्वारा सम्बन्ध

'नेपॉटिक' नातेदारों के समूह को स्थानीय रूप से 'फुफेरार' या 'फुफेरा रिश्ता' शब्दों से व्यक्त किया जाता है जिसका अर्थ है फूफा (पिता का बहनोई) के परिवार के सदस्य अथवा वे सम्वन्धी जिनका सम्वन्ध फूफा को आधार मान कर स्थिर करते हैं। सामान्यतः परिवार के दामादों के द्वारा विभिन्न पीढ़ियों में इन नातेदारों का पता किया जा सकता है। व्यावहारिक उद्देश्य से यहाँ इन नातेदारों का मुख्यतः तीन समूहों में विश्लेषण और उल्लेख किया गया है और इन समूहों को क्रमशः (अ) 'स्व' की बूआ, (आ) उसकी अपनी बहिनों और (इ) उसकी कन्याओं के द्वारा स्थिर किया गया है। उसी प्रकार के सम्बन्ध 'स्व' की पौत्रियों के पतियों, उसके पितामह की बहिनों के पतियों आदि के द्वारा भी स्थिर किए जा सकते हैं। परन्तु व्यवहार में लोग ऐसे सम्वन्धियों से सम्पर्क नहीं रखते जिनका पता 'स्व' से दो या उससे अधिक पीढ़ियों जितनी दूर की कड़ी से करना पड़ता है।

(अ) पति के बहनोई के द्वारा सम्बन्ध—'फुफेरा रिश्ता'
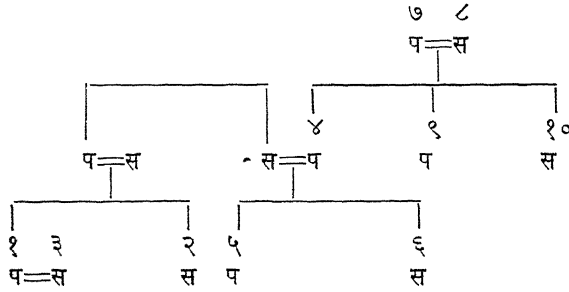
क्रम संख्या	सम्बन्ध	उल्लेख द्वारा का	नातेदारी का शब्द	सम्बोधन का शब्द	उल्लेख का शब्द	विशेष
१	पिता का बहनोई	१– ४ २– ४	फूफा	फूफा	फूफा	पुरुष बोले या स्त्री
२	साले का पुत्र	४– १	भतीजा	बाबू या नाम से	भतीजा	
३	साले की पुत्री	४– २	भतीजी	दैया, मैंया या नाम से	भतीजी	

क्रम संख्या	सम्वन्ध	उल्लेख द्वारा का	नातेदारी का शब्द	सम्वोधन का शब्द	उल्लेख का शब्द	विशेष
४	पति के पिता का बहनोई	३ –४	फुफुआ ससुर	फूफाजी	फुफुआ ससुर	
५	साले की पुत्रवधू	४– ३	पतोहू	दुलही	साले की दुलही	
६	फूआ का पुत्र	१– ५ २– ५	फुफेरा भाई	बडे को अग्रज की भाँति, छोटे को अनुज की भाँति	फुफेरा भाई	,,
७	फूआ की पुत्री	१– ६ २– ६	फुफेरी बहिन	वड़ी को वड़ी बहिन की भाँति, छोटी को छोटी बहिन की भाँति	फुफेरी बहिन	,,
८	फूफा का पिता	१– ७ २– ७	बाबा	वाबा	वावा	,,
९	फूफा की माँ	१– ८ २– ८	दादी	दादी	फुफेरी दादी	,,
१०	फूफा का भाई	१– ९ २– ९	फूफा	फूफा	फूफा का भाई या फूफा	,,
११	फूफा की बहिन	१–१० २–१०	कोई शब्द नहीं	कोई शब्द नहीं	फूफा की बहिन †	,,

(आ) बहनोई के द्वारा सम्बन्ध

```
                                                        ७   ८
                                                        प═स
                                                         |
 ┌──────────┬──────┬───────┬─────────┐          ┌────────┼────────┐
 |          |      |       |         |          |        |        |
११ १५       १३             १२ १६      १४          ४        ९        १०
प═स         स      अ       प═स        स       अ═प        प        स
                                                 |
                                  ┌──────────────┴──────┐
                                  |                     |
                                 ५ १७                  ६ १८
                                 प═स                   स═प
```
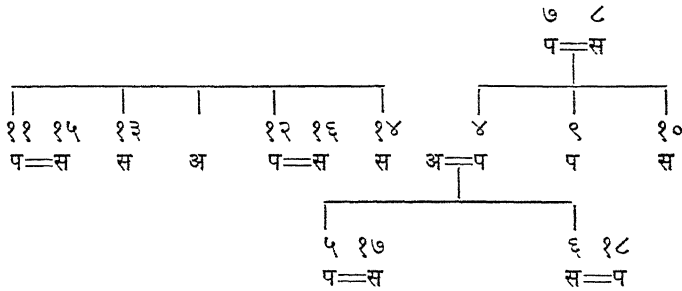
† कुछ सूचनादाताओं के अनसार फूफा के समूह से सम्वन्ध उस तक ही सीमित रहते हैं। उसके पिता अथवा बहिन से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। यद्यपि सुविधा के लिए उसके भाई को भी फूफा कह सकते हैं, वह 'स्व' के घर नहीं जाता।

क्रम संख्या	सम्बन्ध	उल्लेख द्वारा का	नातेदारी का शब्द	सम्बोधन का शब्द	उल्लेख का शब्द	विशेष
१	छोटी बहिन का पति	११– ४ १३– ४	बहनोई	नाम से या बाबू या छोटका पहुना	छोटका बहनोई	पुरुष बोले या स्त्री
२	बड़ी बहिन का पति	१२– ४ १४– ४	बहनोई	बहनोई साहेब या पहुना	बहनोई	,,
३	पति की छोटी बहिन का पति	१५– ४	ननदोई, ननदोसी	बाबू	छोटके (या मझले आदि) नन-दोसी	
४	पति की बड़ी बहिन का पति	१६– ४	ननदोई, ननदोसी	अमुक के बाप या अमुक गाँव के पहुना	बड़के (या मझले आदि) ननदोसी	
५	बड़ी/छोटी बहिन का पुत्र	११– ५ १२– ५ १३– ५ १४– ५	भानजा, भैने	बाबू या नाम से	भानजा	,,
६	बड़ी/छोटी बहिन की पुत्री	११– ६ १२– ६ १३– ६ १४– ६	भानजी, भैने	बिटिया या नाम से	भानजी	,,
७	पति की बड़ी/छोटी बहिन का पुत्र	१५– ५ १६– ५	भानजा	(५) के समान		
८	पति की बड़ी/छोटी बहिन की पुत्री	१५– ६ १६– ६	भानजी	(६) के समान		
९	बहिन की पुत्रवधू	११–१७ १२–१७ १३–१७ १४–१७	बहिन पतोहू	दुलही	पतोहू, बहिन पतोहू	,,

क्रम संख्या	सम्बन्ध	उल्लेख द्वारा का	नातेदारी का शब्द	सम्बोधन का शब्द	उल्लेख का शब्द	विशेष
१०	बहिन का दामाद	११–१८ १२–१८ १३–१८ १४–१८	बहिन दमाद	बाबू या नाम से	दमाद, बहिन दमाद	,,
११	बहिन का श्वसुर	११– ७ १२– ७ १३– ७ १४– ७	ससुर	उसी प्रकार जैसे बहिन श्वसुर को सम्बोधित करती है		,,
१२	बहिन की सास	११– ८ १२– ८ १३– ८ १४– ८	सास	उसी प्रकार जैसे बहिन सास को सम्बोधित करती है		,,
१३	बहनोई का भाई	११– ९ १३– ९	कोई शब्द नहीं	बड़े को पहुना साहेब, छोटे को पहुना	बहनोई के भाई	,,
१४	बहनोई की बहिन	११–१० १३–१०	,,	पहुनी	बहनोई की बहिन	,,

(इ) दामाद के द्वारा सम्बन्ध
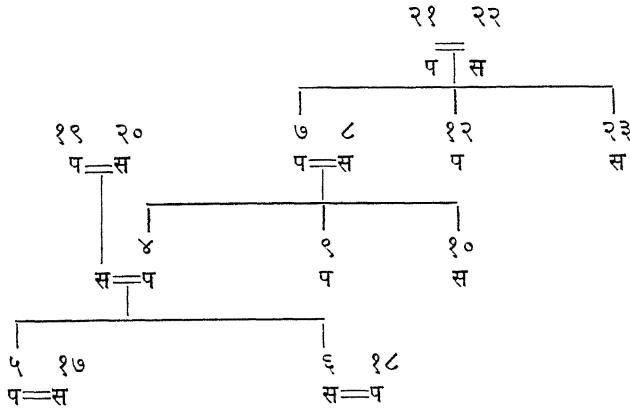
क्रम संख्या	सम्बन्ध	उल्लेख द्वारा का	नातेदारी का शब्द	सम्बोधन का शब्द	उल्लेख का शब्द	विशेष
१	दामाद	१९– ४ २०– ४	दमाद	बाबू, पहुना	दमाद या अमुक गाँव के पहुना	पुरुष बोले या स्त्री
२	दौहित्र	१९– ५ २०– ५	नाती	बाबू या नाम से	नाती	,,
३	दौहित्री	१९– ६ २०– ६	नतिनी	मैंया, दैया या नाम से	नतिनी	,,
४	दौहित्रवधू	१९–१७ २०–१७	नतिनी पतोहू	पौत्रवध के समान		,,
५	दौहित्री का पति	१९–१८ २०–१८	नतिनी दमाद	पौत्री के पति के समान		,,
६	दामाद का भाई	१९– ९ २०– ९	दमाद	(१) के समान		,,
७	दामाद की बहिन	१९–१० २०–१०	पतोहू	पतोहिया	दमाद की बहिन	,,
८	दामाद का पिता	१९– ७ २०– ७	समधी	समधी साहेब	समधी	,,
९	दामाद की माँ	१९– ८ २०– ८	समध्नि	समधिन साहेब	समधिन	,,
१०	दामाद का पितामह	१९–२१ २०–२१	कोई शब्द नहीं	ब्राह्मणों में तिवारी जी या पण्डितजी आदि, क्षत्रियों में ठाकुर साहेब आदि		,,
११	दामाद के पिता का भाई	१९–२२ २०–२२	समधी	(८) के समान		,,
१२	दामाद की फूआ	१९–२३ २०–२३	समधिन	(९) के समान		,,

निश्चित शब्दों के साथ नातेदारी के सम्बन्ध प्रायः उन व्यक्तियों से ही माने जाते हैं जो 'स्व' से केवल एक-दो पीढ़ी दूर होते हैं। 'नेपॉटिक' नातेदारों के लिए प्रयुक्त होने वाले नातेदारी के अनेक शब्द, जिनका उल्लेख ऊपर हुआ है, शिष्टाचार की

कुछ सीमाओं का संकेत करते हैं। 'पहुना' और 'पहुनी' सदृश सम्बोधन के शब्दों का मात्र अर्थ है पुरुष तथा स्त्री अतिथि। सामान्यतः इन शब्दों से लिंगभेद व्यक्त होता है किन्तु वयस्-भेद के विषय में यह बात सदा लागू नहीं होती।

(घ) 'एवंकुलर' नातेदार और पुत्रवधुओं के द्वारा सम्बन्ध

'एवंकुलर' नातेदारों के समूह को स्थानीय रूप से 'ननिहार', 'ममेरार' या 'ममेरा रिश्ता' शब्दों से व्यक्त किया जाता है जिसका अर्थ है नाना के परिवार के सदस्य, मामा के परिवार के सदस्य और मामा के द्वारा सम्बन्धित सम्बन्धी। 'ममेरा रिश्ते' को, जिसमें परिवार की विभिन्न पीढ़ियों के सदस्य आते हैं, इकट्ठा ले सकते हैं और उसे 'परिवार की पुत्रवधुओं के द्वारा सम्बन्धित सम्बन्धी' कह सकते हैं, भले ही वे सम्बन्धी किसी पीढ़ी के हों। हमारे वर्तमान उद्देश्य के निमित्त इन सम्बन्धों का विश्लेषण और उल्लेख तीन समूहों में किया गया है जिन्हें क्रमशः (अ) 'स्व' की माँ (अर्थात् उसकी अपनी ममेरार, मामा के द्वारा), (आ) उसकी पत्नी (अर्थात् उसके पुत्र की ममेरार) और (इ) उसकी पुत्रवधुओं (अर्थात् उसके पौत्रों की ममेरार) के द्वारा स्थिर किया गया है।

(अ) माँ या मामा के द्वारा सम्बन्ध

क्रम संख्या	सम्बन्ध	उल्लेख द्वारा का	नातेदारी का शब्द	सम्बोधन का शब्द	उल्लेख का शब्द	विशेष
१	माँ का अग्रज/ अनुज	१–१० १–११ २–१० २–११	मामा	मामा	(बड़के, मझले आदि) मामा	पुरुष बोले या स्त्री
२	माँ के अग्रज/ अनुज की पत्नी	१–१२ २–१२	मामी	मामी	मामी	,,

क्रम संख्या	सम्बन्ध	उल्लेख द्वारा का	नातेदारी का शब्द	सम्बोधन का शब्द	उल्लेख का शब्द	विशेष
३	पति की माँ का अग्रज/अनुज	३–१० ३–११	ममिया ससुर	मामाजी	ममिया ससुर	
४	पति की माँ के भाई की पत्नी	३–१२	ममिया सास	मामीजी	ममिया सास	
५	मातामह	१– ५ २– ५	नाना	नाना	नाना	,,
६	मातामही	१– ६ २– ६	नानी	नानी	नानी	,,
७	पति का नाना	३– ५	नाना	नाना	नाना	
८	पति की नानी	३– ६	नानी	नानी	नानी	
९	नाना का भाई	१– ७ २– ७	नाना	नाना	नाना	,,
१०	नाना के भाई की पत्नी	१– ८ २– ८	नानी	नानी	नानी	,,
११	नाना की बहिन	१– ९ २– ९	फुफेरी नानी	नानी	फुफेरी नानी, माई की फआ	,,
१२	मामा का पुत्र	१–१३ २–१३	ममेरा भाई	बड़े को भैया, छोटे को नाम से या बाबू	ममेरा भाई	,,
१३	मामा की पुत्री	१–१४ २–१४	ममेरी बहिन	बड़ी को दीदी, बहिन; छोटी को मैंया, दैया	बहिन	,,

(आ) पत्नी अथवा उसके पक्ष के द्वारा सम्बन्ध
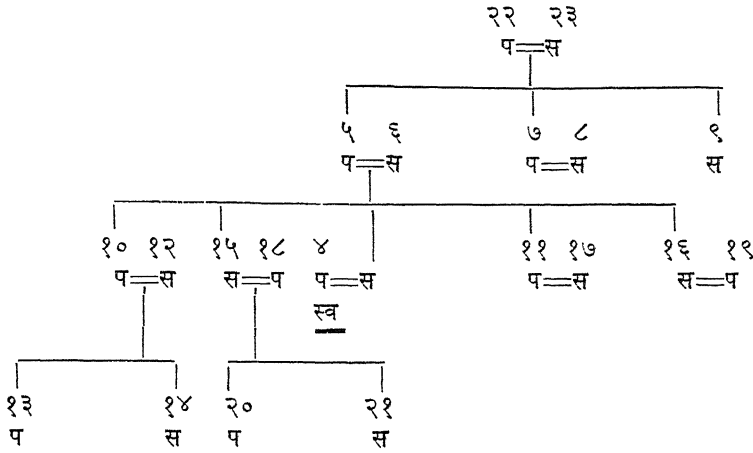
क्रम संख्या	सम्बन्ध	उल्लेख द्वारा का	नातेदारी का शब्द	सम्बोधन का शब्द	उल्लेख का शब्द	विशेष
१	पत्नी का पिता	४– ५	ससुर	पिताजी, बुढ़ऊ,	ससुर	
२	पत्नी की माँ	४– ६	सास	माई, अइया	सास	
३	पत्नी का अग्रज	४–१८	जेठ साला	पहुना	जेठ साला, बड़ा साला	कम दिल्लगी
४	पत्नी का अनुज	४–११	साला	नाम से	छोट साला	अधिक दिल्लगी
५	पत्नी के अग्रज की पत्नी	४–१२	सरहज	कोई शब्द नहीं किन्तु सुनो, आदि	बड़की सरहज	
६	पत्नी के अनुज की पत्नी	४–१७	,,	,,	छोटकी सरहज	
७	साले का पुत्र	४–१३	भतीजा	बाबू या नाम से	भतीजा	पत्नी द्वारा प्रयुक्त शब्द के अनुसार
८	साले की पुत्री	४–१४	भतीजी	दैया, मैंया या नाम से	भतीजी	

क्रम संख्या	सम्बन्ध	उल्लेख द्वारा का	नातेदारी का शब्द	सम्वोधन का शब्द	उल्लेख का शब्द	विशेष
९	पत्नी की वड़ी बहिन	४–१५	जेठ सारी, जेठ साली	कोई शब्द नहीं किन्तु सुनो	जेठ सारी, जेठ साली	स्पर्श नहीं किन्तु बात करसकतेहैं
१०	पत्नी की छोटी वहिन	४–१६	साली	,,	साली	अधिक दिल्लगी
११	पत्नी की वड़ी वहिन का पति	४–१८	साढू	साढू साहेब	साढू	दिल्लगी नहीं
१२	पत्नी की छोटी बहिन का पति	४–१९	,,	नाम से, कभी-कभी साढू साहेब	,,	अधिक दिल्लगी
१३	साली का पुत्र	४–२०	भतीजा	(७) के समान		
१४	साली की पुत्री	४–२१	भतीजी	(८) के समान		
१५	पत्नी के पिता का भाई	४– ७	ससुर	ससुरजी	(बड़के आदि) ससुर	
१६	पत्नी के पिता के भाई की पत्नी	४– ८	सास	सास	(बड़की आदि) सास	
१७	पत्नी के पिता की बहिन	४– ९	फुफुआ सास	फूआ	फुफुआ सास	
१८	पत्नी का पितामह	४–२२	अजिया ससुर	बाबाजी	अजिया ससुर	
१९	पत्नी की पितामही	४–२३	अजिया सास	दादीजी	अजिया सास	

(इ) पुत्रवधू के द्वारा सम्बन्ध
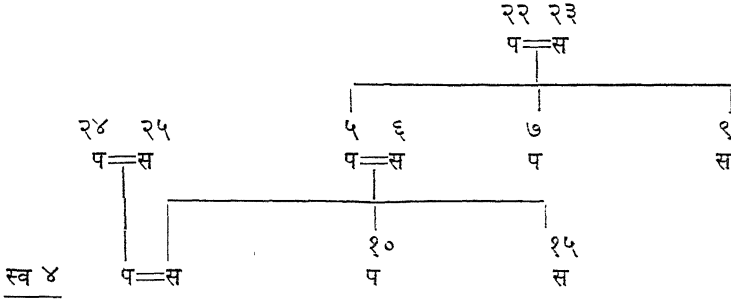
क्रम संख्या	सम्बन्ध	उल्लेख द्वारा का	नातेदारी का शब्द	सम्बोधन का शब्द	उल्लेख का शब्द	विशेष
१	पुत्रवधू का पिता	२४– ५ २५–५	समधी	समधी साहेब	समधी	पुरुष वोले या स्त्री
२	पुत्रवधू की माँ	२४– ६ २५– ६	समधिन	समधिन साहेब	समधिन	,,
३	पुत्रवधू के पिता का भाई	२४– ७ २५– ७	समधी	(१) के समान		,,
४	पुत्रवधू के पिता की बहिन	२४– ९ २५– ९	समधिन	(२) के समान		,,
५	पुत्रवधू का भाई	२४–१० २५–१०	दमाद	नाम से या बाबू	दमाद	,,
६	पुत्रवधू की बहिन	२४–१५ २५–१५	पतोहू	पतोहिया	पतोहू	,,
७	पुत्रवधू का पितामह	२४–२२ २५–२२	कोई शब्द नहीं	कोई शब्द नहीं किन्तु ब्राह्मणों में पंडित जी या तिवारी जी आदि, क्षत्रियों में ठाकुर साहेब आदि	समधी के बाप	,,
८	पुत्रवधू की पितामही	२४–२३ २५–२३	,,	कोई शब्द नहीं	समधी की माई	,,

विभिन्न पीढ़ियों में 'एवंकुलर' नातेदारों के लिए नातेदारी के जिन शब्दों का विश्लेषण ऊपर किया गया है उनसे घनिष्ठता तथा शिष्टाचार की सीमाओं का पता चलता है। 'स्व' की अपनी पीढ़ी के पत्नीपक्ष के सम्बन्धियों के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्दों के साथ-साथ उचित हँसी-दिल्लगी के सम्बन्ध प्रचलित हैं।

पुत्रवधू के द्वारा स्थापित सम्बन्धों के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्दों में ध्यान देने योग्य बात यह है कि पुत्रवधू के भाई को 'दमाद' कहते हैं। यह प्रथा विनिमय द्वारा विवाह की अनुमति अथवा अस्तित्व की ओर इंगित करती है।

'स्व' से केवल एक-दो पीढ़ी दूर व्यक्तियों के लिए नातेदारी के निश्चित शब्द उपलब्ध हैं।

(ङ) मौसी के द्वारा सम्बन्ध (मौसेरा रिश्ता)

मौसा के द्वारा स्थापित सम्बन्धों के समूह को स्थानीय रूप से 'मौसेरा रिश्ता' शब्द द्वारा व्यक्त किया जाता है। मौसी और मौसा से कुछ महत्वपूर्ण नातेदारी के कार्य सम्बन्धित हैं। अतएव नातेदारों के इस समूह का समुचित आदर अपेक्षित है।
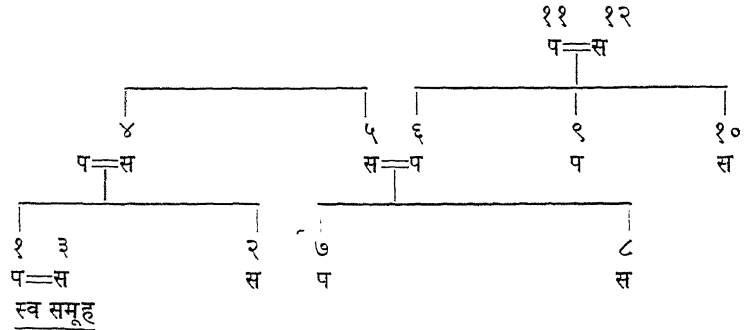
क्रम संख्या	सम्बन्ध	उल्लेख द्वारा का	नातेदारी का शब्द	सम्बोधन का शब्द	उल्लेख का शब्द	विशेष
१	माँ की बड़ी/छोटी बहिन	१– ५, ७– ४, २– ५, ८– ४	मौसी	मौसी	मौसी	पुरुष बोले या स्त्री
२	मौसी का पति	१– ६, २– ६	मौसा	मौसा	मौसा	,,
३	बड़ी/छोटी बहिन का पुत्र	५– १, ४– ७	भतीजा	नाम से या बाबू	भतीजा	जब स्त्री बोले

क्रम संख्या	सम्वन्ध	उल्लेख द्वारा का	नातेदारी का शब्द	सम्बोधन का शब्द	उल्लेख का शब्द	विशेष
४	बड़ी/छोटी बहिन की पुत्री	५– २ ४– ८	भतीजी	नाम से या मैंया, दैया	भतीजी	,,
५	साली का पुत्र	६– १	भतीजा	(३) के समान		
६	साली की पुत्री	६– २	भतीजी	(४) के समान		
७	मौसी का पुत्र	१– ७ ७– १ २– ७ ८– १	मौसेरा भाई	बड़े को भैया, छोटे को बाबू या नाम से	मौसेरा भाई	पुरुष बोले या स्त्री
८	मौसी की पुत्री	१– ८ ७– २ २– ८ ८– २	मौसेरी वहिन	बड़ी को बहिन, छोटी को मैंया, दैया या नाम से	दीदी, मौसेरी बहिन	,,
९	पति की मौसी	३– ५	मौसेरी सास, मौसिया सास	मौसी	मौसिया सास	
१०	पति का मौसा	३– ६	मौसेरा ससुर, मौसिया ससुर	मौसा	मौसिया ससुर	
११	मौसा का भाई	१– ९ २– ९	कोई शब्द नहीं			,,
१२	मौसा की बहिन	१–१० २–१०	,,			,,
१३	मौसा का पिता	१–११ २–११	,,			,,
१४	मौसा की माँ	१–१२ २–१२	,,			,,

जिन मौसेरे सम्वन्धियों को मानते हैं और जिनके लिए नातेदारी के निश्चित शब्द हैं वे मौसा के नाभिकीय परिवार अर्थात् मौसा, मौसी और उनकी सन्तान तक सीमित होते हैं। मौसा के पिता, भाई या बहिन के लिए कोई शब्द नहीं हैं।

(च) अन्य सम्बन्ध

घनिष्ठ सम्बन्धों के जिन उपर्युक्त पाँच समूहों का नातेदारी के विस्तार के आधार पर विश्लेषण किया गया है उनके अतिरिक्त कुछ अप्रत्यक्ष अथवा दूर के नातेदार भी सामान्यत: माने जाते हैं। नातेदारी के विस्तार की उन रेखाओं पर ही (अर्थात् फुफेरा, ममेरा और मौसेरा) पिता, माता अथवा पत्नी के द्वारा एक ही सीढ़ी आगे चल कर इन नातेदारों का पता कर सकते हैं। इस प्रकार दूर के ममेरे सम्बन्धियों का पता पितामही (या पितामही के भाई), मातामही (या मातामही के भाई) और पत्नी की माँ (या पत्नी की माँ के भाई) के द्वारा कर सकते हैं जो क्रमश: 'स्व' के पिता, माता और पत्नी की ममेरार में आते हैं।

पिछली तालिकाओं में हम पितामह की बहिन, मातामह की बहिन और पत्नी के पिता की बहिन के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्दों को दे चुके हैं। ये दूर के फुफेरे सम्बन्धी हैं। अतएव दूर के ममेरे और फुफेरे सम्बन्धियों के लिए प्रत्युक्त होने वाले शब्दों को एक स्थान पर एक सरल तालिका में नीचे दिया जा रहा है—

क्रम संख्या	सम्बन्ध	नातेदारी का शब्द	सम्बोधन का शब्द	उल्लेख का शब्द	विशेष
१	पिता का मातामह	नाना	नाना	बाप के नाना	पुरुष बोले या स्त्री
२	पिता की मातामही	नानी	नानी	बाप के नानी	
३	पिता का मामा	ममिया बाबा	बाबा	बाप के मामा	
४	पिता की मामी	ममिया दादी	दादी	बाप के मामी	
५	पिता की मौसी	मौसेरी दादी	दादी	बाप के मौसी	
६	पिता का मौसा	मौसेरा बाबा	बाबा	बाप के मौसा	
७	माँ का मातामह	नाना	नाना	माई के नाना	
८	माँ की मातामही	नानी	नानी	माई के नानी	
९	माँ का मामा	ममिया नाना	नाना	माई के मामा	
१०	माँ की मामी	ममिया नानी	नानी	माई के मामी	
११	माँ की मौसी	मौसेरी नानी	नानी	माई के मौसी	
१२	माँ का मौसा	मौसेरा नाना	नाना	माई के मौसा	
१३	पत्नी का मातामह	ननिया ससुर	नाना	औरत के नाना	
१४	पत्नी की मातामही	ननिया सास	नानी	औरत के नानी	
१५	पत्नी का मामा	ममिया ससुर	मामाजी	औरत के मामा, ममिया ससुर	

क्रम संख्या	सम्वन्ध	उल्लेख द्वारा का	नातेदारी का शव्द	सम्बोधन का शव्द	उल्लेख का विशेष शव्द
१६	पत्नी की मामी		ममिया सास	मामीजी	औरत के मामी, ममिया सास
१७	पत्नी की मौसी		मौसेरी सास	मौसी	औरत के मौसी, मौसेरी सास
१८	पत्नी का मौसा		मौसेरा ससुर	मौसा	औरत के मौसा, मौसेरा ससुर

२. ब्राह्मणों और क्षत्रियों में वैवाहिक प्रथायें

चितौरा के विभिन्न समुदायों में वैवाहिक प्रथाओं के तुलनात्मक अध्ययन के लिए एक आधार स्थिर करने के हेतु गाँव के ब्राह्मणों और क्षत्रियों की वैवाहिक प्रथाओं का एक परीक्षणात्मक सर्वेक्षण किया गया।

(क) दोनों समुदायों में विवाह के प्रकार और रूप

(अ) 'बियाह' ही विवाह का एकमात्र प्रकार है जिसकी सामान्य अनुमति है और पालन होता है। इसमें किसी पुरुष (कुँआरा या अन्यथा) और किसी कुँआरी लड़की का विवाह पहले से स्थिर किया जाता है।

(आ) विनिमय द्वारा विवाह स्थिर किए जाने वाले विवाह का एक प्रकार है। सामान्यतः इसे स्वीकार करते हैं और इसकी अनुमति है किन्तु प्रायः ऐसा विवाह होता नहीं।

(इ) जिन अवस्थाओं में किसी पुरुष की पहली पत्नी से कोई लड़का न हो उनमें बहुविवाह की अनुमति है। बहुत ही कम ऐसे विवाह देखने में आते हैं।

(ख) दोनों समुदायों में विवाह की कार्यवाहियाँ

(अ) अवस्थायें: 'बियाह' की तीन निश्चित अवस्थायें हैं–शादी, गौना और दोंगा।

(आ) ऋतुयें: अधिकतर फागुन और बैसाख में शादी होती है, अपेक्षाकृत माघ, जेठ और आषाढ़ में कम। गौना और दोंगा दोनों अगहन, फागुन और बैसाख में होते हैं किन्तु क्षत्रियों में कार्तिक और माघ में भी हो सकते हैं।

(इ) वधू का निवास:

क्षत्रिय	ब्राह्मण
१. शादी के संस्कार के बाद, जो वधू के पिता के घर सम्पन्न होता है, वधू अपने पिता के घर पर ही रह सकती है या वर के घर जा सकती है और वहाँ कुछ महीने तक रह सकती है। कुछ अवस्थाओं में जब शादी जेठ या आषाढ़ में हो तो वह वर के घर पर वर्षा के अन्त तक या होली के बिलकुल पहले फागुन मास तक रह सकती है। किन्तु गौना के पूर्व उसे 'ससुरार' की होली देखने की अनुमति नहीं होती।	१. शादी के बाद वधू वर के घर कम से कम १६ दिन के लिए जाती है। वह वहाँ पर चार मास या होली (फागुन मास में) के कुछ दिन पूर्व तक रह सकती है।
२. गौना के बाद कम से कम ५ दिन वह पति के घर रहती है। वह १$\frac{1}{2}$ मास या अधिक काल तक रह सकती है।	२. गौना के बाद, यदि वधू बहुत छोटी हो तो पति के घर कुछ दिन (कम से कम ५) रहती है, यदि पर्याप्त रूप से बड़ी हो तो कुछ मास तक या एक वर्ष भी—दोंगा सम्पन्न होने की निश्चित तिथि के कुछ दिन पूर्व तक।
३. दोंगा के बाद वह स्थायी रूप से निवासस्थान बदल कर पति के घर रहने लगती है।	३. दोंगा के बाद वह पति के घर स्थायी रूप से रहती है।

(ग) वधूमूल्य या दहेज

दोनों समुदायों में पाए जाने वाले समान लक्षण—

१. नियमतः दहेज दिया जाता है और वधूमूल्य की प्रथा बिलकुल नहीं है। दहेज में द्रव्य और वस्तुयें दोनों होती हैं। नक़द तिलक प्रायः १०० से ५०० रु. के बीच होता है। यह कम से कम ३० या ५० रु. हो सकता है और अधिक से अधिक १,००० रु. या अधिक।

तिलक के कुछ उदाहरण—

क्षत्रियों में	ब्राह्मणों में
(अ) जवाहर सिंह के विवाह में १५० रु.	(अ) वंसी तिवारी के विवाह में ५०० रु.
(आ) उसके अनुज के विवाह में २०० रु.	(आ) उसके अनुज के विवाह में ५० रु. (यह राशि कम है क्योंकि कन्या का पिता उसे चाहता है।*)
	(इ) बैजनाथ चौबे की कन्या शीतला के विवाह में १,००० रु.

वस्तु-रूप में तिलक इन वस्तुओं का दिया जाता है—

(अ) वस्त्र—प्राय: श्वेत वस्त्र का एक टुकड़ा (३६ गज़) और वर के लिए कुर्ता-धोती का एक जोड़ा

(आ) थोड़ी-थोड़ी मात्रा में धान, हल्दी, पान, सुपाड़ी और कुछ सेर मिठाइयाँ

(इ) पीतल के ५ बर्तन।

२. प्राय: वरपक्ष भी कुछ उपहार देता है जिसमें आभूपण, वस्त्र और मिठाइयाँ होती हैं।

३. गौना में वर वधू के घर कुछ उपहार लाता है जिसमें मिठाइयाँ और परिवार की तथा श्वसुर के गोतियों में वधू से बड़ी हर स्त्री के लिए एक साड़ी होती है। वापसी में 'विदाई' के अवसर पर उसे उसकी पत्नी से बड़ी स्त्रियों से कुछ उपहार और १०–१५ रु. नक़द मिल सकते हैं।

४. दोंगा में वर भी वस्त्रों तथा मिठाइयों का उपहार देता है।

(घ) विवाह का वयस्

क्षत्रिय	ब्राह्मण
(अ) शादी के लिए—	
१. वयस् की निचली सीमा–लड़की के लिए ७ या ८ वर्ष और लड़के के लिए ८ या ९	१. वयस् की निचली सीमा–लड़की के लिए लगभग ७ या ८ वर्ष और लड़के के लिए १० या ११

* यह तथ्य असंगत-सा प्रतीत होता है। ऐसा जान-बूझ कर लिखा गया अथवा मूल पाण्डुलिपि के टाइप करने में भूल हुई इसका ठीक पता न किया जा सका।—अनुवादक

क्षत्रिय	ब्राह्मण
२. वयस् की ऊपरी सीमा—लड़की के लिए लगभग १२ वर्ष और लड़के के प्रथम विवाह के लिए लगभग १८ वर्ष	२. लड़की के लिए ऊपरी सीमा लगभग १५ या १६ वर्ष और लड़के के लिए २५ तक। परन्तु अपवादस्वरूप उसका वयस् ३५ के लगभग हो सकता है।
(आ) गौना और दोंगा के लिए—	
१. लड़की के बड़ी होने पर शादी के अगले वर्ष गौना हो सकता है और दोंगा उसकी अगली ऋतु में।	१. शादी के बाद ही (उसी वर्ष) उचित ऋतु में गौना हो सकता है और दोंगा उसके अगले वर्ष होता है।
२. लड़की के बहुत छोटी होने पर गौना ३ वर्ष या अधिक के लिए स्थगित हो सकता है।	२. लड़की के बहुत छोटी होने पर शादी के बाद तीसरे या पाँचवें वर्ष में गौना हो सकता है किन्तु दूसरे या चौथे वर्ष में नहीं।
(इ) वयस् का अन्तर—	
१. प्रायः वर वधू से दो या चार वर्ष बड़ा होता है।	१. प्रायः लड़की लड़के से ३ या ४ वर्ष छोटी होती है।
२. बहुत कम अवस्थाओं में वह ८ या १० वर्ष बड़ा हो सकता है।	२. अपवादस्वरूप वर-वधू समवयस्क हो सकते हैं यथा १९५० में फूलमती और भिखारी मिश्र का विवाह हुआ जब दोनों की अवस्था १२ वर्ष की थी।

(ङ) विधवा-पुनर्विवाह तथा उसका भरण-पोषण

(अ) विधवा-पुनर्विवाह नहीं होता।	(अ) विधवा-पुनर्विवाह नहीं होता।
(आ) विधवा का भरण-पोषण दोनों पक्ष (पिता तथा पति के) करते हैं, चाहे विधवा की सन्तान हो या नहीं।	(आ) आशा की जाती है कि निस्सन्तान विधवा अपने पिता के घर लौट जायगी।

(च) तलाक़

वर्जित

वर्जित

(छ) वैवाहिक नियम

(अ) स्थानीय क्षत्रियों में जाति-अन्त-विवाह—

जाति-अन्तर्विवाह ही का नियम है किन्तु इसके उल्लंघन का एक-मात्र उदाहरण गोमती सिंह (३५) का है जो १९५१ से निस्सन्तान विधुर था। १९५४ से उसने एक अहीर स्त्री को रख लिया है। आज कल वह रॉबर्ट्सगंज के तहसील कार्यालय में चपरासी के पद पर नियुक्त होने के कारण चितौरा से बाहर है। परन्तु वह अहीर स्त्री गाँव में उसके मकान में रहती है।

(अ) स्थानीय ब्राह्मणों में जाति-अन्तर्विवाह—

ब्राह्मणों में उनकी श्रेणी या 'बिस्वा' में कोई भेदभाव नहीं है। अन्तर्वैवाहिक नियम के उल्लंघन का एक उदाहरण है। बहुत पहले कोदई तिवारी ने एक अहीर स्त्री को रख लिया था जब उसकी पत्नी जीवित ही थी। उसे वहिष्कृत कर दिया गया किन्तु बाद में इस आधार पर वापस ले लिया गया कि उसने उस अहीर स्त्री से भोजन नहीं ग्रहण किया था। अब वह एक सम्मानित वृद्ध ब्राह्मण है और लोग उसे पंडित जी कहते हैं।

उससे तथा उसकी अहीर स्त्री से उत्पन्न पुत्र पशुपति का विवाह न हो सका। वह २९ वर्ष की आयु तक जीवित रहा परन्तु हाल (अक्तूबर १९५६) में उसने अपने बड़े भाई कार्तिक (कोदई की प्रथम पत्नी से उत्पन्न) की पत्नी की हत्या करने के उपरान्त गले में रस्सी लगा कर आत्महत्या कर ली।

(आ) गोत्र-बहिर्विवाह

(आ) गोत्र-बहिर्विवाह

अन्तरविवाह के हेतु गोत्र-बहिर्विवाह वर्जित है।

(इ) सभी चचेरे, मौसेरे, ममेरे, फुफेरे भाई-बहिनों में विवाह का निषेध—कोई पुरुष अपनी ममेरी, फुफेरी या मौसेरी बहिन से विवाह नहीं कर सकता। इसी प्रकार के निषेध नाना के भाई की पौत्री के लिए हैं किन्तु फूफा के भाई की लड़की अथवा मौसा के भाई की लड़की के लिए नहीं।	(इ) सभी चचेरे, मौसेरे, ममेरे, फुफेरे भाई-बहिनों में विवाह का निषेध—बैजनाथ चौबे के अनुसार कोई पुरुष अपने नाना के भाई की पौत्री से विवाह नहीं कर सकता। किन्तु गाँव में किसी के नाना के भाई की पौत्री के होने का उदाहरण ही नहीं है।

चितौरा में नातेदारी की तथा वैवाहिक प्रथाओं के तुलनात्मक न्यास

चितौरा के विभिन्न समुदायों में नातेदारी की तथा वैवाहिक प्रथाओं के तुलनात्मक न्यास प्रथमतः तीन जाति / कबायली समूहों यथा माझी, चेरो और चमार से एकत्रित किए गए हैं। उन तीनों में प्रत्येक का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है—

१. चितौरा के माझियों में नातेदारी की तथा वैवाहिक प्रथायें

इस क्षेत्र के निवासियों में सबसे महत्वपूर्ण कबायली समूह माझियों का है। वे बहुत पहले चितौरा गाँव में बसे और इस समय उनकी संख्या ११० से अधिक है। इस गाँव के विभिन्न समुदायों में संख्या की दृष्टि से उनका स्थान तीसरा है।

इस समुदाय के लोग 'माझी' नाम पसन्द नहीं करते। उनका दावा है कि वे गोंड हैं और उन्हें राजपूत उत्पत्ति का माना जाय। वृद्ध संभल जिसे हिन्दी का अच्छा ज्ञान है अपना नाम 'संभल राम ठाकुर' लिखता है। उसका यह भी कथन है कि सिंगरौली और मध्य प्रदेश में उसके नातेदार और मित्र सामान्यतः अपने नाम के आगे 'सिंह' लिखते हैं।

देखने में आता है कि स्थानीय हिन्दू जातियों के निकट सम्पर्क में रहते आने के कारण माझियों ने अनेक हिन्दू प्रथाओं को अपना लिया है। वे स्थानीय जातियों की भाँति नातेदारी के अनेक शब्दों का प्रयोग करते हैं। उनमें अनेक लोग न्यूनाधिक अंश में हिन्दू प्रथाओं और वैवाहिक रीतियों का भी अनुकरण करने की चेष्टा करते हैं।

(क) माझियों में नातेदारी की शब्दावली

चितौरा के माझियों में संभल के समान अधिक उन्नत और सुसंस्कृत व्यक्ति तथा परिवार नातेदारी के उन शब्दों का प्रयोग करते हैं जिनका गाँव के विभिन्न जाति समूहों में अधिक प्रचार है, परन्तु अपेक्षाकृत पिछड़े हुए माझियों ने ऐसे अनेक शब्दों को सुरक्षित रखा है जिनका साधारणतः प्रयोग नहीं होता।

जगदेव माझी और उसके परिवार द्वारा व्यवहृत अधिक देहाती शब्दों के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

क्रम संख्या	सम्बन्ध	नातेदारी का शब्द	सम्वोधन का शब्द	उल्लेख का शब्द
१.	पिता	दउआ	दउआ, दादा	दउआ
२.	माता	दाई	दाई	दाई
३.	पुत्र	छोकरा	बाबू	छोकरा
४.	पुत्री	छोकरी	मैंया	छोकरी

कुछ पुराने शब्दों के साथ-साथ आजकल वे पड़ोसियों से अपनाए गए नए शब्दों का भी प्रयोग करते हैं। तुलनात्मक न्यासों के पूर्णतर संग्रह के आधार पर नातेदारी के शब्दों के और अधिक अध्ययन करने से माझियों के आसंस्करण और सामंजस्य (adjustment) के विस्तार पर प्रकाश पड़ सकता है।

(ख) माझियों की वैवाहिक रीतियाँ

(अ) विवाह के प्रकार और रूप:

(१) माझियों में दो मुख्य प्रकार के विवाहों की मान्यता है, ब्याह और और सगाई। 'ब्याह' उस विवाह को कहते हैं जिसमें वधू क्वाँरी हो और विधवा या तलाक़ दी हुई स्त्री के विवाह को 'सगाई' कहते हैं।

(२) 'बदला' या विनिमय-विवाह विवाह का एक प्रचलित रूप है।

(३) बहुविवाह की अनुमति है किन्तु कम देखने में आता है।

(आ) विवाह की रस्में—ब्याह :

(१) अवस्थायें—ब्राह्मणों और क्षत्रियों के समान तीन अवस्थायें यथा (१) शादी, (२) गौना और (३) दोंगा या रौना।

(२) विवाह की ऋतु—'शादी' प्रायः माघ, फागुन और बैसाख में और कभी-कभी जेठ में भी होती है। परन्तु सबसे बडे लड़के या लड़की के विवाह के लिए जेठ का महीना शुभ नहीं होता। उसे उसके सहोदर (siblings) 'जेठ' कहते हैं। दो जेठों का इकट्ठा होना अशुभ माना जाता है ('दो जेठ हो गया')।

(३) वधू का निवास—'चढ़ब्याह' में, जिसमें वधू प्रायः अल्पवयस्क होती है, वह 'शादी' के तुरत बाद ही पितृगृह नहीं छोड़ती (यह रस्म पिता के घर पर ही होती है)। 'डोलाकाढ़ी' में, जिसमें वधू बड़ी होती है, वह वर के घर ५ दिन रहने के लिए जाती है और फिर पिता के घर लौट आती है।

गौना के बाद कम से कम १५ दिन और कभी-कभी एक मास पति के पास रहने के लिए वह जाती है।

(इ) वधूमूल्य:

(१) माझियों में यह प्रथा है कि पुरुष को अपनी 'शादी' के लिए वधूमूल्य देना चाहिए। इसमें प्रायः निम्नलिखित वस्तुयें होती हैं—

१. नक़द १० या १२ रु.

२. तीन सेर (नापने का वर्तन) वधू, उसकी माता तथा पितामही के लिए

३. धान ३ से ५ मन तक

४. लगभग १० सेर मिठाइयाँ

(२) गौना में भी वर को एक-दो सेर (नापने का बर्तन) और ५ सेर मिठाई देनी चाहिए।

(ई) विवाह (ब्याह) का वयस्:

(१) 'शादी' के लिए लड़कियों के वयस् की निचली सीमा लगभग १०–११ वर्ष है परन्तु प्रायः १२–१३ वर्ष की होने पर उनका विवाह होता है। लड़के उनसे कुछ वर्ष बड़े होते हैं। ७–८ वर्ष के वयस् में विवाह नहीं होता।

(२) शादी के कम से कम डेढ़ वर्ष बाद गौना होता है।

(३) सामान्य नियमानुसार लड़के का वयस् लड़की से अधिक होना चाहिए। वर और वधू के सामान्य वयस् क्रमशः १८ और १२ हैं।

(उ) विधवा-पुर्नविवाह :

(१) विधवा-पुर्नविवाह की अनुमति है और यह 'सगाई' के रूप में सम्पन्न होता है।

(२) किसी विधवा की 'सगाई' में उसके दूसरे (नए) पति को भेंट में २० सेर चावल, एक साड़ी और नक़द एक रुपया (एक बकरे के बदले में) देना चाहिए।

(ऊ) तलाक़ :

(१) तलाक़ की अनुमति है और तलाक़ दी हुई स्त्री 'सगाई' के रूप में पुन: विवाह कर सकती है।

(२) किसी तलाक़ दी हुई स्त्री की 'सगाई' में उसके दूसरे (नए) पति को नक़द १२ रु. क्षतिपूर्ति के रूप में देना चाहिए। परन्तु सूचनादाता संभल के अनुसार विवाह में भोजों तथा अन्य प्रवन्धों पर व्यय कभी १०० रु. से कम नहीं होता और १२ रु. की राशि नगण्य होने के कारण बहुधा छोड़ दी जाती है।

(ए) वैवाहिक नियम :

(१) जाति या कबीले के अन्तर्गत ही विवाह का नियम है।

(२) गोत्र के बाहर विवाह करने के नियम का कड़ाई से पालन होता है। गोत्र पितृमूलक होता है और हर गोत्र कई कूरियों में बँटा होता है। जपला गाँव में गोत्रों और कूरियों के नामों का एक अभिलेख उपलब्ध है (इसमें ५ गोत्रों के नाम दिए हुए है और हर गोत्र में ५ से ले कर १८ कूरियाँ हैं)।

(३) वैवाहिक निषेध केवल चचेरे और मौसेरे भाई-बहिनों के लिए है। ममेरे और फुफेरे भाई-बहिनों में विवाह की अनुमति है और बहुत सीमा तक ऐसे विवाह को ही अधिक पसन्द करते हैं।

२. चितौरा के चेरो लोगों में नातेदारी की तथा वैवाहिक प्रथायें

चितौरा में केवल तीन चेरो परिवार हैं जिनमें कुल २२ व्यक्ति हैं जो गाँव की पूरी जनसंख्या के २.७ प्रति शत हैं। इस समुदाय का महत्व इसके परम्परागत व्यवसाय (बैगा या गाँव का पुरोहित) के कारण है। मुख्य सूचनादाता रामदेव चितौरा का बैगा है और उसका बहनोई एक पड़ोसी गाँव का बैगा है। सामान्यत: चेरो कृषक हैं। वे खेतिहर या घरेलू श्रमिक जैसे फुटकर काम भी करते हैं। हाल के वर्षों में उनमें कुछ लोग अकुशल अथवा कुशल श्रमिकों के रूप में रिहन्द बाँध में काम करते रहे हैं।

यद्यपि इस क्षेत्र में चेरो लोगों को प्राय: एक कबायली समूह माना जाता है, स्थानीय हिन्दू जातियों से उनके व्यापक और कुछ-कुछ स्वतंत्र सम्पर्क हैं। उन्होंने काफ़ी हद तक निज को हिन्दू प्रथाओं और रीतियों के अनुरूप बना लिया है और सामंजस्य स्थापित कर लिया है।

(क) चेरो लोगों में नातेदारी की शब्दावली

चितौरा के छोटे-से चेरो समुदाय द्वारा व्यवहृत नातेदारी के अधिकांश शब्द गाँव के अन्य जनों द्वारा व्यवहृत शब्दों के समान हैं। कभी-कभी वे कुछ भिन्न शब्दों का प्रयोग करते हैं परन्तु अधिकांशत: उनकी भी हिन्दू व्युत्पत्ति होती है। उन शब्दों की एक संक्षिप्त सूची नीचे दी जा रही है —

(अ) नाभिकीय परिवार में नातेदारी के शब्द

क्रम संख्या	सम्बन्ध	नातेदारी का शब्द	सम्बोधन का शब्द	उल्लेख का शब्द
१.	पत्नी	औरत	अमुक की माई या सुनो बहरी	औरत
२.	पति	पुरुष	अमुक के बाप या शिशु-जन्म के पूर्व अमुक के भैया या सुनो बहरा	पुरुष
३.	पुत्र	लड़का	छोटा रहने पर नाम से, बड़ा होने पर बाबू	लड़का
४.	पुत्री	लड़की	मैंया	लड़की
५.	पिता	दादा	दादा	दादा
६.	माता	माई	माई	माई
७.	अग्रज	भाई	भैया	बड़े भैया
८	अनुज	भाई	बाबू या नाम से	छोट भाई
९.	बड़ी बहिन	बहिन	बहिन	बड़ी बहिन
१०.	छोटी बहिन	बहिन	मैंया या नाम से	छोट बहिन

(आ) संयुक्त परिवार में नातेदारी के शब्द

क्रम संख्या	सम्बन्ध	नातेदारी का शब्द	सम्बोधन का शब्द	उल्लेख का शब्द	विशेष
		(१) आरम्भिक संयुक्त परिवार में			
१	पुत्रवधू	पतोहू	बचिया	पतोहू	पुरुष बोले या स्त्री
२	पति का पिता	ससुर	बाबाजी	ससुर	
३	पति की माँ	सास	माँ जी	सास	

क्रम संख्या	सम्बन्ध	नातेदारी का शब्द	सम्वोधन का शब्द	उल्लेख का शब्द	विशेष
४	अग्रज की पत्नी	भाभी	भाभी	भाभी	पुरुष बोले या स्त्री
५	पति का अनुज	देवर	बाबू	देवर	
६	पति की छोटी बहिन	ननद	मैंया	ननद	
७	अनुज की पत्नी	भवह	ननकी (=छोटी)	भवह	,,
८	पति का अग्रज	भसुर	कोई शब्द नहीं ('बर्जना' अर्थात् वर्जित सम्वन्ध)	भसुर	
९	पति की बड़ी बहिन	ननद	दीदी	ननद	
१०	पति के अनुज की पत्नी	गोतनी	छोटकी	छोटकी गोतनी	
११	पति के अग्रज की पत्नी	गोतनी	दीदी	बड़ी गोतनी	

(२) ऊर्ध्वाधर विस्तार वाले नातेदार

क्रम संख्या	सम्बन्ध	नातेदारी का शब्द	सम्वोधन का शब्द	उल्लेख का शब्द	विशेष
१	पौत्र	नाती	बाबू या नाम से	नाती	,,
२	पौत्री	नतिनी	मैंया या नाम से	नतिनी	,,
३	पितामह	आजा	आजा, बाबा	आजा, बाबा	,,
४	पितामही	आजी	आजी, दादी	आजी, दादी	,,

(३) क्षैतिज विस्तार वाले नातेदार

क्रम संख्या	सम्बन्ध	नातेदारी का शब्द	सम्वोधन का शब्द	उल्लेख का शब्द	विशेष
१	पिता का अग्रज	बड़का दादा	बड़का दादा	बड़का दादा	
२	पिता के अग्रज की पत्नी	बड़की दादी	बड़की दादी	बड़की दादी	,,
३	पिता की बड़ी/ छोटी बहिन	फूआ	फूआ	फूआ	,,
४	अनुज का पुत्र	भतीजा	बाबू	भतीजा	,,
५	अनुज की पुत्री	भतीजी	मैंया	भतीजी	,,

क्रम संख्या	सम्बन्ध	नातेदारी का शब्द	सम्बोधन का शब्द	उल्लेख का शब्द	विशेष
६	पति के अनुज का पुत्र	भतीजा	(४) के समान		
७	पति के अनुज की पुत्री	भतीजी	(५) के समान		
८	पिता का अनुज	काका, चाचा	काका, चाचा	काका, चाचा	पुरुष बोले
९	पिता के अनुज की पत्नी	काकी, चाची	काकी, चाची	काकी, चाची	या स्त्री
१०	अग्रज का पुत्र	भतीजा	(४) के समान		,,
११	अग्रज की पुत्री	भतीजी	(५) के समान		,,
१२	पति के अग्रज का पुत्र	भतीजा	(४) के समान		,,
१३	पति के अग्रज की पुत्री	भतीजी	(५) के समान		
१४	पिता के भाई का पुत्र	भाई	बड़े को भैया, छोटे को नाम से या बाबू	भाई	,,
१५	पिता के भाई की पुत्री	बहिन	बड़ी को दीदी, छोटी को मैंया या नाम से	बहिन	,,
१६	भाई की पुत्रवधू	पतोहू	बचिया	भाई की पतोहू	,,
१७	पति के भाई की पुत्रवधू	,,	,,	भसुर/देवर की पतोहू	
१८	पति के पिता का अग्रज/अनुज	ससुर	बाबाजी	बड़के/छोटके ससुर	
१९	पति के पिता के अग्रज/अनुज की पत्नी	सास	माँ जी	बड़की/छोटकी सास	
२०	पति के पिता की बड़ी/छोटी बहिन	फुफुआ सास	माँ जी	फुफुआ सास	

उपर्युक्त शब्दों के अतिरिक्त, जो ब्राह्मणों और क्षत्रियों द्वारा व्यवहृत शब्दों से बहुत अधिक मिलते हैं, सर्वथा भिन्न प्रकार के अन्य शब्द भी हैं। नीचे दो उदाहरण दिए जा रहे हैं और भविष्य के संग्रहों में ऐसे और शब्दों की आशा की जा सकती है—

क्रम संख्या	सम्बन्ध	नातेदारी का शब्द	सम्बोधन का शब्द
१	पत्नी का पिता	ससुर	महतो
२	पत्नी की माता	सास	महतोवाइन

यहाँ पर 'महतो' शब्द का प्रयोग ग्रामवासी प्रायः गाँव के मुखिया के लिए करते ह।

(ख) चेरो लोगों की वैवाहिक रीतियाँ

(अ) विवाह के प्रकार और रूप :

(१) चेरो दो प्रकार के विवाह मानते हैं, ब्याह और सगाई। 'ब्याह' में पुरुष और स्त्री का विवाह स्थिर किया जाता है। विधवा अथवा तलाक़ दी हुई स्त्री के पुनर्विवाह को 'सगाई' कहते हैं।

(२) विनिमय द्वारा विवाह की प्रथा है और उसे 'बदला' कहते हैं।

(३) बहुविवाह की अनुमति है किन्तु उसी दशा में जब प्रथम पत्नी से कोई पुत्र न हो।

(४) 'सगाई' के रूप में 'जूनियर लेविरेट' (junior levirate) का पालन हो सकता है जिसके अनुसार किसी व्यक्ति की मृत्यु पर उसका अनुज उसकी विधवा पत्नी से विवाह कर सकता है।

(आ) विवाह (ब्याह) की रस्में :

(१) 'ब्याह' की तीन अवस्थायें हैं—शादी, गौना और दोंगा।

(२) 'शादी' केवल फागुन और बैसाख में होती है।

(३) 'शादी' के बाद वधू केवल एक से ले कर पाँच दिन वर के घर रहने के लिए जाती है। गौना के बाद वह पति के घर केवल ३-४ दिन रहती है। परन्तु दोंगा के बाद वह अपना निवास बदल कर स्थायी रूप से पति के घर रहने लगती है।

(इ) वधूमल्य या दहेज :

रामदेव के अनुसार चेरो समाज में न तो वधूमूल्य की प्रथा है न दहेज की। परन्तु कुछ प्रकार के उपहार प्रायः दिए जाते हैं।

(ई) विवाह का वयस् :

(१) 'शादी' के लिए लड़कियों के वयस् की निचली सीमा ६–७ वर्ष है और लड़कों के लिए ८–९ वर्ष। प्रायः प्रथम विवाह के अवसर पर पुरुष का वयस् २८ या ३०वर्ष होता है। ४० वर्ष का पुरुष बड़ा माना जाता है। किन्तु स्त्रियों का वयस् १६ वर्ष से अधिक नहीं होता।

(२) गौना 'शादी' के प्रायः एक या डेढ़ वर्ष बाद होता है और उसके अगले वर्ष दोंगा। किन्तु लड़की के बहुत छोटी होने पर अन्तर अधिक हो सकता है।

(३) नियमतः वर को वधू से २ या ४ वर्ष बड़ा होना चाहिए। रामदेव ने इस बात को नारी-मनोविज्ञान की दृष्टि से समझाया। यदि कोई ८ वर्ष का बालक १० वर्ष की कन्या से विवाह करे तो जब तक वह बच्चा ही रहेगा लड़की बड़ी हो जायगी और उसे छोड़ देगी। पुरुष अपनी पत्नी से ८ या १० वर्ष भी बड़ा हो सकता है।

(उ) विधवा-पुनर्विवाह :

(१) इसकी अनुमति है और 'सगाई' के रूप में इसे मान्यता प्राप्त है।

(२) 'जूनियर लेविरेट' के अनुसार विधवा से उसका देवर विवाह कर सकता है परन्तु वह अपनी इच्छानुसार दूसरा पति चुन सकती है और किसी पक्ष को क्षतिपूर्ति नहीं करनी पड़ती।

(३) 'सगाई' किसी महीने में हो सकती है परन्तु अधिकतर बैसाख में होती है।

(ऊ) तलाक़ :

(१) इसकी अनुमति है और तलाक़ दी हुई स्त्री 'सगाई' के रूप में पुनर्विवाह कर सकती है।

(२) स्त्री के दूसरे पति को नक़द 'बाँध' देना चाहिए। पहले राशि १२ रु. थी परन्तु अब बढ़ा कर १०० रु. कर दी गई है।

(ए) वैवाहिक नियम :

(१) जाति-अन्तर्विवाह—यद्यपि पहले के साहित्य में चेरो लोगों के अन्य जातियों से मिश्रण की सूचना मिलती है, अब जाति के अन्तर्गत विवाह का ही नियम है।

(२) गोत्र-बहिर्विवाह—गोत्र पितृमूलक हैं। इस प्रकार रामदेव का गोत्र पन्तोबंसी है और उसकी पत्नी का चरवनबंसी।

(३) चचेरी, ममेरी, फुफेरी और मौसेरी बहिन से विवाह वर्जित है। परन्तु नाना के भाई की पौत्री, मौसा के भाई की कन्या और फूफा के भाई की कन्या से विवाह की अनुमति है।

३. चितौरा के चमारों में नातेदारी की तथा वैवाहिक प्रथायें

चितौरा में सबसे बड़ा समूह चमारों का है। उनकी संख्या १८० से ऊपर है और वे पूरी जनसंख्या के २० प्रति शत से अधिक हैं।

परन्तु वे अन्य जाति वालों के निकट सम्पर्क में रहे हैं और गाँव के सम्पन्न क्षत्रियों से सम्भवतः उनकी प्रगाढ़ मैत्री है। एक ही बैठके में क्षत्रियों के साथ बैठे और खुल कर बात करते हुए वे देखे जाते हैं। इन दीर्घकालीन निकट सम्पर्कों के कारण उन्होंने उच्चवर्ण हिन्दुओं की अनेक प्रथाओं और रीतियों को अपना लिया है।

उनके विवाह के दो विशेष लक्षण ये हैं—

(१) बहुधा वे एक ही गाँव में पड़ोसी स्वजातीयों में अन्तरविवाह करते पाए जाते हैं।

(२) वे प्रायः छोटे-छोटे परिवारों में रहते हैं जो उसी गाँव की अन्य जातियों के संयुक्त परिवार के प्रतिमान से भिन्न होते हैं। उनके जीवनयापन की अवस्थाओं और आर्थिक संचरना के साथ इसका सम्बन्ध जोड़ सकते हैं।

(क) चमारों में नातेदारी की शब्दावली

चितौरा के चमारों द्वारा व्यवहृत नातेदारी के अधिकतर शब्द ब्राह्मणों और क्षत्रियों द्वारा व्यवहृत शब्दों के समान हैं। परन्तु कुछ विशिष्ट प्रयोग भी देखे गए हैं। इन भिन्न प्रयोगों से चमारों की नातेदारी-शब्दावली की प्रणाली की दो विशेषताओं का पता चल सकता है—

(१) शब्दों के प्रयोग में प्रकारान्तर—चमारों द्वारा नातेदारी के कुछ शब्दों का ब्राह्मण-क्षत्रिय प्रणाली से भिन्न रीति में प्रयोग होता है। उदाहरणार्थ, चमार माँ को 'दीदी' शब्द से सम्बोधित करते हैं जो दूसरी प्रणाली में बड़ी बहिन के लिए प्रयुक्त होता है। चमारों में भी 'दीदी' शब्द बहिन के लिए प्रयुक्त हो सकता है, यथा कोई स्त्री अपने पति की बड़ी बहिन को 'दीदीजी' कहती है। अतएव प्रतीत होता है 'दीदी' शब्द का प्रयोग हाल में अपनाया गया है परन्तु यह एक निश्चित सीमा तक घनिष्ठता तथा स्नेह की ओर इंगित कर सकता है। इसी प्रकार बड़ी बहिन को

'मैंया' कहने की प्रथा का उल्लेख किया जा सकता है। यह शब्द सामान्यतः छोटी बहिन और अन्य छोटी स्त्री सम्बन्धियों को सम्बोधित करने के लिए प्रयुक्त होता है।

(२) कवायली समूहों के प्रयोगों से साम्य—चमारों और स्थानीय कवायली समुदायों द्वारा व्यवहृत कुछ शब्दों में साम्य पाया जाता है। इस प्रकार पुत्री को 'बचिया' कहते हैं। इस शब्द का प्रयोग ब्राह्मण-क्षत्रिय समूह नहीं करता किन्तु माझी और चेरो व्यापक रूप से करते हैं।

(ख) चमारों की वैवाहिक रीतियाँ

(अ) विवाह के प्रकार और रूप:

(१) तीन प्रकार के विवाहों के नाम बतलाए जाते हैं, अर्थात्—

'ब्याह' जिसका अर्थ है किसी पुरुष का किसी क्वाँरी लड़की से विवाह।

'सगाई' जिसका अर्थ है किसी विधवा अथवा तलाक़ दी हुई स्त्री का पुनर्विवाह।

'टंगाई' जिसका अर्थ है किसी स्त्री का तीसरा विवाह। परन्तु इसे 'सगाई' ही समझना चाहिए।

उदाहरण :
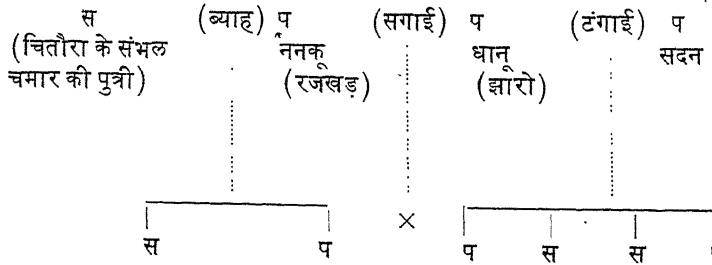
यहाँ चितौरा के संभल चमार की पुत्री का प्रथम बार 'ब्याह' ननकू से हुआ जो वहुत दिन पूर्व मर गया। तब उसने धानू से 'सगाई' विवाह किया परन्तु बाद में धानू ने उसे तलाक़ दे दिया। तीसरी बार उसने सदन से विवाह किया। इस अंतिम विवाह को 'टंगाई' कहते हैं किन्तु सामान्यतः इसे 'सगाई' का ही विस्तार मानते हैं।

(२) विनिमय-विवाह वहुधा होता है। अन्य जातियों के समान इसे 'बदला' कहते हैं।

(३) बहुविवाह की अनुमति है और जब प्रथम पत्नी से पुत्र न हो तभी वंश को चलाने के लिए पुत्रप्राप्ति के उद्देश्य से इसे किया जाता है।

(४) 'जूनियर लेविरेट' की प्रथा है अर्थात् विधवा अपने देवर से विवाह कर लेती है।

(आ) वैवाहिक रीति (ब्याह) :

(१) 'ब्याह' की तीन अवस्थायें हैं—शादी, गौना और दोंगा।

(२) 'शादी' प्रायः माघ, फागुन, वैसाख और जेठ में होती है और गौना और दोंगा अगहन, फागुन और जेठ में।

(३) 'शादी' के बाद वधू वर के घर प्रायः ५ दिन रहती है, गौना के बाद १५ दिन।

(इ) वधूमूल्य :

(१) नियमतः 'शादी' में वर को वधू के परिवार को नक़द १२ रु. ६ आ., दो साड़ियों और एक सेर मिठाई का उपहार देना पड़ता है। नक़द १२ रु. ६ आ. में से ३ रु. ६ आ. 'शादी' के पहले ही देना चाहिए।

(२) गौना में भी वर को एक साड़ी और २५ रोटियाँ भेंट देनी चाहिए।

(३) दोंगा में उसे १० रोटियाँ देनी चाहिए।

(ई) विवाह का वयस् :

(१) 'शादी' के लिए लड़की का अल्पतम वयस् लगभग ६ वर्ष है और लड़के का लगभग ८ या ९। प्रायः प्रथम विवाह के लिए लड़कियों का अधिकतम वयस् लगभग १२ है और लड़कों का १९।

(२) यदि 'शादी' के समय वधू बड़ी हो चुकी हो तो आगामी उचित ऋतु (या मास) में ही गौना हो सकता है और दोंगा उसकी अगली ऋतु में। कन्हई के पुत्र लोचन की 'शादी' लगभग १६ वर्ष की अवस्था में जेठ १९५४ में हुई। उसकी वधू भी बड़ी थी। उसका गौना फागुन १९५५ में हुआ और दोंगा जेठ १९५५ में।

परन्तु वधू के बहुत छोटी होने पर गौना २ वर्ष या अधिक बाद हो सकता है।

(३) दम्पति के वयस् के अन्तर के सम्बन्ध में लोग यह अधिक पसन्द करते हैं कि लड़की लड़के से २–३ वर्ष छोटी हो। परन्तु अपवादस्वरूप वे समवयस्क हो सकते हैं।

(उ) विधवा-पुनर्विवाह :

(१) इसकी अनुमति है और इसे 'सगाई' का एक रूप मानते हैं।

(२) विधवा के मृत पति का अनुज उससे विवाह कर सकता है ('जूनियर लेविरेट') अथवा वह किसी अन्य पुरुष से विवाह कर सकती है। दूसरी दशा में दूसरे पति को उसके पहले पति के परिवार को नक़द १२ रु. देना चाहिए। उसे उस स्त्री को एक साड़ी और यदि उसकी माँ जीवित है तो उसे भी एक साड़ी और १० रोटियाँ भी देनी चाहिए।

(ऊ) तलाक़ :

(१) चमारों में तलाक़ की अनुमति है। तलाक़ दी हुई स्त्री के पुनर्विवाह को भी 'सगाई' कहते हैं।

(२) स्त्री के दूसरे पति को 'बाँध' के रूप में पहले पति को नक़द १२ रु. और एक साड़ी और १० रोटियाँ भी देनी चाहिए।

(ए) वैवाहिक नियम :

(१) उपजातियों में अन्तर्विवाह—

स्थानीय चमारों में विभिन्न उपजातियाँ हैं। चितौरा के चमार एक ही उपजाति के हैं। उपजाति-अन्तर्विवाह ही सामान्य नियम है।

(२) कुल या गोत्र-बहिर्विवाह का कड़ाई से पालन होता है।

(३) चचेरे, मौसेरे, ममेरे, फुफेरे भाई-बहिनों के लिए विवाह का निषेध है। इसी प्रकार का प्रतिबन्ध नाना के भाई की पौत्री से विवाह करने पर है परन्तु फूफा के भाई की पुत्री से विवाह करने पर नहीं।

नवम अध्याय

जीवनचक्र से सम्बन्धित संस्कार

गाँव में व्यक्ति के जीवन की प्रत्येक बड़ी घटना के उपलक्ष्य में उत्सव होते हैं और संस्कार सम्पन्न होते हैं। कुछ घटनाओं के लिए मात्र एक उत्सव नहीं होता वरन् संस्कारों की एक श्रृंखला होती है।

१. शिशुजन्म से सम्बन्धित संस्कार

गाँव में जन्म के पूर्व के उत्सव नहीं मनाए जाते। जैसे-जैसे शिशुजन्म का समय निकट आता है उस अवसर के निमित्त भावी माँ भलीभाँति स्वच्छ किए हुए एक कमरे में ले जाई जाती ह। इस कमरे को 'सौरी' कहते हैं और 'छठी' तक कोई पुरुष इसमें प्रवेश नहीं कर सकता। सौरी में प्रवेश करने के पूर्व प्रसविणी माँ अपने सभी धातु-आभूषणों को उतार डालती है और केवल काँच की चूड़ियाँ पहने रहती है। सौरी छोड़ने पर ये चूड़ियाँ तोड़ दी जाती हैं या चमारिन को दे दी जाती हैं।

माँ के लिए एक खाट डाल देते हैं। यह एक ऐसा लक्षण है जो मैदान के गाँवों में नहीं पाया जाता। चमारिन फ़र्श पर सोती है। प्रसविणी माँ के लिए सदा यह याद रखना अनिवार्य है कि उसके पैर दक्षिण दिशा की ओर नहीं होने चाहिए जिधर यम का निवास बतलाया जाता है। इसके अतिरिक्त सौरी में अन्य लोगों को भी दक्षिण की ओर मुख करने से बचना चाहिए। मिट्टी का दीया जला कर खाट के सिरहाने के पास रख दिया जाता है और एक अन्य कोने में छठी तक आग सुलगती रहती है। आग के पास मिट्टी के बर्तन में नमक, सरसों के दाने तथा धूप रखा रहता है। जो भी स्त्री सौरी में प्रवेश करती है इस मिश्रण का थोड़ा-सा अंश हाथ में ले कर माँ के सिर के चारों ओर घुमाने के बाद आग में फेंक देती है। इससे सौरी में दुष्ट प्रेतों के प्रवेश से रक्षा होती है।

शिशुजन्म के समय खाट के चारों ओर खड़ी हो कर वृद्धा और अनुभवी स्त्रियाँ प्रसवपीड़ित स्त्री का उत्साहवर्धन करती हैं और उसे सीख देती हैं। शिशुजन्म हो जाने पर चमारिन हँसिया से नार (umbilical cord) काटती है। माँ उच्चवर्ण की हो या निम्नवर्ण की, जन्म के समय चमारिन का रहना अनिवार्य है। कबायलियों और निम्न जातियों में नार को मिट्टी के नए बर्तन में रख कर सौरी में शिशुजन्म के स्थान पर गाड़ देते हैं। उच्चतर जातियों में इसे सौरी में आग के पास एक छेद में डाल कर जला देते हैं। किसी भी दशा में नार और खेंड़ी (placenta) को बाहर नहीं फेंकते जहाँ पशु उसे खा जायँ।

पीतल की थाली बजा-बजा कर शिशुजन्म की घोषणा की जाती है और नाइन गाँव के मित्रों और सम्बन्धियों को समाचार दे आती है। फिर सभी स्त्रियाँ नव-जात के घर जमा हो कर शुभ गीत (सोहर) गाती हैं। हर स्त्री एक मुट्ठी अन्न लाती है जो इकट्ठा कर नाइन को दिया जाता है। बाद में स्त्रियों में तेल और सिन्दूर वितरित होता है। यदि शिशु जन्म किसी निम्नतर जाति के परिवार में हुआ हो तो उच्चतर जातियों की स्त्रियाँ वहाँ नहीं जातीं।

पंडित को आमंत्रित करते हैं और शिशु का लिंग तथा जन्म का ठीक-ठीक समय उसे सूचित करते हैं। जन्म के समय नक्षत्रों की स्थिति पर विचार कर वह शिशु का नामकरण करता है। इस नाम को 'राशि का नाम' कहते हैं। राशि का अर्थ है वह नक्षत्र जो जन्म के समय सबसे बलवान हो और शिशु की प्रकृति और चरित्र पर जिसका प्रभाव पड़ने की आशा की जाती है। कुंडली बनाने के लिए पंडित को २ से ले कर ५ रु. तक दिया जाता है। वह छठी और बरही उत्सवों तथा औपचारिक स्नान के लिए शुभ लग्न भी निकालता है जिसके लिए उसे कुछ रुपए, बिरले ही २ रु. से अधिक, और थोड़ा-सा चावल और हल्दी दी जाती है। कन्या की अपेक्षा बालक के जन्म पर अधिक उत्सव मनाए जाते हैं। पहले लड़के का जन्म अत्यन्त आनन्द का अवसर होता है जो केवल ग्रामवासियों की आर्थिक स्थिति द्वारा ही सीमित होता है। शिशुजन्म के समय चमार, पासी और कुछ कबायली पंडित को नहीं बुलाते क्योंकि वे कुंडली को कोई महत्व नहीं देते। परन्तु वे प्रायः पंडित के पास छठी और बरही उत्सवों के लिए शुभ लग्न पूछने जाते हैं। कभी-कभी वे स्वयं लग्न निश्चित कर लेते हैं। शिशुजन्म के समय से बरही के स्नान तक माँ और शिशु द्वारा पहने गए सभी मैले वस्त्रों को धुलाने के लिए दुद्धी से धोबी बुलाया जाता है। लड़का होने पर धोबी को ८ आने और ५ सेर अन्न दिया जाता है, लड़की होने पर ४ आने और ३ सेर अन्न।

यदि शिशु जन्म लेते ही न रोए तो कबायलियों में एक मनोरंजक प्रथा है। उस अवस्था में शिशु को परिवार के किसी पूर्व सदस्य का अवतार माना जाता है। परि-वार का कोई वृद्ध सदस्य शिशु के पास खड़ा हो कर पूछता है, "तुम कौन हो ?" फिर वह शिशु के माता-पिता के मृत सम्बन्धियों का क्रम से नाम लेता है और हर बार पूछता जाता है, "तुम अमुक हो ?" विश्वास है कि जिस सम्बन्धी का नाम लेने पर शिशु रोता है उसने परिवार में पुनर्जन्म लिया है। शिशु को उसी सम्बन्धी का नाम दे देते हैं परन्तु बाद में यह बदला जा सकता है। लड़का होने पर पहले पुरुष सम्बन्धियों के नाम लिए जाते हैं, लड़की होने पर स्त्री सम्बन्धियों के नामों को प्राथमिकता दी जाती है।

छठी—शिशुजन्म के बाद का छठा दिन छठी कहलाता है और इस दिन माँ पहला स्नान करती है। इस दिन के पूर्व तक चमारिन माँ और शिशु की मालिश करती है। स्नान कराने में भी वह माँ और शिशु की सहायता करती है। गरम पानी, जिसमें आम की पत्तियाँ डाली रहती हैं, प्रयुक्त होता है। अब माँ काँच की चूड़ियाँ उतार डालती है और उसे अपने धातु-आभूषणों को पहनने की अनुमति रहती है। स्नान के बाद माँ शुद्ध मानी जाती है परन्तु अभी वह घर के काम-काज नहीं करती। नाइन उसके नख काटती है, माँग में सिन्दूर डालती है और पैरों में महावर लगाती है। अयोध्यावासी कलवारों में माँ की माँग में सिन्दूर नहीं डालते। इस दिन शिशुजन्म के बाद पहली बार पिता दाढ़ी बनवाता और नख कटाता है। उसके साथ हर उच्चवर्ण परिवार का एक पुरुष नाई द्वारा बाल कटाता है। लड़का होने पर नाई को ४ आने और ६ सेर अन्न मिलता है, लड़की होने पर ४ सेर अन्न।

प्रायः कच्चा भोज दिया जाता है परन्तु समर्थ लोग पक्का भोज देते हैं। भोज के उपरान्त आतिथेय की जाति की स्त्रियाँ इस अवसर के लिए शुभ माने जाने वाले गीत गाती हैं। हर स्त्री अपने साथ आधा सेर अन्न नाइन को देने के लिए लाती है। नाइन ही उनके पास न्योता देने जाती है और भोज के पूर्व वह उनके नख काटती तथा उनके पैरों में महावर लगाती है। जाते समय स्त्रियों को उनकी आतिथेय तेल और सिन्दूर देती है।

छठी के दिन सौरी धुली जाती है और कमरे में धूप जलाया जाता है। पुराना बिस्तर धोबी को दे दिया जाता है और माँ को नया बिस्तर देते हैं। पुरानी धोती चमारिन को दी जाती है। नार काटने के लिए उसे एक रुपया भी मिलता है और अन्य सेवाओं के लिए भोजन तथा अन्न। इस दिन के बाद माँ और शिशु की देखरेख का उत्तरदायित्व नाइन को दे दिया जाता है। उत्सव की समाप्ति पर माँ सौरी में वापस चली जाती है परन्तु अब वह सब समय उसके अन्दर ही नहीं रहती। पंडित छठी के उत्सव में कोई संस्कार नहीं सम्पन्न कराता यद्यपि वह उपस्थित रह सकता है।

बरही—शिशुजन्म के बाद बारहवें दिन यह उत्सव मनाया जाता है। इस दिन शिशुजन्म के बाद माँ दूसरी बार स्नान करती है। छठी के स्नान की रीति के समान इस दिन भी स्नान होता है परन्तु इस बार चमारिन का स्थान नाइन ले लेती है। सौरी दुबारा स्वच्छ की जाती है। शाम को नाइन के द्वारा स्त्रियों को आने और गीत गाने के लिए न्योता भेजा जाता है। वे नाइन के लिए अन्न लाती हैं। उसे अन्य उपहार भी मिलते हैं। वह स्त्रियों के पैरों में महावर लगाती है। शाम को मित्रों और सम्बन्धियों को भोज दिया जाता है।

सत्तइसा—यदि किसी शिशु का जन्म मूल नक्षत्र में हुआ हो जो नक्षत्रों की अशुभ स्थिति है, तो बरही के स्थान पर सत्तइसा उत्सव मनाया जाता है। शिशुजन्म के बाद सत्ताईसवें दिन सत्तइसा मनाते हैं। पंडित द्वारा स्थिर दिन को सत्तइसा उत्सव मनाने के पूर्व पिता शिशु को नहीं देखता न नख कटाता या दाढ़ी बनवाता है। नाई द्वारा मित्रों और सम्बन्धियों को न्योता भेजा जाता है। विभिन्न प्रकार के २७ वृक्षों से ईंधन इकट्ठा किया जाता है, २७ कुँओं से पानी भरा जाता है और लकड़ी की चौकी के चारों ओर २७ पताकायें गाड़ी जाती हैं। नाई तेल से भरा कटोरा लाता है और तभी पिता तेल में शिशु का प्रतिबिम्ब देख सकता है। २७ कुँओं से जमा किए गए जल में शिशु को स्नान कराया जाता है। माता-पिता भी औपचारिक रूप से स्नान कर शुचिता प्राप्त करते हैं। लकड़ी की चौकी पर बैठ कर पंडित हवन करता है। शाम को मित्रों और सम्बन्धियों के लिए एक छोटे-से भोज, प्रायः कच्चे, की व्यवस्था की जाती है। पूर्व की भाँति स्त्रियाँ गीत गाने के लिए एकत्रित होती हैं। वे जो अन्न लाती हैं वह नाइन को दिया जाता है और नाई को तेल से भरा कटोरा।

२. शैशवकालीन संस्कार

अन्नप्राशन या मुछलागी—जिस दिन शिशु को पहली बार अन्न खिलाया जाता है उसके उपलक्ष्य में अन्नप्राशन उत्सव मनाया जाता है। प्रायः इस दिन शिशु के नामकरण की प्रथा है। लड़की के जन्म के बाद पाँचवें मास में और लड़के के जन्म के बाद छठे मास में अन्नप्राशन मनाते हैं। उत्सव के लिए पहले ही पंडित शुभ लग्न निश्चित कर देता है। इस बार भी नाई के द्वारा ही मित्रों और सम्बन्धियों को न्योता दिया जाता है। न्योते के चिह्नस्वरूप एक सुपाड़ी भेजी जाती है और दूरस्थित सम्बन्धियों को लाल रंग (शुभ रंग) छिड़के हुए पत्र। इस दिन प्रातःकाल शिशु को स्नान कराते और नए वस्त्र पहनाते हैं। फिर उसे पितामह या मातामह की गोद में बैठाते हैं, उनके न रहने पर पितामह या मातामह के भाई की गोद में। शिशु को पाँच प्रकार का भोजन दिया जाता है। प्रत्येक का थोड़ा-सा अंश उसके होंठों में लगा कर शेषांश हटा देते हैं और परिवार के अन्य बच्चों को खिलाते हैं। भोजन कराने के बाद शिशु को हर अतिथि के पास ले जाते हैं। सभी अतिथियों से शिशु को द्रव्य या प्रकार में कुछ उपहार देने की आशा की जाती है। न्यूनतम नक़द उपहार ८ आने है। सायंकाल सत्यनारायण कथा या कभी-कभी रामायण-पाठ होता है। कबायली लोग यह कथा नहीं कराते। कथा के बाद परिवार की परिस्थिति के अनुसार अतिथियों को पक्का या कच्चा भोजन कराया जाता है। अतिथियों के पास

न्योता ले जाने वाला नाई और कथावाचक पंडित भी भोज में सम्मिलित होते हैं यद्यपि पंडित के लिए भोज्य पदार्थों के विषय में निर्दिष्ट नियमों का पालन अनिवार्य होता है। कच्चे भोज में वह केवल 'सीधा' ले सकता है परन्तु जजमान की जाति को ध्यान में रखते हुए पक्के भोज में वह अन्य पदार्थ ग्रहण कर सकता है। जजमान की आर्थिक स्थिति के अनुसार उसे दक्षिणा मिलती है किन्तु एक रुपए से कम कभी नहीं। इस बार भी स्त्रियों के शुभ गीतों के गायन से उत्सव समाप्त होता है।

मुंडन—लड़के के सिर घुटाने के उत्सव को मुंडन कहते हैं और माझियों के अलावा सभी इसे मनाते हैं। इस उत्सव के लिए कोई एक निश्चित वयस् नहीं है वरन् कई वयस् हैं। इस प्रकार यह पहले, तीसरे, पाँचवें, सातवें, नवें, ग्यारहवें या तेरहवें वर्ष में हो सकता है। ग्रामवासी सामान्यत: प्रथम वर्ष में इसे करना अधिक पसन्द करते हैं क्योंकि यदि माँ दूसरे या तीसरे वर्ष में गर्भवती हो जाय तो उत्सव को पाँचवें वर्ष के लिए स्थगित करना पड़ता है। यह बात विशेषत: अयोध्यावासी कलवारों पर लागू होती है क्योंकि उनमें मुंडनोत्सव समाप्त होने के पूर्व माँ अपनी माँग में सिन्दूर नहीं डाल सकती। कभी-कभी छठी के साथ ही मुंडन भी कर देते हैं अन्यथा अधिकतर शिवालय में शिवरात्रि या चैत नवमी के दिन मुंडन करते हैं। कभी-कभी ग्रामवासी इस संस्कार के लिए वाराणसी या विन्ध्याचल सदृश किसी तीर्थ को जाते हैं।

यदि बालक का वयस् ५ वर्ष या कम हो तो मुंडन के समय वह परिवार के किसी वृद्ध व्यक्ति की गोद में बैठता है। मंडप के नीचे पुरोहित द्वारा मंत्रपाठ के साथ उत्सव सम्पन्न होता है। जब नाई बालक के बालें काटता रहता है तो बालक की चाची या बहिन कटे हुए बालों को इकट्ठा करती रहती है और बालों का एक भी गुच्छा भूमि पर नहीं गिरने दिया जाता। बाद में बालों को नदी या पोखरे में फेंक देते या देवता को चढ़ाने के बाद गाड़ देते हैं। बालक को स्नान कराने के बाद केसरिया वस्त्र पहनाते हैं। पंडित और नाई दोनों को आतिथेय और अतिथि-गण कुछ द्रव्य देते हैं। इस उत्सव में भी नाई सन्देशवाहक का काम करता है और मित्रों और सम्बन्धियों के पास न्योता ले जाता है। सायंकाल स्त्रियाँ एकत्रित हो कर गीत गाती हैं।

३. विवाह

सवर्ण हिन्दुओं में वैवाहिक नियम—विवाह जाति के अन्दर ही और कभी-कभी उपजाति में ही होते हैं। कलवारों में ७ उपजातियाँ हैं यद्यपि चितौरा में दो ही पाई जाती हैं यथा बियाहुत कलवार और अयोध्यावासी। हर उपजाति एक अन्तर्वैवाहिक समूह है, अतः कोई बियाहुत कलवार किसी बियाहुत कलवार से ही

विवाह करेगा और कोई अयोध्यावासी अपनी उपजाति के अन्दर ही करेगा। परन्तु जाति और उपजाति-अन्तर्विवाह के साथ-साथ गोत्र-बहिर्विवाह भी होता है। कलवारों में ३६० गोत्र हैं और कोई व्यक्ति अपने गोत्र, मामा-फूफा-मौसा के गोत्र या पत्नीपक्ष के किसी गोत्र में विवाह नहीं कर सकता। ब्राह्मणों और ठाकुरों में भी लड़के और लड़की के गोत्र भिन्न होने चाहिए। चमारों में ७ 'कूरियाँ' हैं यथा शाहपुरिया, नगरहा, देवरिहा, खरसमिया, कुलदमहनिया, गरवरिया और सिंगरौलिया। विभिन्न कूरियों के नाम विभिन्न स्थानों पर पड़े हैं। अन्तःकूरी विवाह निषिद्ध हैं और केवल अन्तरकूरी विवाहों की अनुमति है। लड़का और लड़की एक ही गाँव के हो सकते हैं यदि जाति, उपजाति और गोत्र के नियमों का उल्लंघन न हो।

विवाह का स्थिर करना—सभी जातियों में सामान्य नियमानुसार माता-पिता विवाह स्थिर करते हैं। कोई सम्बन्धी या मित्र मध्यस्थ का काम करता है। वह कन्यापक्ष के प्रतिनिधि के रूप में लड़के के परिवार, कुल तथा आर्थिक मर्यादा के विषय में अधिकाधिक सूचना प्राप्त करने के बाद वर का चुनाव करता है। फिर वधू पक्ष का कोई सम्बन्धी, जहाँ तक सम्भव हो पिता या कोई भाई, वर के घर जाता है। लड़का उयुपक्त होने पर बातचीत आरम्भ होती है। लड़के और लड़की की कुंडलियाँ मिलती हैं या नहीं इसे जाँचने के लिए पंडित बलाया जाता है। उसकी दक्षिणा एक रुपया, कुछ चावल और हल्दी होती है। कुंडलियों के न मिलने पर बातचीत बन्द कर दी जाती है। परिणाम अनुकूल होने पर अगला प्रश्न दहेज का होता है। दहेज की राशि लड़के की आर्थिक स्थिति पर निर्भर करती है। यह एक सौ से ले कर एक सहस्र रुपए तक होती है। दहेज निश्चित हो जाने पर विवाह की बातचीत समाप्त होती है। यद्यपि यह एक मौखिक समझौता होता है बिरले ही इसका उल्लंघन किया जाता है। चमारों में लड़की के परिवार के स्थान पर लड़के के परिवार की ओर से बातचीत आरम्भ की जाती है।

'बरिक्षा' की रस्म—विवाह से सम्बन्धित यह प्रथम रस्म होती है। लड़की के परिवार का कोई व्यक्ति पंडित और नाई के साथ वर के घर जाता है। 'बरिक्षा' (वररक्षा) के रूप में एक धोती, एक कमीज़ और दो से पाँच रु. तक वर के परिवार को देने के लिए साथ में ले जाते हैं। भोज का आयोजन होता है जिसमें उक्त अतिथि और वर के सम्बन्धी सम्मिलित होते हैं। कभी-कभी वर का पिता और दो-तीन सम्बन्धी थोड़े-से रुपए और कुछ वस्त्र ले कर वधू के घर जाते हैं। इसे 'वरतुइया' रस्म कहते हैं और 'तिलक' की रस्म के लिए इस समय तिथि निश्चित की जाती है। कलवार लोग 'छेका' की रस्म मनाते हैं जिसमें वर के सम्बन्धी वधू के परिवार वालों के पास जाते हैं जिसके बाद वधू के सम्बन्धी वर के घर जाते हैं। छेका की रस्म में ही तिलक की तिथि निश्चित की जाती है।

तिलक की रस्म—दोनों पक्षों की सुविधानुसार इस रस्म के लिए शुभ दिन स्थिर किया जाता है। इसे बहुत उछाह के साथ मनाते हैं और इस अवसर पर दूर के सम्बन्धी और गाँव की अन्य जातियों के लोग भी निमंत्रित किए जाते हैं। वधू-पक्ष तिलक लाता है। उसे लाने वालों में कन्या का पिता, पंडित, नाई और अन्य जन होते हैं। तिलक में सामान्यतः धातु का एक बड़ा-सा थाल, चन्दन, चावल, वस्त्र (लम्बाई में सवा गज़ से कम नहीं), सवा सेर सुपाड़ी, हल्दी और पूर्व-निश्चित द्रव्य होता है। वर लकड़ी की नीची चौकी या बड़े पत्ते पर बैठता है। दोनों पक्षों के पंडित गणेश और गौरी की पूजा करते हैं। पूजा के बाद हवन होता है। फिर कन्या का पिता तिलक-संस्कार के लिए बुलाया जाता है। वह लड़के के सामने बैठ जाता है और पंडित मंत्रपाठ करता है। तब वह (कन्या का पिता) लड़के के मस्तक पर गुड़-मिश्रित दही का तिलक लगाता है। लड़के की अंजुली में कपड़े का टुकड़ा रखा जाता है और उस पर चावल। अन्त में वधूपक्ष का पंडित तिलक-थाल लड़के को भेंट करता है। वह उसे हाथ से स्पर्श कर प्रकट करता है कि कन्या के पिता द्वारा जो भी दिया गया हो लड़के वालों को ग्राह्य है। तिलक-थाल में हल्दी छिड़का हुआ 'लगन' (काग़ज़) भी रखा रहता है जिसमें विभिन्न रस्मों के शुभ लग्न लिखे रहते हैं। इसे उच्च स्वर से पढ़ा जाता है और इस पर लड़के के पक्ष की स्वीकृति आवश्यक होती है। सायंकाल पक्का भोज होता है जिसमें सभी अतिथि सम्मिलित होते हैं। पंडित को बीस आने और नाई को आठ आने दिया जाता है। कबायलियों में तिलक की रस्म नहीं होती।

मंडप छाना—विवाह की वास्तविक रस्मों की तैयारियाँ तिलक के बाद आरम्भ होती हैं। इनमें पहली रस्म है 'मंडप छाना' (मंडप खड़ा करना)। चार-पाँच पुरुष वन से कोनों के खम्भों के लिए लकड़ी और बाँस लाते हैं। केन्द्रीय खम्भे के लिए सदा हल का प्रयोग करते हैं। मंडप छाने की रस्म का श्रीगणेश बैगा करता है जो परिवार की स्त्रियों के साथ-साथ 'मटकोड़वा' रस्म पूरी करता है और खम्भों को गाड़ने के लिए सनी हुई मिट्टी लाता है। पताकाओं और लकड़ी के छोटे-छोटे तोतों से मंडप सजाया जाता है। केन्द्रीय खम्भे के सिरे पर आम का पल्लव बाँध देते हैं। इसके दोनों ओर पानी से भरा एक-एक घड़ा रख देते हैं। घड़े के ढकनों पर जौ के दाने और जलते हुए दीये रहते हैं। बहनोई या फूफा मंडप गाड़ने में बहुत सहायता करता है। इसके उपलक्ष्य में उसे कुछ द्रव्य अथवा सोने की अँगूठी या भैंस सदृश कोई उपहार मिलता है। घड़ा देने के लिए कुम्हार को एक रुपया दिया जाता है।

सायंकाल नाई 'हल्दी-तेल' की रस्म के लिए चारों ओर न्योता देने जाता है। वधू या वर मंडप के नीचे लोहार द्वारा दिए हुए लकड़ी के पाटा (पीढ़ा) पर बैठता है। कुछ पुरुष (वधू की अवस्था में स्त्रियाँ) आम के पत्ते से पाँच बार उसके सिर पर हल्दी-तेल छिड़कते हैं। फिर क्रमशः सारे शरीर पर इसे मलते हैं। इसके बाद कुलदेवता की पूजा होती है। रात में बिरादरी के लिए कच्चे भोज की व्यवस्था की जाती है।

घी-धौरी की रस्म—यह रस्म अगले दिन वर के घर होती है। वर को द्वार पर ले जा कर उसके सिर पर उसकी माँ थोड़ा-सा घी उँडेलती है। उसके पैरों के पास कुछ आग सुलगती रहती है जिसमें घी टपकता है। फिर द्वार पर कपड़े का टुकड़ा चिपका देते हैं और बिरादरी और बिरादरी के बाहर वालों को भी कच्चा भोज दिया जाता है।

इसके बाद 'बरात' के प्रस्थान की तैयारियाँ आरम्भ होती हैं। सायंकाल वर की बहिन उसे औपचारिक स्नान कराती है। इसके लिए वह आँगन में एक छोटा-सा गड्ढा खोदती है जो पोखरे का प्रतीक होता है। गड्ढे के ऊपर हल का जुआठा रख दिया जाता है जिस पर वर खड़ा होता है। बहिन उसे स्नान कराती है और नेग (पुरस्कार) पाती है। फिर बहनोई वर को 'जामा' (विवाह का विशेष वेष) पहनाता और पगड़ी बाँधता है। इसके बदले में बहनोई को कुछ द्रव्य दिया जाता है। दुद्धी का एक पठारी 'मौर' दे जाता है जिसके लिए उसे बीस आने देते हैं। फिर वर को घर के अन्दर कुलदेवता का चरण-स्पर्श कराने को ले जाते हैं। इसके बाद बहनोई या फूफा वर को पालकी में पहुँचा देते हैं। फिर 'परछन' की रस्म के लिए स्त्रियाँ आती हैं और पालकी के अन्दर अक्षत फेंकती हैं। वर के सिर के चारों ओर घुमा कर वे एक-एक, दो-दो पैसे 'निछावर' भी चढ़ाती हैं जो नाइन को दे दिया जाता है। फिर वर की माँ उसकी आँखों में काजल लगाती है।

बरात तब वधू के घर के लिए प्रस्थान करती है। साथ में 'बैंड' या नाचने वाला लड़का रहता है। वधू के यहाँ बरात के पहुँचने पर एक अलग घर में, जिसे 'जनवासा' कहते हैं, वे लोग ठहराए जाते हैं। वधू के परिवार का नाई दो घड़े पानी ले कर जनवासे में आता है और आम के पत्तों से वर और अन्य लोगों पर जल छिड़कता है। इसके लिए नाई ५ आने पाता है।

कुछ देर विश्राम करने के उपरान्त बरात वधू के घर जाती है जहाँ वधू का चाचा उसका स्वागत करता है। वह वर के पिता का आलिंगन करता और उसे कुछ द्रव्य भेंट करता है। फिर 'दुआरचार' की रस्म होती है। प्रवेशद्वार पर सूखे आटे का 'चौक' पूरा रहता है और गौरी तथा गणेश के नाम पर वहाँ पानी से भरा

घड़ा और मिट्टी का दीया रखा रहता है। दोनों पक्ष के पंडित पूजा करते हैं। यदि वर का परिवार अपना पंडित ले जाने की सामर्थ्य नहीं रखता तो वधूपक्ष का पंडित अकेले ही संस्कार सम्पन्न कराता है। वर लकड़ी के पीढ़े पर बैठता है। वधू का पिता वर को कुछ रुपए देता है। दो बर्तनों में पानी रखा रहता है जिससे वह वर के पाँव धोता है। बाद में ये बर्तन वर को दे दिए जाते हैं। वधूपक्ष की स्त्रियाँ इस रस्म के समय गीत गाती हैं। रस्म पूरी होने पर बरात वापस जनवासे में जाती है और उसे पक्का भोजन कराया जाता है।

बाद में रात को विवाह की असली रस्म की तैयारियाँ आरम्भ होती हैं। वधूपक्ष का पंडित मंडप के नीचे जहाँ वधू बैठती है 'चौक' पूरता है। वधू का अग्रज 'बरनेत' भेंट चढ़ाने के लिए बुलाया जाता है। इसमें वधू के लिए वस्त्राभूषण भी रहते हैं। इसके बाद वर जनवासे में लौट आता है और विवाह समाप्त होने के पूर्व तक वधू को नहीं देख सकता। कन्या को घर के अन्दर ले जाते और सजाते हैं। वर को मंडप में प्रवेश करने के लिए नाई बुलाने जाता है। जब वह मंडप में जाता है स्त्रियाँ उस पर अक्षत बरसाती हैं। वह बरात के अन्य लोगों के साथ मंडप में बैठता है। पूजा हो जाने पर बरात के लोग मंडप से चले जाते हैं और वधू को ला कर वर के पास बिठाया जाता है। पंडित वधू और वर के वस्त्रों के छोर परस्पर बाँधता है और वधू का पिता 'कन्यादान' के लिए बुलाया जाता है। वधू की माँ इस रस्म में उपस्थित नहीं होती। वह कच्चे सूत का एक सिरा पकड़े रहती है जिसका दूसरा सिरा पिता के हाथ में रहता है। इससे यह प्रकट होता है कि वे दोनों मिल कर कन्यादान दे रहे हैं। वधू का हाथ वर के हाथ पर रखा जाता है और दोनों के हाथों को पिता का हाथ सहारा देता है। पंडित पिता को अक्षत और कुश देता है। पिता उसे वधू और वर को दे देता है। वर का पिता एक नीची चौकी पर बैठता है और वधू का पिता उसके पाँव धोता है। इस रस्म को 'समधियार' कहते हैं। फिर वधू के मस्तक या माँग में पहले उसकी बड़ी बहिन सिन्दूर लगाती है और बाद में सन के टुकड़े या पैसे से वर लगाता है। इस बार भी वधू की एक सम्बन्धी, उसकी बहिन, को इस काम के लिए वर से पुरस्कारस्वरूप एक रुपया मिलता है। फिर वधू का भाई कपड़े के टुकड़े या सूप से वर के हाथ में भूना हुआ धान गिराता है।

एक सिल पर सात ढेरियों में सुपाड़ी, अक्षत और एक-एक पैसा रखा जाता है। 'भावर' की रस्म में वधू और वर सात बार अग्नि की प्रदक्षिणा करते हैं। एक बार वर आगे चलता है तो दूसरी बार वधू। हर प्रदक्षिणा पूरी होने पर वर के चरणों पर कुछ सुपाड़ियाँ, थोड़ा-सा अक्षत और एक पैसा फेंका जाता है। घर के अन्दर वधू और वर के जाने पर स्त्रियाँ उन्हें चिढ़ाती हैं। वर अपनी सास को मौर

दे देता है जिसके बदले में उसे कुछ द्रव्य मिलता है। थाली में पानी भर कर रखते हैं और उसमें सोने की पाँच अँगूठियाँ डाल देते हैं। अधिकाधिक अँगूठियाँ लेने के लिए वधू और वर में होड़ लगती है। स्त्रियाँ वधू की सहायता करती हैं और सदा वही जीतती है। फिर बरात के अन्य लोगों के साथ वर जनवासे में लौट जाता है।

अगले दिन वर को दुबारा वधू के घर ले जाते और मिठाई खिलाते हैं। इस समय वह गाय या भैंस की माँग पेश करता है और उसकी माँग पूरी करने का वचन दिया जाता है। जनवासे में बरात के लिए जलपान भिजवाया जाता है। अपराह्न में कच्चा भोज होता है जिसे 'मरियाद क भात' कहते हैं। भोज के पूर्व वधू और वर दोनों के परिवार जनवासे में एकत्रित होते हैं जहाँ वधू का पिता 'दहेज' की रस्म पूरी करता है। वधू का पिता वर के पिता को दहेज में दिए जाने वाले आभूषणों, वस्त्रों और बर्तनों की सूची देता है।

उसके अगले दिन लड़के को 'बिदाई' की रस्म के लिए बुलाया जाता है। वधू और वर के वस्त्रों के छोर परस्पर बाँधे जाते हैं। फिर उन दोनों की अंजुलियों में चावल रखा जाता है। वधू फिर अपने परिवार से विदा ले कर पति के घर चली जाती है।

वर के घर स्त्रियाँ वधू और वर का स्वागत करती हैं। जैसे ही वे पालकी से उतरते हैं वे उन पर अक्षत बरसाती हैं। वधू सास और घर की अन्य वृद्धाओं के चरण छूती और बदले में द्रव्य पाती है। भोज का प्रबन्ध किया जाता है जिसमें मांस और मदिरा दी जाती है। चार दिन बाद वधू के सम्बन्धी उसे वापस ले जाने के लिए आते हैं। यदि लड़की युवावस्था को प्राप्त कर चुकी होती है तो कुछ मास बाद ही दोंगा या गौना की रस्म पूरी कर दी जाती है जिसके बाद वह पति के पास रहने के लिए अपना मैका छोड़ देती है। अन्यथा वह पिता के घर ही रहती है और रस्म बाद में पूरी होती है। दोंगा की रस्म में वरपक्ष के दस-बारह लोग वधू को लाने जाते हैं। चमारों में दोंगा की रस्म बहुत महत्वपूर्ण होती है क्योंकि अधिकतर उनमें युवावस्था तक पहुँचने के पूर्व ही लड़की का विवाह हो जाता है जिसके कारण वस्तुत: विवाह अपूर्ण रहता है।

डोला—इस प्रकार का विवाह तब होता है जब वधू का परिवार निर्धन हो और बरात का स्वागत-सत्कार न कर सके। इस प्रकार कुछ सम्बन्धियों के साथ वधू वर के घर जाती है जहाँ विवाह होता है।

इसके अतिरिक्त विवाह विभिन्न प्रकार के होते हैं यथा 'बियाह' या 'सगाई' या 'दुआली'। 'बियाह' क्वाँरे लड़के और क्वाँरी लड़की के विवाह को कहते हैं और जब पुरुष या स्त्री दोनों में किसी का दूसरी बार विवाह हो रहा हो तो 'सगाई' कहते

हैं। ऐसा व्यक्ति विधुर (विधवा) या तलाक़ दिया हुआ पुरुष (दी हुई स्त्री) हो सकता (सकती) है या (पुरुष की अवस्था में) वह जिसकी प्रथम पत्नी बाँझ हो। दूसरे विवाह का जो भी कारण हो पहली पत्नी दूसरी पत्नी की अपेक्षा उच्चतर मर्यादा और अधिक अधिकार वाली मानी जाती है। वह 'बियाहुत' है जब कि दूसरी 'अर्धी' जिसका शाब्दिक अर्थ है 'अर्ध-पत्नी'। 'सगाई' में कोई विशेष रस्म नहीं होती। पति पत्नी की माँग में सिन्दूर नहीं डालता और केवल बिरादरी को भोज दिया जाता है।

कबायली विवाह-प्रथायें—सवर्ण हिन्दुओं और कबायली समूहों की वैवाहिक रस्मो में थोड़े-बहुत अन्तर हैं। कबायली 'खरवास' के काल को अशुभ और उस काल में विवाह करना बुरा नहीं मानते। बालविवाह उन्हें नापसन्द है। सामान्यतः १५ से १८ वर्ष के वयस् में लड़कों तथा १३ से १६ वर्ष के वयस् में लड़कियों का विवाह होता है। वधू और वर दोनों इन वयसों से अधिक के हो सकते हैं किन्तु कभी इनसे कम के नहीं। उन दोनों को युवा तथा परिवार के पालन के लिए समर्थ होना चाहिए। एक ही गोत्र में विवाह निषिद्ध है परन्तु निकट के रक्त-सम्बन्धियों में विवाह अनुमोदित है।

वर के सम्बन्धी विवाह स्थिर करने में पहले आगे आते हैं और कन्या के माता-पिता के पास जाते हैं। बातचीत सफल होने पर वर के सम्बन्धी (पिता, चाचा, अग्रज और अन्य) कुछ दिनों के बाद वधू के घर जाते हैं और साथ में शराब, रोटी और भुजबन्द ले जाते हैं। भुजबन्द को कन्या की बाँह में बाँध दिया जाता है जिससे जोड़ा बँधा रहे। इस समय अन्य रस्मों के लिए तिथियाँ निश्चित कर दी जाती हैं।

हिन्दुओं के समान ही मंडप छाने की रस्म होती है। हाँ, कबायली ५ के स्थान पर ९ खम्भे गाड़ते हैं। वे बहुत धूमधड़ाके के साथ आनन्द मनाते हैं जिसमें वधू भी भाग लेती है। गोंडों की अपनी एक विशेष रस्म होती है। आँगन में एक भाला गाड़ दिया जाता है। वधू और वर जिसके कन्धे पर तलवार का रहना अनिवार्य है, पाँच बार भाले की परिक्रमा करते हैं। पठारी जो पुरोहित का काम करता है हर परिक्रमा की समाप्ति पर अक्षत छिड़कता है और आज से आरम्भ होने वाले परिवार के कल्याण के हेतु 'जय हो खंदईजी' कहता है। सच्चे गोंड राजपूतों म तलवार के बल पर वधू प्राप्त करने की प्रथा है, उनसे ऐकात्म्य स्थापित करने का यह प्रतीक है। रस्मी भोज के बाद वधू वर के घर के लिए प्रस्थान करती है। हल्दी-तेल की रस्म वर के घर की जाती है और तब वधू के सिर में सिन्दूर डालने की रस्म होती है। दिन के अन्त में बिरादरी-भोज होता है।

अगले दिन वधू और वर को पोखरे पर ले जाते हैं जहाँ आँखमिचौनी का परम्परागत खेल होता है। वधू वर की आँखों पर पट्टी बाँधती है और कहीं पास में ही धातु का घड़ा छिपा देती है। वर को घड़े का पता करना होता है या हार स्वीकार करनी पड़ती है। तब वधू की आँखों पर पट्टी बाँधी जाती है और उससे घड़े को ढूँढने को कहा जाता है। प्राय: स्त्रियाँ वधू की सहायता करती हैं और वह सफल होती है।

गोंडों में पहली बार पति के घर आने पर वधू को सच्चाई की एक परीक्षा का सामना करना पड़ता है। वह नतमस्तक बैठती है। स्त्रियाँ बीच से उसकी माँग निकालती हैं और हल्दी और सरसों के तेल का घोल उस पर उँडेलती हैं। यदि घोल माँग से बहता हुआ नाक के सिरे तक पहुँच जाय तो विश्वास करते हैं कि वधू पति की हो कर रहेगी। परन्तु यदि उसकी धार इधर-उधर हो जाय तो उसके पातिव्रत्य में सन्देह किया जाता है।

विधवा-पुनर्विवाह को भी कबायलियों में 'सगाई' कहते हैं। इसके साथ किसी प्रकार की तड़क-भड़क नहीं होती न कोई संस्कार ही सम्पन्न होते हैं।

सामान्यत: एक पुरुष एक ही स्त्री से विवाह करता है किन्तु उसके वन्ध्या होने पर वह दूसरा विवाह कर सकता है। प्रथम पत्नी की मर्यादा सदा उच्चतर होती है और दूसरा विवाह वरपक्ष की ओर से बिना किसी संस्कार के सम्पन्न होता है।

खरवारों में विवाह की एक मनोरंजक प्रथा है। आशा की जाती है कि सभी खरवार स्त्रियाँ एक प्रकार का जादू जानती हैं जिसे स्थानीय बोली में 'गुन' कहते हैं। जब नवविवाहिता कन्या पहली बार पति के लिए भोजन तैयार करती है तो पति के परिवार की स्त्रियाँ उसकी जादू-शक्ति की परीक्षा लेती हैं। जिस बर्तन में भोजन पक रहा हो उस पर मंत्र द्वारा वे जादू करती हैं जिससे पानी न उबले। आशा की जाती है कि अन्य स्त्रियों के मंत्रों को निष्फल करते हुए भोजन पकाने के उद्देश्य से वह अपने जादू का प्रयोग करेगी। सफल होने पर उसे परिवार की दक्ष सदस्या के रूप में अंगीकार कर लिया जाता है अन्यथा उसे उसके पिता के घर सभी 'गुनों' को सीखने के लिए वापस भेज दिया जाता है।

४. मृत्यु-सम्बन्धी संस्कार

जिस व्यक्ति की मृत्यु बिना किसी रोग या अस्वस्थता के होती है उसे भाग्यशाली मानते हैं क्योंकि विश्वास करते हैं कि भगवान अपवाद रूप से उस पर दयालु था और उसने उसे बन्धनमुक्त कर दिया है। इसी प्रकार यदि बिना अपने बच्चों पर भार बने वृद्ध जनों की मृत्यु हो जाय तो उसे लोग अच्छा मानते हैं। पति के जीवित

रहते ही स्त्री की मृत्यु हो जाय तो उसे भाग्यवती मानते हैं क्योंकि यद्यपि विधवा-पुर्नविवाह की अनुमति है, कुछ जातियों में अब भी विधवा को नीची दृष्टि से देखते हैं। परिवार के भरण-पोषण करने वाले की मृत्यु पर सबसे अधिक शोक मनाया जाता है।

किसी व्यक्ति की अंतिम घड़ी समीप आने पर पंडित को पुराण और गीता का पाठ करने के निमित्त बुलाया जाता है। ऐसा विश्वास है कि मृत्युशैय्या पर पड़ा व्यक्ति ईश्वर या धर्म का चिन्तन एकाग्रचित्त हो कर नहीं कर सकता। निदान, पाठ द्वारा पंडित मुमूर्षु पुरुष की चित्तशांति में सहायता करता है। काल के मुख में जाने के पूर्व उसे रस्सी का स्पर्श कराया जाता है जिससे गाय बँधी रहती है। बाद में गाय महाब्राह्मण को दे दी जाती है जो पंडित से आगे के कामों का भार ले लेता है और जिसे सभी रस्में और संस्कार कराने होते हैं। इसे 'गऊदान' कहते हैं और ऐसा मानते हैं कि इस संसार और अगले संसार को बाँटने वाली पौराणिक नदी 'बैतरनी' को पार करने में गाय मरणोन्मुख व्यक्ति की सहायता करती है। व्यक्ति के मरते ही ग्रामवासी सूचित किए जाते हैं। मृत्युशैय्या पर दक्षिण दिशा की ओर, जहाँ यम निवास करता है, पैरों को कर के शव को लिटा दिया जाता है। मृत्यु रात में होने पर परिवार के सभी सदस्य जागरण करते हैं और शव के चारों ओर बैठे रहते हैं। कमरे में दीये जला देते हैं और अन्दर बच्चे नहीं जाने पाते।

बाँस की खाट शीघ्र ही तैयार कर ली जाती है। शरीर को गरम पानी में धो कर सरसों का तेल और हल्दी मली जाती है। विधवा की मृत्यु पर उसके सभी आभूषण उतार लिए जाते हैं किन्तु सधवा की मृत्यु पर उसके हाथ में लाल चूड़ियाँ पहनाई जाती हैं और सिर में सिन्दूर डाला जाता है। यह सब काम कोई स्त्री सम्बन्धी करती है। फिर शरीर को श्वेत या पीले नए वस्त्र में लपेट कर विस्तर के साथ अर्थी में लिटा देते हैं। वृद्ध व्यक्ति की मृत्यु पर श्वेत, हरे और पीले वस्त्र की पताकाओं से अर्थी को सजाते हैं।

शव को श्मशान में ले जाने के पूर्व अन्त्येष्टि क्रिया करने वाले व्यक्ति को मृतक को 'पिंडा' चढ़ाना होता है। पिंड काले तिल और जौ का होता है। जब महा-ब्राह्मण मंत्रपाठ करता है थोड़ा-सा तिल और जौ मृतक के मुख में डाला जाता है। फिर शरीर को श्मशान में ले जाते हैं। इस बात का ध्यान रखा जाता है कि सिर निरन्तर घर की ओर और पैर श्मशान की ओर हों। मार्ग में तीन बार जुलूस ठहरता है और हर बार मृतक को पिंड चढ़ाया जाता है।

श्मशान भूमि पर, जो सदा नदी के पास होती है, चिता तैयार की जाती है। सामान्यतः बेल की लकड़ी प्रयुक्त होती है यद्यपि धनी परिवार चन्दन की लकड़ी का प्रयोग करते हैं। शव को नदी में नहला कर चिता पर रखते हैं। पैर दक्षिण की ओर ही रखते हैं। बिस्तर धोबी को दे दिया जाता है। सदा निकटतम पुरुष सम्बन्धी ही अन्त्येष्टि क्रिया करता है। वह दुबारा शव को पिंड चढ़ाता है। उसके बाद नाई से वह अपना सिर घुटाता है और नई धोती पहन कर स्नान करता है। पुरानी धोती नाई को दे दी जाती है। शव के सिर पर कुछ घी, तिल, जौ और धूप रखा जाता है। फिर निकटतम पुरुष सम्बन्धी पाँच 'लुकारे' (जलती हुई घास के मूठे) ले कर पाँच बार शव की परिक्रमा करता है और हर बार शव पर एक लुकारा रखता जाता है। पहला लुकारा सिर पर और फिर चारों कोनों पर रखते हैं। अन्य सभी शोकमग्न व्यक्ति भी जलाने की लकड़ी के पाँच-पाँच टुकड़े चिता पर रखने के लिए देते हैं। अन्त्येष्टि क्रिया करने वाला पुरुष चिता पर लकड़ी रख कर कहता है, "यहाँ पर जमा सब लोगों ने तुम्हें यह जलाने की लकड़ी दी है।" वह अग्नि के पास कुछ फूल और दूध भी रखता है और भूमि पर 'राम' तथा शुभ अंक ९ और ६ लिखता है।

दाह के बाद सभी लोग नदी में स्नान करते हैं और अन्त्येष्टि क्रिया करने वाले पुरुष को आगे कर जुलूस वापस घर जाता है। हर पुरुष एक पत्थर या कंकड़ उठा कर कन्धे के ऊपर से अपने पीछे वाले पुरुष को दे देता है और वह दूसरा पुरुष अपने पीछे वाले पुरुष को। जुलूस के अंतिम पुरुष के पास पत्थर या कंकड़ के पहुँचने पर बिना पीछे देखते हुए वह कंधे के ऊपर से उसे फेंक देता है। ऐसा इसलिये करते हैं जिससे मृतात्मा उनका पीछा न करे। जुलूस के लोग इस बात का ध्यान रखते हैं कि उनके पैर परस्पर स्पर्श न करें।

स्त्रियाँ कभी श्मशान भूमि नहीं जातीं। वे घर पर ही रहती और स्नान करने के बाद ही भोजन पका सकती हैं। मृतक के घर के प्रवेशद्वार पर जल से भरा घड़ा रहता है। जब पुरुष लौटते हैं वे अपने बायें पैरों पर थोड़ा-सा जल छिड़कते हैं। फिर उन्हें शर्बत दिया जाता है जिसके बाद वे अपने-अपने घर वापस जाते हैं।

तदुपरान्त अन्त्येष्टि क्रिया करने वाला व्यक्ति महाब्राह्मण और नाई के साथ पीपल के वृक्ष के पास जाता और उसकी एक डाल पर घड़ा रख देता है। घड़े के पेंदे में एक छेद कर दिया जाता है। फिर अगले दस दिन तक घड़े में पानी डालते हैं जो बह कर वृक्ष की जड़ों में पहुँचता है। एक दूसरा छोटा-सा घड़ा जिसे 'टहरी' कहते हैं उसी डाल से लटका दिया जाता है और उसमें तीन छेद करते हैं। फिर उसके अन्दर एक दीया रखते हैं जो प्रति दिन जलाया जाता है। महाब्राह्मण

२. एक माझी का घर (पृ. ३०)

३. लावण्यमयी (पृ. ३१)

६. प्यास आसानी से नहीं बुझने की—
मीलों चलना होगा (पृ. १३२)

७. भला बर्तन रोज़ साफ़ न करें? (पृ. १६)

१. साप्ताहिक हाट--मनोरंजन का अजस्त्र स्रोत

१०. विषाद की रेखायें

१२. एक कबायली पुरोहित (पृ. ७८)

↑

१३. भूत-प्रेतों का आवाहन (पृ. १६३)

१४. रहस्यमय अभिचार सम्पादित करते हुए एक चेरो बैगा (पृ. १७३)

१५. बजे ढोल, थिरक उठे चरण (पृ. १५२)

१६. दो रूप--पेशेवर नर्तकी, मज़दूरिन (पृ. ९)

१७. कौन अधिक दत्त नर्तक—मझवार या चेरो? (पृ. १५२)

वृक्ष के तने में श्वेत धागा बाँधता है और मंत्रपाठ द्वारा वृक्ष में आ कर निवास करः के हेतु मृतात्मा का आवाहन करता है। ऐसा विश्वास है कि दस दिन तक आत्म वहाँ निवास करेगी। इन दस दिनों तक अन्त्येष्टि क्रिया करने वाला व्यक्ति परि वार के अन्य जनों से अलग रहता है। वह स्वयं अपने लिए भोजन पकाता औ अकेले ही भोजन-शयन करता है। प्रति दिन प्रातःकाल वह पीपल के वृक्ष के पास जा कर 'घंट' या घड़े को जल से भरता और सायंकाल दीये को जला कर उसवे नीचे अग्नि को जौ, तिल और घी भेंट कर हवन करता है। मानते हैं कि इससे मृतात्मा प्रसन्न होगी और विश्वास है कि 'घंट' में पानी डालने से उसकी प्यास बुझेगी।

महाब्राह्मण नदी के समीप कुश की झाड़ी लगाता है। दस दिन तक परिवार का प्रत्येक सदस्य नदी में स्नान कर कुश के पौदे को थोड़ा-सा जल चढ़ाता है। विश्वास है कि इससे मृतक द्वारा अपने जीवन काल में किए गए कलुषों के धुल जाने में सहायता मिलेगी।

तीसरे दिन लोग श्मशान पर पक्का करने के लिए जाते हैं कि शव पूर्ण रूप मे जल गया है। यदि न जला हो तो दुबारा आग देते हैं। राख नदी में विसर्जित कर दी जाती है और चितास्थल पर दूध, फूल, जौ, तिल और घी रखते हैं। अस्थियाँ एकत्रित कर पीपल के वृक्ष के नीचे गाड़ दी जाती हैं और लोग गीत गा कर धरती माँ से प्रार्थना करते हैं कि वह अस्थियों की रक्षा करे। यदि मृतक का सम्बन्धी वाराणसी जाय तो वह अपने साथ अस्थियों को ले जा कर गंगा में विसर्जित कर आता है।

दसकर्म—दसवें दिन मृतक के सभी स्वजातीय नदी तट पर एकत्रित होते हैं और नाई उनके सिर-दाढ़ी मूँडता और नख काटता है। परिवार की स्त्रियाँ भी नदी तट पर जाती हैं जहाँ नाइन उनके नख काटती है। सभी निकट सम्बन्धी वस्त्र बदल कर पुराने वस्त्र धोबी को देते हैं। यदि मृतक की विधवा बची हो तो उसे नदी तट पर बुलाते हैं। उसका (विधवा का) भाई उसके लिए एक श्वेत धोती लाता है जिसे वह स्नानोपरान्त पहनती है। फिर चाँदी के सिक्के से नाइन उसकी चूड़ियाँ फोड़ती है और उसके सिर से सिन्दूर धुल दिया जाता है। इसके बाद विधवा के लिए अनिवार्य है कि वह काँच की चूड़ियाँ या रंगीन धोती न पहने। औपचारिक स्नान के पश्चात् स्त्रियाँ वापस जा कर अपने घर साफ़ करती हैं।

तदुपरान्त दस बार अक्षत, दूध, घी और शहद के पिंडे चढ़ाए जाते हैं और महा-ब्राह्मण मंत्रपाठ करता रहता है। पत्ते में पिंडों को एकत्रित कर नदी में प्रवाहित करते हैं। निकटतम पुरुष सम्बन्धी पिंडदान करता है जिसके बाद वह दुबारा स्नान करता है। तब महाब्राह्मण को भोजनार्थ निमंत्रित किया जाता है। वह केवल

ब्राह्मण द्वारा पकाया भोजन ग्रहण करता है अन्यथा 'सीधा' ले कर स्वयं पकाता है। अन्त्येष्टि क्रिया करने वाला व्यक्ति इसके बाद पीपल के वृक्ष के पास जा कर घंट और टहरी फोड़ आता है। सभी लोग मृतक के घर जाते हैं जहाँ प्रवेशद्वार पर उन पर जल छिड़का जाता है। उन्हें भोज के लिए निमंत्रित करते हैं परन्तु उस परिवार से जो कच्चा भोजन ग्रहण कर सकते हैं वे लोग ही सम्मिलित होते हैं।

'एकादसी' को या ग्यारहवें दिन दुबारा पिंडदान दिया जाता है।

बारहवें दिन सारे गाँव को भोज कराया जाता है। पहले महाब्राह्मण भोजन ग्रहण करता है और परिवार की आर्थिक मर्यादा के अनुसार उसे कुछ दक्षिणा दी जाती है। सामान्यतः दक्षिणा गायों या बछियों की होती है। फिर अन्य सभी लोग भोज में सम्मिलित होते हैं। भोज के उपरान्त अन्त्येष्टि क्रिया करने वाला व्यक्ति मध्य में बैठता है और उसके सम्बन्धी उसे घेर कर बैठते हैं। उसके साले उसके सिर पर पगड़ी रख हाथ जोड़ कर उसे नमस्कार करते हैं। महाब्राह्मण और उसके सम्बन्धी उसके मस्तक पर चन्दन और दही का टीका लगाते हैं। फिर भूमि पर जल गिरा कर वे उसे मृतक के प्रति उसके कर्तव्यों से निवृत करा देते हैं क्योंकि उसने सभी विहित कर्म कर डाले हैं। इसके बाद से वह परिवार के साथ भोजन कर सकता है। अब कोई निषेध नहीं होते।

जैसा पहले उल्लेख कर चुके हैं कभी-कभी मृतक के अवशेष विशेष पवित्र स्थानों यथा गया या वाराणसी को ले जाते हैं। मृतक की अस्थियाँ या राख पवित्र नदी में विसर्जित कर दी जाती है। राख या अस्थियों को ले जाने वाला सम्बन्धी नंगे पाँव जाता और मार्ग में केवल निरामिष भोजन ग्रहण करता है। उसके गाँव लौटने पर दुबारा रीति के अनुसार भोज दिया जाता है।

कबायली प्रथा—कबायली लोग मृत्यु के बाद दसवें दिन एक विशेष प्रथा का पालन करते हैं। परिवार का एक वृद्ध व्यक्ति घर के प्रवेशद्वार पर कच्चे सूत से एक नीबू लटका देता है। फिर वह सभी सम्बन्धियों के नाम पुकारता और मृतक से उनके सम्बन्ध घोषित करता है। यदि सूत टूट जाय तो विश्वास करते हैं कि मृतक परिवार में पुनर्जन्म लेगा और जिसके नाम पर सूत टूटा हो उसके समान ही उसकी मर्यादा और स्थिति होगी। मुंडा और हो लोगों में इसी प्रकार के विश्वासों का उल्लेख शरतचन्द्र राय और मजूमदार ने किया है।

दशम अध्याय

धार्मिक विश्वास तथा प्रथायें

यहाँ के ग्रामवासियों में पूजा के कई प्रकार हैं और विभिन्न देवी-देवताओं और भूत-प्रेतों की पूजा होती है। परन्तु शिव की पूजा सवर्ण हिन्दू और कवायली दोनों करते हैं। यहाँ पर उल्लेख किया जा सकता है कि बहुत हद तक कवायलियों ने हिन्दुओं की प्रथाओं और रीतियों को अपना लिया है। पवित्र स्थानों या पूजा के स्थानों को 'देवस्थान' कहते हैं। गाँव में छः देवस्थान हैं और उनमें शिव के पाँच हैं। तीन देवस्थानों पर चबूतरे बने हुए हैं और हर चबूतरे पर एक शिवलिंग है। ग्रामवासी शिवलिंग की उपासना करते हैं। शिव के देवस्थान लगभग सौ वर्ष पूर्व निर्मित हुए थे।

सामान्यतः ग्रामवासी स्नानोपरान्त शिवलिंग को जल चढ़ाते और उसके साथ-साथ शिवस्तुति करते हैं। एक साधारण शिवस्तुति निम्नलिखित है—

धन धन शंकर भोलानाथ
शंकर विघ्न नसाने वाले
शोभा जटा में देती गंगा
बायें पार्वती अर्धांगी
सिंगीनाद बजाने वाले
सिर पर चन्द्रकला उजियारी
लिपटे अंग भुजंगन भारी
स्वामी पंचबदन त्रिपुरारी
सिंगीनाद बजाने वाले

ओढ़े बाघ खाल छवि छाई
त्रिभुवन तीनों लोक सुखदाई
डमरू नाद बजाने वाले
सिंगीनाद बजाने वाले

पहिने नरमुंडन की माला
आसन तले बिछा मृगछाला
दस भुज करि दीनदयाला
भक्तों के मन भाने वाले
धन धन शंकर भोला नाथ
शंकर विघ्न नसाने वाले

स्तुतिपाठ करते समय लोग सदा खड़े रहते हैं। सावन में हर सोमवार को शिव-पूजा निश्चित कर दी गई है। लोग निराजल व्रत रखते हैं। स्वयं जल ग्रहण करने के स्थान पर वे शिवलिंग को जल चढ़ाते हैं। इसके बाद बेलपत्र और चन्दन चढ़ाते हैं। फलाहार द्वारा व्रत समाप्त होता है। सायंकाल कीर्तन का आयोजन होता है जिसमें सभी जातियों और कबीलों के लोग भाग लेते हैं। परन्तु अन्य जनों के समान कबायली समूहों और चमारों को चबूतरे पर बैठने की अनुमति नहीं होती। यदि चमार लोग कीर्तन के समय ढोल आदि बजा रहे हों तो भी उन्हें भूमि पर खड़ा रहना होता है और चबूतरे पर नहीं जा सकते। कीर्तन के बाद प्रसाद बँटता है। कभी-कभी भाँग का प्रसाद होता है। सावन के अंतिम सोमवार को ग्रामवासी सत्यनारायण कथा का आयोजन करते हैं। जो संकटकाल में शिव को मनौती मानते हैं वे ब्राह्मणों को देवस्थान पर भोजन करा या कथा सुन कर कर्तव्यपालन करते हैं। कुछ स्त्रियाँ हर सोमवार को व्रत रखती हैं और सायंकाल शिवलिंग को जल चढ़ाने के बाद केवल अन्न ग्रहण करती हैं। फागुन में शिवरात्रि पर शिव की विशेष पूजा होती है।

पर्व

गाँव में मनाए जाने वाले सभी पर्वों की एक तालिका नीचे दी हुई है। तालिका में उनकी तिथियों के अतिरिक्त यह भी दिखलाया गया है कि इन उत्सवों में पुरुष और स्त्रियाँ दोनों भाग ले सकती हैं या दोनों में एक ही। ग्रामवासी सावन को वर्ष का प्रथम मास मानते हैं क्योंकि इससे कृषि वर्ष का श्रीगणेश होता है। निम्नलिखित तालिका के बाद महत्वपूर्ण पर्वों के विस्तृत विवरण दिए गए हैं—

मास	क्रम संख्या	पर्व	तिथि	भाग लेने वाले
सावन (जुलाई-अगस्त)	१	नाग पंचमी	शुक्ल पक्ष की पंचमी	पुरुष और स्त्रियाँ
	२	सावन नवमी	शुक्ल पक्ष की नवमी	स्त्रियाँ
	३	रक्षाबन्धन	पूर्णमासी	पुरुष और स्त्रियाँ
भादों (अगस्त-सितम्बर)	४	जन्माष्टमी	कृष्ण पक्ष की अष्टमी	,,
	५	हरतालिका	शुक्ल पक्ष की ततीया	स्त्रियाँ

मास	क्रम संख्या	पर्व	तिथि	भाग लेने वाले
	६	करमा	शुक्ल पक्ष की एकादशी	स्त्रियाँ
	७	अनन्त चौदस	शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी	पुरुष और स्त्रियाँ
कुआर	८	जिउतिया	अनिश्चित	स्त्रियाँ
(सितम्बर-अक्तूबर)	९	मातृनवमी	शुक्ल पक्ष की नवमी	पुरुष
	१०	दशहरा	शुक्ल पक्ष की दशमी	पुरुष और स्त्रियाँ
	११	पितृपक्ष	प्रथम १४ दिन	पुरुष
कार्तिक (अक्तूबर-नवम्बर)	१२	दीवाली	अमावस्या या कृष्ण पक्ष	पुरुष और स्त्रियाँ
	१३	देवथानी एकादशी	शुक्ल पक्ष की एकादशी	,,
	१४	कार्तिक चौथ	पूर्णमासी	,,
अगहन (नवम्बर-दिसम्बर)		..	..	..
पूस (दिसम्बर-जनवरी)		खरवास	(अत्यंत अशुभ काल जिसमें कोई नया काम नहीं आरम्भ किया जाता न कोई उत्सव होता है।)	
माघ	१५	मकर संक्रान्ति	अनिश्चित	पुरुष और स्त्रियाँ
(जनवरी-फ़रवरी)	१६	वसन्त पंचमी	शुक्ल पक्ष की पंचमी	,,
	१७	माघ पूर्णिमा	पूर्णमासी	,,
फागुन (फ़रवरी-मार्च)	१८	शिवरात्रि	कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी	,,
	१९	होली	पूर्णमासी	,,

मास	क्रम संख्या	पर्व	तिथि	भाग लेने वाले
चैत (मार्च-अप्रैल)	२०	राम नवमी	शुक्ल पक्ष की नवमी	पुरुष और स्त्रियाँ
बैसाख (अप्रैल-मई)	२१	सेतुवान	अमावस्या	,,
	२२	तिरतिया	अनिश्चित	,,
जेठ (मई-जून)	२३	भीमसेनी एकादशी	शुक्ल पक्ष की एकादशी	,,
आषाढ़ (जून-जुलाई)	२४	यात्रा	अनिश्चित	,,

सावन नवमी—इस पर्व को देवी नवमी भी कहते हैं क्योंकि इस दिन देवी की पूजा होती है। महत्वपूर्ण देवियाँ है काली देवी, ज्वालामुखी देवी, सीतला देवी और सतबाहनी देवी। हिन्दू और कबायली देवियों का यह विचित्र मिश्रण है। पर्व प्रातःकाल आरम्भ होता है जब स्त्रियाँ पक्का भोजन तैयार करती हैं यथा पूड़ी, मालपूआ और रोट। पहले स्त्रियाँ दुद्धी के कलिवर (मन्दिर) में जाती थीं परन्तु आजकल वे अपने-अपने घरों में देवी की पूजा करना अधिक पसन्द करती हैं। इसके निमित्त आँगन का एक भाग स्वच्छ किया जाता है और गोबर लीपा जाता है। हवन के बाद पूजा होती है और देवी को पूड़ी, रोट और मालपूआ चढ़ाया जाता है। पूजा समाप्त होने तक स्त्रियाँ व्रत रखती और फिर पक्का भोजन ग्रहण करती हैं। इस पर्व का एक बहुत मनोरंजक और विशेष लक्षण यह है कि भिक्षा द्वारा एकत्रित सामग्री से ही पूजा का चढ़ावा तैयार होता है। ७ शुभ अंक माना जाता है, अतः इस पर्व को मनाने की इच्छुक स्त्री ७ घरों से भीख लेने के लिए गाँव का चक्कर लगाती है। विशेष परिस्थितियों में, यथा मनौती पूरा करने के समय, वह ७ गाँवों से भीख जमा करती है। जब परिवार में कोई व्यक्ति किसी बहुत पुराने रोग से ग्रस्त हो तो स्त्रियाँ मनौती मानती हैं। देवी को वचन दिया जाता है कि यदि रुग्ण व्यक्ति या पशु स्वास्थ्यलाभ कर लेगा तो उसे बकरा चढ़ाया जायगा या कुछ रोट दिए जायँगे। घर पर या मंदिर में बकरे की बलि देने के बाद प्रसाद रूप में मांस को सम्बन्धियों और मित्रों में बाँटा जाता है। भिक्षा के हेतु स्त्रियाँ समूहों में जाती हैं और बिना जाति का विचार किए किसी भी घर से भिक्षा ग्रहण करती

हैं। स्त्रियों के साथ ढोल बजाते हुए एक चमार जाता है। उसे भिक्षा का एक अंश दिया जाता है। निम्न वर्णों में इस पर्व को बहुत अधिक नहीं मनाते परन्तु कबायलियों के लिए इसका अत्यन्त महत्व है क्योंकि इस पर्व के बाद ही वे धान की रोपाई करते हैं।

जन्माष्टमी—यह पर्व कृष्ण भगवान के जन्म की स्मृति में मनाया जाता है और इसका साधारण नाम कृष्ण जनम अष्टमी है। विश्वास है कि मध्य रात्रि के बाद दिखाई देने वाले रोहिणी नक्षत्र के प्रभाव में कृष्ण भगवान का जन्म हुआ था। अतः पर्व के मुख्य उत्सव रात १२ बजे के बाद होते हैं जब सभी जातियों और कबीलों के लोग एकत्रित हो कर कीर्तन में भाग लेते और प्रसाद पाते हैं। परन्तु निम्न जातियाँ और कबायली लोग पर्व से सम्बन्धित अन्य रस्में नहीं मनाते। उच्चवर्ण लोग सामान्यतः सारे दिन व्रत रखते हैं। उनमें कुछ 'निर्जला' व्रत रखते हैं और अन्य जन साधारण व्रत रखते हैं तथा फल, तीखुर * और अन्य निरन्न आहार ग्रहण करते हैं। व्रत रखने वाले अधिकांश लोग रामायण पाठ और हरिकीर्तन कराते हैं। एक ग्रामवासी के घर में (चितौरा में यह स्थान निश्चित है) पुरोहित कृष्ण की एक मूर्ति प्रतिष्ठापित करता है और मूर्ति तथा उस स्थान को भलीभाँति सजाया जाता है। जिसके घर में मूर्ति प्रतिष्ठापित होती है वही सारा व्यय भार उठाता है। जिस घर में कृष्ण की मूर्ति रखी रहती है वहाँ मध्य रात्रि के ठीक पहले ग्रामवासी जमा होते हैं। शंखध्वनि तथा घंटियों द्वारा पंडित जन्म का ठीक समय घोषित करता है। फिर सभी उपस्थित जनों को प्रसाद बाँटा जाता है जिसमें सामान्यतः धनिया या तीखुर की पंजीरी और पंचामृत होता है। पंचामृत में गोदुग्ध, दही, घी, शहद और चीनी होती है। प्रातःकाल और सायंकाल दोनों समय आरती होती है और कृष्णजी को प्रसाद चढ़ाया जाता है। आरती में सभी जातियों के लोग कृष्ण भगवान को द्रव्य चढ़ाते हैं। चढ़ावे की राशि निश्चित नहीं होती और एक पैसे से ले कर कई रुपयों तक होती है। स्त्रियाँ भी द्रव्य चढ़ाती हैं। चढ़ावे का द्रव्य पंडित या पुरोहित ले लेता है। पर्व तीन दिन चलता है। तीसरे दिन सभी जातियों के लोग कृष्ण की मूर्ति के पास जमा होते हैं। तब लोग मूर्ति को गाँव में निकालते और अन्त में लकड़ा बाँध पर ले जाते हैं। मूर्ति को निकालते समय जुलूस के लोग विभिन्न प्रकार के संगीत-वाद्यों के साथ-साथ भजन गाते रहते हैं। नदी में मूर्ति-विसर्जन के बाद पर्व समाप्त होता है।

---

* तीखुर एक जंगली पौदे की, जो समीपवर्ती वनों में बहुतायत से पाया जाता है, जड़ होती है। कबायली लोग जड़ों को खोद कर स्वच्छ करते और सुखाते हैं और तब पीसते हैं। व्रत के दिन आटे से खाद्य पदार्थ तैयार किए जाते हैं।

करमा—इस पर्व का यह नाम इसलिए है कि इस दिन करमा वृक्ष की पूजा होती है। यद्यपि यह पर्व मुख्यतः स्त्रियों के लिए है, पुरुषों के भाग लेने के भी उदाहरण हैं। पर्व को मनाने वाले सारे दिन व्रत रखते हैं। सायंकाल स्त्रियाँ समूहों में एकत्रित होकर देवी-देवताओं की स्तुति के गीत गाती हैं। आँगन का एक भाग स्वच्छ किया जाता और गोबर से लीपा जाता है और वहाँ करमा वृक्ष की टहनी गाड़ी जाती है। उच्चवर्ण के लोग पूजा कराने के लिए पंडित को बुलाते हैं जब कि निम्नवर्ण के लोग स्वयं पूजा करते हैं। पूजा के बाद हवन होता है। स्त्रियाँ इस पर्व को विशेषतः अपने पतियों, पुत्रों और भाइयों के कल्याण के लिए तथा सामान्यतः समस्त संसार के कल्याण के लिए मनाती हैं।

अनन्त चौदस—सदा की भाँति स्वच्छता पर अधिक बल देते हुए प्रातःकाल पर्व का आरम्भ होता है। घर बुहारे जाते हैं और सामान्यतः इस दिन हर कोई स्नान करता है। पूजा समाप्त होने तक ग्रामवासी व्रत रखते हैं। बटा हुआ और चौदह गाँठों वाला सूत का एक टुकड़ा विष्णु भगवान को चढ़ाया जाता है और एक चौरी पर खीरे के एक टुकड़े के साथ रख दिया जाता है। चौकी पर रखी सामग्रियाँ परिवार के सभी सदस्यों द्वारा पूजी जाती हैं और तब सुरक्षा के चिह्नस्वरूप पतियों की बाँहों में सूत के टुकड़े बाँधे जाते हैं। यह शुचिता प्रदान करने वाला पर्व होता है। इसे उपासकों को शुद्ध करने तथा संसार से पाप कम करने के लिए मनाते हैं। इस दिन विष्णु और शेषनाग दोनों की उपासना होती है।

जिउतिया—यह भी उन पर्वों में है जिसे केवल स्त्रियाँ मनाती हैं। सारे दिन स्त्रियाँ व्रत रखती हैं और रात में जिउमूतबाहन राजा की पूजा करती हैं।

दशहरा—दशहरा का जिसे विजयदशमी भी कहते हैं दुहरा महत्व है। अधिकांश लोगों का मत है कि इस दिन राम ने रावण पर विजय प्राप्त की थी जिससे राक्षसों पर देवों के इस विजय की स्मृति में इस पर्व को मनाया जाता है। अन्य लोगों का विश्वास है कि वस्तुतः इस दिन राम ने रावण पर विजय नहीं पाई थी वरन् रावण के राज्य लंका की ओर राम की सेना ने प्रस्थान किया था। इस पर्व की दूसरी पौराणिक गाथा का सम्बन्ध देवी दुर्गा से है जिन्होंने इस दिन महिषासुर का वध किया था। दशहरा के अवसर पर ग्रामवासी बिस्तर के पास कुछ दही और उसमें चाँदी का एक सिक्का रखते हैं क्योंकि ऐसा विश्वास है कि दशहरा के दिन प्रातःकाल यदि वे सर्वप्रथम उस सिक्के को देखें तो उनका भाग्य अच्छा रहेगा। पौ फटने पर लोग स्नान कर नीलकंठ देखने जाते हैं (उस दिन यदि नीलकंठों का जोड़ा दिखाई दे जाय तो उसे राम-सीता मानते हैं)। कुलदेवताओं को दही चढ़ाई जाती है और बाद में उसे खाते हैं। विशेष पकवान तैयार किए जाते हैं क्योंकि

यह एक ऐसा दिन है जब मित्र और सम्बन्धी एक दूसरे के घर जाते और एक साथ भोजन करते हैं। जब छोटे बड़ों से मिलते हैं तो वे आदर व्यक्त करने के लिए उनका चरण-स्पर्श करते हैं और समवयस्क लोग मिलने पर 'नमस्कार' कहते हैं। निम्न-वर्ण लोग उच्चवर्णों के घर जाते हैं किन्तु इसका उल्टा नहीं होता। चमार 'त्योहारी' लेने के लिए, जो द्रव्य या प्रकार अथवा दोनों मे होती है, उच्चवर्णों के घर जाते है।

पक्ष के प्रथम दिन से नवें दिन तक पंडित दुर्गापूजा करते हैं। तीसरे दिन पंडित गोबर से लीपे हुए स्थान पर कुछ जौ के दाने बोते हैं। पास में जल से भरा घड़ा रखते हैं। उस स्थान को प्रति दिन सींचा जाता है जब तक कोमल अँखुए ऊपर न निकल आयें। दसवें दिन अर्थात् दशहरा को वे अपने जजमानों के कानों में जौ की कुछ पत्तियाँ रखते हैं। इसके बदले में उन्हें कुछ द्रव्य दिया जाता है जो कभी एक आने से अधिक नहीं होता। जब रामायण के विशेष पाठ का आयोजन होता है पड़ोसियों को किसी देवस्थान पर एकत्रित होने और भजन गाने के लिए निमंत्रित किया जाता है। सायंकाल ग्रामवासी दुद्धी में रामलीला देखने जाते हैं। इस दिन लोग अपनी प्रतिस्पर्धाओं और शत्रुताओं को भूल कर सभी को मित्रवत् देखते हैं। रामलीला नाटक में रावण का पतन दिखलाया जाता है। यह प्रति-वर्ष तहसील के अहाते में दस दिन तक होता है। उसका व्यय चन्दे द्वारा पूरा किया जाता है। दसवें दिन अर्थात् दशहरा को रावण का पुतला जलाया जाता है। हर कोई पुतले की राख पाने के लिए उत्कंठित रहता है क्योंकि मानते हैं कि वह दुष्ट प्रेतों को घर में प्रवेश करने से रोकती है। रात में झाड़-फूँक करने वाली स्त्रियाँ और ओझा लोग अपने देवी-देवताओं के आवाहन की विद्या को जगाते हैं।

'पित्र बिसर्जन'—'पित्र बिसर्जन' 'पित्र पाख' का अंतिम दिन है। 'पित्र पाख' कुआर का प्रथम पक्ष है। १४ दिनों का यह काल पितरों की स्मृति में अलग कर दिया जाता है और हर दिन पितरों को जल तर्पण किया जाता है। इस पक्ष में किसी देवी-देवता की पूजा नहीं होती। इसके अतिरिक्त ये दिन शोक के दिन माने जाते हैं, अतएव इस काल में विवाह या ऐसा कोई अन्य उत्सव नहीं होता।

संयुक्त परिवार में केवल ज्येष्ठ पुत्र पितरों को जल तर्पण करता है। अन्य परि-वारों में सभी पुत्र तर्पण करते हैं। जिन्हें जल तर्पण करना होता है वे तर्पण करने के पूर्व कुछ नहीं खाते। जल-तर्पण एक विशेष रीति से होता है। तर्पण करने वाला व्यक्ति पहले कुँयें पर या नदी में स्नान करता है। फिर वह दाहिने हाथ की उँगली में कुश की पैंती पहनता है। दक्षिण की ओर मुख कर वह अंजुली में जल, तिल, अक्षत और पुष्प लेता है। पंडित मंत्रपाठ करता है और वह व्यक्ति जल नीचे गिराता है। ठाकुर लोग मंत्रपाठ स्वयं करते हैं। वे पंडित को केवल 'सराध'

(श्राद्ध) के दिन जल-तर्पण की क्रिया के लिए बुलाते हैं। परिवार की मर्यादा के अनुसार पाँच से ले कर बीस पंडितों को इस अवसर पर पितरों के नाम पर भोजन कराया जाता है। धनहीन व्यक्ति केवल अपने पुरोहितों को भोजन, 'सीधा' या कोई अन्य उपहार देते हैं। 'पंडिताइन' को भी माँ और सास के नाम पर भोजन कराया जाता है। अपने सदाचार के अनुसार पंडित कुछ जातियों से पकाया हुआ भोजन नहीं ग्रहण करते वरन् 'सीधा' ले कर स्वयं पकाते हैं। पक्ष भर मांस, मछली, मदिरा, प्याज़, लेहसुन और लौकी नहीं खाई जाती, कपड़े नहीं धुलाए जाते, न लोग बाल व दाढ़ी बनवाते हैं और न तेल का प्रयोग करते हैं। अंतिम दिन 'पित्र बिसर्जन' की अंतिम विधि होती है। पितरों को विसर्जित करने के उपरान्त पकवान तैयार किए जाते हैं और ब्राह्मणों को भोजन तथा कुछ दक्षिणा दी जाती है। चमार और कबायली 'पित्र पाख' नहीं मनाते।

दीवाली—गाँव में दीवाली एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पर्व है। इसके पौराणिक माहात्म्य का सम्बन्ध फिर राम कथा से है। इस दिन भगवान राम रावण को परास्त करने के बाद विजयी हो अयोध्या लौटे थे। इस दिन का महत्व धन की देवी लक्ष्मी के कारण भी है जिनकी सभी जातियाँ पूजा करती हैं। इसीके सम्बन्ध में कलवारों को छोड़ अन्य सभी जातियाँ समृद्धि की प्रतीक गाय की पूजा करती हैं। इसके अतिरिक्त यह एक अन्य रात्रि है जब ओझा अपने देवताओं का आवाहन करते हैं। एक ग्रामवासी ने बतलाया कि घर-आँगन को भलीभाँति इसलिए स्वच्छ करते हैं कि पर्व के पूर्व वर्षा ऋतु में घर बहुत गन्दे-से हो जाते हैं। एक पक्ष पूर्व फ़र्श साफ़ की जाती और दीवारों पर सफ़ेदी की जाती है या उन पर मिट्टी लेपी जाती है। सुगन्ध देने और वातावरण को दुर्गन्धमुक्त करने के लिए घी के दीये जलाए जाते हैं। सभी लोगों का विश्वास है कि जो दीवाली में अपने घरों की सफ़ाई और पुताई नहीं करते वे वर्ष भर रोगग्रस्त रहते हैं।

दीवाली के एक दिन पूर्व सामान्यतः परिवार की वृद्धतम स्त्री घर के सबसे दक्षिणी भाग में घी का एक दीया रखती है क्योंकि दक्षिण में मृत्यु के देवता यम का निवास है। इस दीये की झलक पाना भी अशुभ माना जाता है और घर का प्रत्यक प्राणी इसे देखने से बचाता है।

दीवाली के दिन तड़के घरों की फ़र्शें और दीवारें दुबारा गोबर से लीपी जाती हैं। कलवार सारे दिन व्रत रखते हैं। सायंकाल मिट्टी के दीये ताज़े पानी से धोए जाते और एक स्थान पर जमा किए जाते हैं। छः दीयों में घी भर कर उन्हें जला देते हैं। एक कुलदेवता के सामने रखा जाता है, दूसरा शिव देवस्थान में, तीसरा कुँयें पर, चौथा तुलसी के पौदे के सामने, पाँचवाँ गोष्ठ अर्थात् घारी और छठा घूरे पर।

अन्य दीये—सरसों के तेल के—जला कर घर के विभिन्न स्थानों में रखे जाते हैं। कलवार लोग तिजोरियों और उन सभी बक्सों पर जिनमें द्रव्य और आभूषण रखे रहते हैं मोमबत्तियाँ जला कर रखते हैं। वे पंडित को लक्ष्मीपूजा करने के लिए भी बुलाते हैं जब कि अन्य जातियों के लोग स्वयं पूजा कर लेते हैं।

जब विभिन्न स्थानों पर दीये जला दिए जाते हैं लोग गायों की पूजा करने जाते हैं। उनके सिरों और सींगों पर घी लगाया जाता है। बैलों के सिरों पर भी घी लगाते हैं और उनकी सींगों पर हल्दी और तेल का लेप। उन्हें विशेष भोजन दिया जाता है जिसमें खली, दाल और नमक होता है। पूजा के बाद ग्रामवासी धान की खील और बताशों का प्रसाद बाँटते हैं।

दीवाली की रात में जुए का बहुत प्रचार है जिसमें उच्चवर्णों की अपेक्षा निम्न-वर्ण अधिक भाग लेते हैं। दीवाली के अगले दिन अन्नकूट मनाते हैं। घुरिआँव (पशुओं के देवता) के चढ़ावे के लिए ग्वाले गाँव के हर घर में जा कर चन्दा लेते हैं। चढ़ावा मुर्गे या सुअर का होता है। प्रातःकाल स्त्रियाँ नए कटे धान को कूटती हैं। कूटते समय वे अपने भाइयों की दिल्लगी करते हुए गाली गाती हैं। फिर वे रंगनियाँ (भटकटैया) के पौदों के काँटे अपनी जीभों में चुभाती हैं और यह कहती जाती हैं कि जिस जीभ से ऐसे गन्दे शब्द निकले उसे (काँटे से) चुभाना ही उचित है और जिस मुख से ऐसे अश्लील गाने निकले उसका सड़ जाना उचित है। अन्नकूट उत्सवों की समाप्ति का द्योतक है।

कार्तिक छठ—पुत्र पाने की इच्छुक स्त्रियाँ कार्तिक के प्रथम पक्ष की षष्ठी को मनाती हैं। विश्वास है कि सूर्य देव की पूजा करने से उनकी इच्छा की पूर्ति होगी। सामान्यतः उच्चवर्ण की स्त्रियाँ ही कार्तिक छठ मनाती हैं। पर्व के एक दिन पूर्व वे लकड़ा नदी में स्नान करती और सारे दिन व्रत रखती हैं। सायंकाल वे दुबारा स्नान कर शिव के एक देवस्थान पर जल चढ़ाती हैं। जिन स्त्रियों की इच्छायें पूरी हो गई हैं वे सूर्य देव को पहले से मानी हुई मनौती चढ़ाती हैं। शिव और सूर्य देव की पूजा के बाद वे घर लौटती और खीर और पूड़ी से व्रत तोड़ती हैं। वे नमकरहित पक्का भोजन ग्रहण करती हैं। सूर्यास्त के एक घंटा पूर्व बड़हर, शकरकन्द, अमरूद, बेर और चावल से बने पदार्थों का चढ़ावा ले कर लकड़ा नदी के तट पर एकत्रित होती हैं। सूर्यास्त होते समय ये वस्तुयें सूर्य को अर्पित की जाती हैं और पंडित मंत्रपाठ करता है। दो-तीन घंटों तक भजन-कीर्तन होता है। पुत्र के लिए सूर्य देव की विशेष प्रार्थना की जाती है। फिर वे घर लौटती हैं जहाँ उनके लिए एक कमरा स्वच्छ कर तैयार किया रहता है। उन स्त्रियों के अतिरिक्त जिन्होंने व्रत रखा है और प्रार्थना की है कोई अन्य व्यक्ति उस कमरे में नहीं जा सकता। वे लाल या

पीले रंग के नए वस्त्र पहनती हैं। स्त्रियाँ उस कमरे में सोती भी हैं किन्तु गद्दा, तकिया या रज़ाई का प्रयोग नहीं कर सकतीं। खाट भी नहीं प्रयुक्त होती और कुछ स्त्रियाँ लकड़ी की चौकियों पर सोती हैं।

रात में स्त्रियाँ बेर, शरीफ़ा, अमरूद, शकरकन्द, चावल और गेहूँ से बने पदार्थों जैसे पूड़ी और मालपूआ का प्रसाद तैयार करती हैं। इस अवसर पर काले रंग की हर वस्तु को कड़ाई से बचाते हैं। स्त्रियाँ काले वस्त्र नहीं पहनतीं न काजल लगाती हैं। वे भैंस के दूध तक का उपयोग नहीं करतीं। तिल का कोई पदार्थ नहीं तैयार किया जाता। प्रसाद तैयार करने के लिए लाल या भूरे रंग का गेहूँ प्रयुक्त होता है। सूर्योदय होने पर लकड़ा नदी पर सूर्य देव को प्रसाद भेंट किया जाता है। जब स्त्रियाँ सूर्य के आगे झुक कर चढ़ावा देती हैं पंडित मंत्रपाठ करते हैं। सूर्य देव की प्रार्थना करती हुई वे जल में एक घंटे तक रहती हैं और तब घर लौटती हैं जहाँ प्रसाद-वितरण के उपरान्त पर्व समाप्त होता है।

इस अवसर पर मंत्रपाठ करने वाले हर पंडित को द्रव्य दिया जाता है, अधिक से अधिक बीस आने और कम से कम पाँच पैसे। इस प्रकार इस दिन एक पंडित ५–६ रु. कमा लेता है। नदी पर जाते समय स्त्रियों के साथ ढोल-मँजीरा बजाते हुए चमार भी रहते हैं। छठ की रात को चमार अपने 'जजमानों' के घर सोते हैं। अपनी सेवाओं के उपलक्ष्य में उन्हें सायंकाल और प्रातःकाल भोजन तथा द्रव्य, लगभग डेढ़ रुपए, दिए जाते हैं।

मकर संक्रांति—यह पर्व खरवास काल के अन्त का द्योतक है जो किसी नए काम के लिए बहुत अशुभ माना जाता है। इस मास में कोई मकान नहीं खड़ा किया जाता, यात्रा नहीं की जाती, उत्सव नहीं होता, महत्वपूर्ण कार्य या व्यवसाय नहीं होता और विवाहिता कन्याओं को न्योता नहीं भेजा जाता। प्रारम्भ में केवल उच्चतर जातियाँ इन निषेधों का पालन करती थीं किन्तु हाल में निम्नतर जातियाँ भी, जिनका विश्वास है कि इस काल में कोई अच्छी बात नहीं हो सकती, उच्चतर जातियों की भाँति सभी नियमों और प्रतिबन्धों का पालन करने लगी हैं। परन्तु कबायली लोग अब भी खरवास काल को कोई महत्व नहीं देते।

मकर संक्रांति के दिन खरवास के दिनों के बुरे प्रभावों को धुलने के लिए ग्रामवासी भलीभाँति स्नान करते हैं। समर्थ व्यक्ति गंगास्नान के लिए वाराणसी जाते हैं। स्नानोपरान्त प्रकार और द्रव्य में पुरोहित को दक्षिणा दी जाती है। घर लौटने पर लोग केवल खिचड़ी और तिलवस खाते हैं। सायंकाल भजन के बाद उत्सव समाप्त होते हैं। कुछ लोग सत्यनारायण कथा सुनते हैं।

बसन्त पंचमी—यह पर्व वसन्तागमन का द्योतक है परन्तु अन्य स्थानों के विपरीत यहाँ पर बहुत कम लोग पीले वस्त्र पहनते हैं। प्रातःकाल ग्रामवासी लकड़ा नदी में स्नान करते और तब शिव को जल और पुष्प चढ़ाते हैं। कुछ ग्रामवासी व्रत रखते और केवल फलाहार करते हैं। व्रत रखने वाले लोग कथा सुनते और भजन-कीर्तन करते हैं। सारे दिन शिव की पूजा होती है।

होली—होली संभवतः गाँव का सबसे महत्वपूर्ण पर्व है। इस पर्व के पीछे कथा यह है कि प्राचीन काल में मथुरा में 'हरनाकुश' या 'हरनाकश्यप' नामक एक शक्तिशाली तथा अत्याचारी राजा था। वह नास्तिक था जब कि उसकी प्रजा रामभक्त थी। उसने घोषित कर रखा था कि उसके राज्य में कोई रामनाम भी नहीं ले सकता। इसके विपरीत लोगों को उसकी पूजा करनी होगी क्योंकि वह उन्हें भोजन-वस्त्र देता था। राजाज्ञा सभी को सुना दी गई और सभी उल्लंघनकारियों को फाँसी दे दी गई। इस प्रकार उसकी क्रूरता के कारण लोग उसकी पूजा करने को बाध्य हुए और अनेक व्यक्ति रामनाम भूल बैठे। परन्तु राजपुत्र प्रह्लाद ने पिता की अवज्ञा की। पिता की धमकियों के होते हुए भी वह रामपूजा करता रहा। बन्दी बन जाने पर भी उसने रामपूजा जारी रखी। तब 'हरनाकुश' ने आज्ञा दी कि प्रह्लाद को एक पहाड़ी पर से नीचे फेंक दिया जाय। आज्ञापालन हुआ किन्तु प्रह्लाद जीवित रहा। तब उसे फाँसी दी गई परन्तु वह मरा नहीं। इसके बाद वह एक पागल हाथी के सामने छोड़ दिया गया किन्तु हाथी ने उसे घायल नहीं किया। उस पर विषधर सर्प छोड़े गए किन्तु व्यर्थ। तब राजा की बहिन होलिका अपने भाई की सहायतार्थ आगे आई। उसे देवों का वरदान प्राप्त था कि अग्नि उसे जला नहीं सकती। उसने प्रह्लाद को मारने का उत्तरदायित्व स्वयं सँभाला। फागुन पूर्णमासी को लकड़ी के बड़े-बड़े लट्ठे जमा किए गए। प्रह्लाद को गोद में ले कर होलिका उन लट्ठों पर बैठी। लट्ठों में आग लगाई गई। प्रत्येक व्यक्ति की आशा के विपरीत होलिका जल मरी और 'राम, राम' कहता हुआ प्रह्लाद अग्नि से बाहर निकल आया। इस प्रकार रामभक्त प्रह्लाद की विजय को मनाने तथा दुष्टा होलिका की निन्दा करने के हेतु होली मनाते हैं। होली नाम होलिका पर पड़ा है। अतएव होली की आग को जलाते समय लोग होली की निन्दा करते हुए 'कबीर' और गालियाँ गाते हैं। कथा का आगे का वर्णन यह है कि अपनी बहिन की मृत्यु तथा प्रह्लाद के जीवित रहने का समाचार सुनने पर 'हरनाकुश' ने स्वयं इस काम को करने का निश्चय किया। उसने आज्ञा दी कि लोहे के एक खम्भे को भलीभाँति तपाया जाय और प्रह्लाद उससे चिपट कर खड़ा हो। परन्तु फिर प्रह्लाद बच रहा क्योंकि उसके पकड़ने पर वह बिलकुल ठंडा हो गया। यह देखकर 'हरनाकुश'

तलवार निकाल कर उस पर झपटा परन्तु उसी क्षण लोहे के खम्भे से नरसिंह रूप में राम प्रकट हुए और उन्होंने पंजों से 'हरनाकुश' का वध कर अपने भक्त को गले लगाया। इसके बाद लोग भगवान राम की पूजा करने लगे।

कुछ ग्रामवासियों का मत है कि होली के द्वारा वसन्त के अन्त को मनाते हैं और इसीलिए रंग खेलते हैं। ग्रामवासियों में होली का लोकप्रिय नाम फागुन मास के नाम पर फगुआ है। होली के प्रारम्भिक कार्यकलाप बसन्त पंचमी के पर्व से आरम्भ हो जाते हैं जब इस अवसर के विशेष गीत फाग और होली गाए जाते हैं। गाँव की सभी जातियों और वयस्-समूहों के लोग इन फागों को गाते हैं। विभिन्न टोलों में टोले-टोले के निवासी फाग की बैठक कराते हैं। कोई जातिभेद नहीं बरता जाता। सभी जातियों के लोग साथ-साथ बैठ कर गाते हैं। मध्यस्थित शिव देवस्थान पर कभी-कभी फाग की बड़ी बैठक होती है। सामान्यत: यह रात में बैठती है। इस बैठक में विभिन्न जातियों के लोग भाग लेते हैं किन्तु निम्नतर जातियों के लोग उच्चतर जातियों से दूर बैठते हैं। उच्चतर जातियों के लोग देवस्थान के चबूतरे पर बैठते हैं और निम्नतर जातियों के लोग भूमि पर। ढोल, मँजीरा और खँजड़ी की धुन पर फाग गाए जाते हैं। ये बैठकें एक-एक बार में दो-तीन घंटों तक चलती हैं। आजकल ऐसी बैठकें कम ही होती हैं क्योंकि ग्रामवासियों को अधिक अवकाश नहीं रहता। पहले जब ग्रामवासियों की आर्थिक दशा अधिक अच्छी थी और वे अधिक धार्मिक थे, अधिक संख्या में फाग की बैठकें होती थीं।

होली के वास्तविक दिन के लगभग एक सप्ताह पूर्व होलिका के प्रतीक सेमर के वृक्ष को काटा जाता है। सेमर के एक ऐसे वृक्ष को चुना जाता है जिसमें एक ही स्थान से डालें निकली हों। गाँव के पुरोहित द्वारा पूर्वघोषित शुभ लग्न पर सोमवार, मंगलवार या शुक्रवार सदृश किसी शुभ दिन को वृक्ष काटा जाता है। सेमर के वृक्ष के काटने को 'सम्बत काटना' कहते हैं क्योंकि अगला दिन 'सम्बत' (संवत् अर्थात् नववर्ष का प्रथम दिन) होता है। वृक्ष के कटने को ग्रामवासी देखते हैं, फाग और 'कबीर' गाते हैं और जब डाल गिरने लगती है वे चिल्लाते हैं 'होली है' तथा और 'कबीर' गाते हैं। फिर डाल को उस स्थान पर ले जाते हैं जहाँ होली जलाई जाने वाली होती है। वहाँ एक गड्ढा खोदा जाता है और पंडित द्वारा हवन करने के बाद डाल को गड्ढे में रखते हैं। कपड़े के एक टुकड़े में एक पैसा और एक सुपाड़ी बाँध कर साथ में रखते हैं। अगले दिन से लोग लकड़ी और खर्‌ह जमा करने लगते हैं जिनका ढेर सम्बत की डाल के पास बनाते हैं। ईंधन जमा करने में युवक बहुत अधिक उत्साह दिखाते हैं और बिना जातिभेद के साथ-साथ समूहों में जाते हैं।

होली के दो-तीन दिन पूर्व घर स्वच्छ किए जाते हैं। यह काम स्त्रियाँ करती हैं जब कि पुरुष रबी की फ़स्ल काटने में व्यस्त रहते हैं। होली के तीन दिन पूर्व उच्चतर जातियों की स्त्रियाँ और कुमारियाँ गोबर से 'बरिला' बनाती हैं। इनके मध्य में छेद रहते हैं और ये विभिन्न प्रकार के रोगों से रक्षा करते हैं। कुछ बरिलों को पशुरोगों को दूर करने के हेतु सिन्दूर में रँग कर गोष्ठ में लटका देते हैं। होली के प्रातःकाल घर दुबारा स्वच्छ किए जाते हैं और फ़र्श पर गोबर लीपा जाता है। दिन में लोग घर के काम-धन्धे करने के अलावा फाग की बैठकों में सम्मिलित होते हैं। अपराह्न में उच्चतर जातियों के लोग भाँग छानते हैं। निम्नतर जातियों के लोग शराब लेने के लिए दुद्धी की भट्ठी को जाते हैं। होली उच्छाह का पर्व है और लोग हँसी-दिल्लगी, गाने और मद्यपान द्वारा आनन्द मनाते हैं। मद्य की माँग इतनी अधिक होती है कि वह पूरी नहीं हो पाती।

विशेष लग्न पर होली जलाने के लिए पंडित किसी व्यक्ति को नियुक्त करता है। उसके पूर्व सभी ग्रामवासी उबटन से निज को स्वच्छ करते हैं। फिर हर परिवार का हर पुरुष प्रयुक्त उबटन, बरिले और गेहूँ या जौ की कुछ बालियाँ ले कर होलिका के स्थान पर जाता है। उबटन और बरिले आग में फेंक दिए जाते हैं और गेहूँ या जौ को भून कर बच्चों को देने के लिए घर ले जाते हैं जिससे रोगों से उनकी रक्षा हो सके।

होली जलाने के ठीक पूर्व ग्रामवासी समूहों में एकत्रित हो 'कबीर', फाग और गीत गाते हुए गाँव का चक्कर लगाते हैं। उनमें कुछ संगीत-वाद्य बजाते रहते हैं। रह-रह कर वे 'होली है' चिल्लाते हैं। इन समूहों में बच्चे भी सम्मिलित होते हैं किन्तु स्त्रियाँ नहीं क्योंकि मद्य के प्रभाव में पुरुष अपने ऊपर नियंत्रण खो बैठते हैं। प्रति वर्ष अपना 'पत्रा' देख कर पुरोहित कुछ 'राशि' नाम (नक्षत्रों की गति के अनुसार शिशु को उसके जन्म पर दिया जाने वाला नाम) घोषित करता है और बतलाता है कि इन नामों वाले व्यक्तियों का होली जलते हुए देखना अशुभ है। होलिका के जलते ही लोग फिर 'कबीर' और गालियाँ गाते हैं। फिर वे पाँच बार अग्नि की परिक्रमा करते हैं जिसे 'पंच कैमा' अथवा मृतक की पाँच बार परिक्रमा कहते हैं क्योंकि होलिका चिता की प्रतीक भी है। वे एक दूसरे से कुछ हट कर चलते हैं जिससे उनके पैर परस्पर स्पर्श न करें। कुल-देवताओं या देवियों की पूजा करने वाले लोग पक्ष भर जिसके अंतिम दिन होली पड़ती है कड़ाही का प्रयोग नहीं करते। अगले दिन पूजा करने और देवी देवताओं को मानी गई मनौतियों को पूरी करने के बाद वे कड़ाही का प्रयोग कर सकते हैं और इस प्रकार होली के अगले दिन पक्का भोजन तैयार होता है।

होली का अगला दिन 'धुरारी' कहलाता है क्योंकि इस दिन ग्रामवासी होली जलने के स्थान पर जाते हैं और राख को वायु में बिखेर कर 'धूल उड़ाने' की रस्म को पूरी करते हैं। प्रातःकाल पूजा की तैयारियाँ होती हैं। सामान्यतः तीन वर्ष में एक बार कुलदेवताओं को बलि दी जाती है जब कि अन्य वर्षों में साधारण पूजा होती है। साधारण पूजा में 'सकला' (घी, जौ और अन्न अन्य) चढ़ाया जाता है। बकरा या मुर्गा चढ़ाना हो तो हर परिवार के लिए उसका रंग निश्चित है। उच्चतर जातियाँ बकरे और निम्नतर जातियाँ और कबायली मुर्गे चढ़ाते हैं। देवताओं को विशेष रंग चढ़ाए जाते हैं और फिर उन्हें एक दूसरे पर डालने के लिए प्रयुक्त करते हैं। पूजा के बाद पुरुष समूहों में सम्मिलित हो कर फाग और 'कबीर' गाते हैं। होली जलाने वाला प्रथम पुरुष उनके मस्तकों पर राख लगाता है और पुरुष अपने सारे शरीर पर राख मलते हैं। फिर 'कबीर' गाया जाता है। उच्चतर जातियों के लोग निम्नतर जातियों के लोगों के नाम पर 'कबीर' गाते हैं। निम्नतर जाति वाले बदला नहीं ले सकते, अतएव उनकी गालियाँ स्वजातीयों तक सीमित रहती हैं। कभी-कभी उच्चतर जातियों के लोग निम्नतर जातियों की स्त्रियों को बहुत अश्लील ढंग से गालियाँ देते हैं। फिर अबीर-गुलाल और रंग का खेलना आरम्भ होता है। ग्रामवासी इसमें बहुत अधिक उत्साह से भाग लेते हैं यद्यपि जाति-विचार उन्हें सन्तुलित रखता है। ब्राह्मण और ठाकुर सभी जातियों पर रंग डाल सकते हैं परन्तु चमार स्वजातीयों के अतिरिक्त किसी अन्य पर रंग नहीं डाल सकते। परन्तु आजकल अपेक्षाकृत अधिक शिथिलता है और ठाकुर लोग निम्नतर जातियों द्वारा रंग लगवाने की ओर झुक रहे हैं। पृष्ठ १६१ और पृष्ठ १६२ के समाज-चित्रों में प्रथम यह व्यक्त करता है कि परम्परानुसार किन जातियों को ठाकुरों पर रंग डालने का अधिकार है। दूसरा वर्तमान स्थिति को व्यक्त करता है।

दुद्धी में माझियों को उच्चतर जाति के लोगों पर रंग डालने की अनुमति है किन्तु चितौरा में नहीं। निम्नवर्ण व्यक्ति की सामाजिक स्थिति पर बहुत कुछ निर्भर रहता है। इस प्रकार गाँव के भूतपूर्व सपुरदार माझी उच्चवर्ण लोगों से होली खेल सकते हैं। रंग खेलते समय वे परस्पर शुभ होली की कामना करते हैं और समान सामाजिक मर्यादा के लोग परस्पर तीन बार गले मिलते और मस्तक पर गुलाल लगाते हैं। ठाकुर स्वजातीयों, ब्राह्मणों और कलवारों को गले लगा सकता है। चमार केवल स्वजातीयों को गले लगा सकता है। जब कोई चमार या कबायली उच्चतर जाति वालों के घर जाता है तो 'राम राम' कह कर कुछ दूरी पर बैठता है। आतिथेय उसे कुछ रंग देता है जिसे वह स्वयं अपने मस्तक पर लगा लेता है। परन्तु ये सामाजिक भेदभाव द्रुत गति से समाप्त हो रहे हैं और इस वर्ष कुछ चमारों ने भी ठाकुरों के मस्तकों पर रंग लगाए।
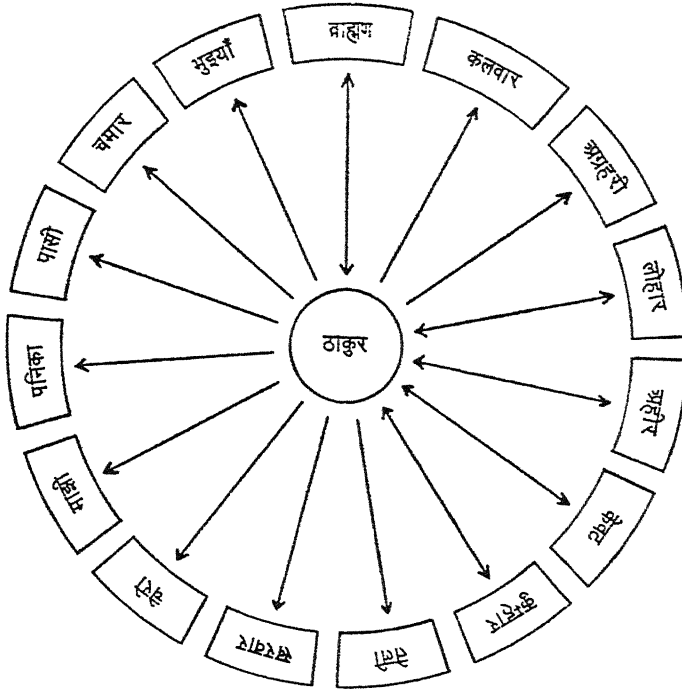
१५ वर्ष पूर्वकी स्थिति—तीरों द्वारा रंग डालने का परम्परागत अधिकार व्यक्त किया गया है।

रंग खेलना सायंकाल देर तक चलता रहता है। फिर ग्रामवासी फाग गाते हुए अधिकारियों से मिलने दुद्धी जाते हैं। पहले वे तहसीलदार के पास जाते हैं जो सबसे महत्वपूर्ण अधिकारी माना जाता है। वे उस पर रंग डालते हैं और 'होली है' कहते हैं। वह पान, तम्बाकू और बीड़ी से उनका सत्कार करता है। फिर वे थानेदार और पुलीस के सिपाहियों से होली खेलने थाने जाते हैं और बाद में हर अन्य अधिकारी के पास। तदुपरान्त ग्रामवासी दुद्धीस्थित अपने सभी मित्रों और सम्बन्धियों से मिलते हैं।

'धुरारी' के अगले दिन दुद्धी से १५ मील पूर्व नगर में वहाँ का राजा इस पर्व के उपलक्ष्य में शानदार खेल-तमाशा कराता है। इसमें भाग लेने के लिए वाराणसी से नर्तक-नर्तकियाँ बुलाई जाती हैं। समीपवर्ती गाँवों के लोग बहुत बड़ी संख्या में तमाशा देखने जाते हैं। नगर के राजा का लोकप्रिय नाम भैया साहब है। उच्चतर जातियों के लोग अपने मस्तकों पर रंग लगा सकते हैं। कृष्णजी की स्वर्ण-प्रतिमा के दर्शनार्थ ग्रामवासी रात वहीं बिताते हैं।
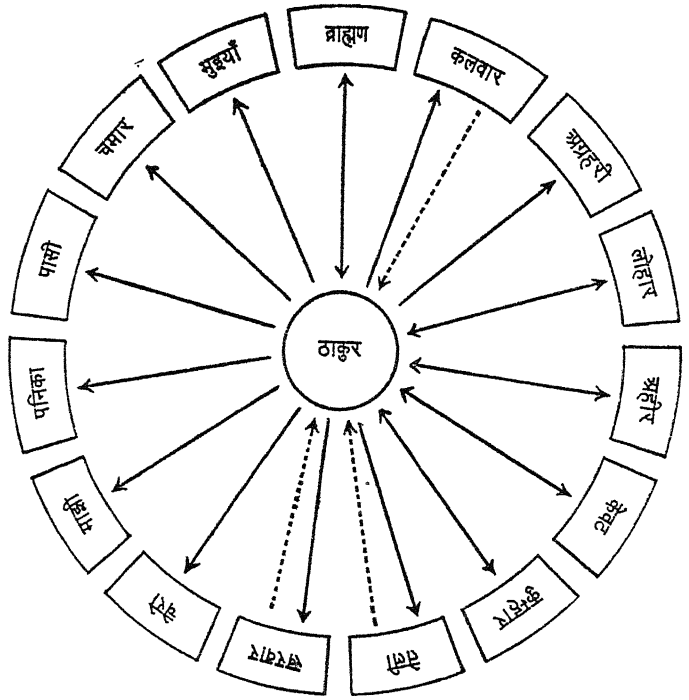
वर्तमान स्थिति—विन्दुओं से दिखाए गए तीर परिवर्तन को व्यक्त करते हैं।

भूत-प्रेतों में विश्वास और उनसे सम्बन्धित कथायें

ग्रामवासियों के अनुसार गाँव में कई भूत-प्रेत निवास करते हैं। इनमें कुछ प्रेतों की पूजा होती है। अतः गाँव में प्रेतों का एक पुजारी है जिसे 'बैगा' कहते हैं। ग्रामवासियों द्वारा पूजित एक प्रेत नन्हकू माझी है। गाँव के प्रथम सपुरदार नन्हकू माझी से सम्बन्धित मनोरंजक कथाओं में लोगों का विश्वास है। लगभग ७० वर्ष पूर्व उसकी मृत्यु हुई। गाँव के उत्तरी ओर उसके ही एक बाग में उसका 'देवस्थान' है।

साधारण विश्वास है कि नन्हकू में दैवी शक्तियाँ थीं। वह ग्रामवासियों के प्रति दयालु था किन्तु यदि कोई उसे रुष्ट करता तो वह दोषी व्यक्ति को शाप दे सकता था जिससे वह विशूचिका या चेचक जैसे रोग से ग्रस्त हो जाय। क्रोध शांत

होने पर वह क्षमा कर देता और शाप वापस ले लेता था। ग्रामवासियों का उसमें इतना अधिक विश्वास था कि जब भी वर्षाभाव या महामारी हो वे नन्हकू के पास जाते और वह सदा सब कुछ ठीक करने में समर्थ होता था।

नन्हकू की दैवी शक्तियों के विषय में विभिन्न कथायें प्रचलित हैं। एक बार एक बैगा ने दावा रखा कि वह नन्हकू माझी की अपेक्षा अधिक सिद्ध है। इस पर नन्हकू ने उससे कुछ सूखी घास को हवा फूँक कर जलाने को कहा। तमाम प्रयत्नों के बावजूद बैगा असफल रहा। नन्हकू ने एक ही साँस में सारा खेत जला डाला। बैगा उस स्थान से भागा तो दुबारा उसने अपना मुँह नहीं दिखाया। एक अन्य कथा यह है कि नन्हकू सिंहों के साथ वैसे ही खेलता था जैसे कोई कुत्तों के साथ खेले। वह सिंहों को पुकारता और वे अकस्मात् प्रकट हो जाते मानों आकाश से टपक पड़े हों। वे आ कर उसके कंधों पर अपने पंजे रखते। कहा जाता है कि नन्हकू जब भी दुद्धी या अन्य किसी गाँव में जाता तो लोग बिना माँगे उसके झोले में सुपाड़ी-तम्बाकू रख जाते।

उसकी मृत्यु पर उसकी इच्छानुसार वह फलों के अपने बाग में गाड़ा गया। उसकी पत्नी भी मरने पर वहीं उसके पास गाड़ी गई। अब एक चबूतरा बना दिया गया है और सारे ज़िले के लोग इस देवस्थान पर उसकी पूजा करने आते हैं। ब्राह्मण तक उसकी पूजा करते हैं। तीन वर्षों में एक बार सावन में नन्हकू की पूजा होती है, उसकी कोई निश्चित तिथि नहीं है। चंदों के द्वारा व्यय पूरा होता है।

पूजा के दिन देवस्थान पर बकरे, मुर्गे, एक सुअर, देशी शराब की सात बोतलें, गाँजा, सुपाड़ी, तम्बाकू और मिठाइयाँ ले जाते हैं। तब लोग नन्हकू की आत्मा को जगाते और उससे उन सभी भूत-प्रेतों को बुलाने के लिए कहते हैं जिनसे ग्राम-वासी पीड़ित होते हैं। फिर नन्हकू का पौत्र संभल माझी या संभल का पुत्र हवन करता है। आम की लकड़ी और गोबर से छोटी-सी वेदी बनाई जाती है। होता उत्तर की ओर मुख कर के बैठता और गुड़-घी चढ़ाता है। हवन समाप्त होने पर वह 'अभुआने' लगता है मानों उसे मिर्गी का दौरा आ गया हो। विश्वास करते हैं कि नन्हकू की आत्मा उसके अन्दर प्रवेश कर गई है। फिर एक-एक कर लोग आगे आते हैं और उससे प्रश्न पूछते हैं या अपनी समस्यायें उसके सामने रखते हैं। वह नन्हकू माझी के नाम पर उत्तर और हल बतलाता है। यदि कोई व्यक्ति दुष्ट प्रेतों द्वारा पीड़ित हो तो नन्हकू से प्रार्थना की जाती है कि वह इन प्रेतों को डाँट-डपट दे। अन्ततः नन्हकू की आत्मा उच्च स्वर में कहती है कि दुष्टात्माओं

को चेतावनी दे कर भगा दिया गया है और चोरों को आज्ञा दे दी गई है कि ग्राम-वासियों को कष्ट न पहुँचायें। यदि समय बीतने पर प्रेत या चोर गाँव को तंग करें तो निष्कर्ष निकाला जाता है कि किसी ग्रामवासी ने नन्हकू की इच्छा के विरुद्ध काम किया है। ऐसी अवस्थाओं में भूरे रंग का बकरा या भूरे रंग का मुर्गा नन्हकू को चढ़ाया जाता है।

तदुपरान्त लोग जुलूस बना कर प्रेतों का पीछा करते हुए सारे गाँव में घर-घर जाते हैं। जंगली मैदानों और बागों में विशेष रूप से जाते हैं। हर स्थान पर जहाँ प्रेत निवास करते हों एक मुर्गा चढ़ाया जाता है जिसके रक्त पर शराब गिराई जाती है और उस स्थान पर लोहे की एक कील गाड़ देते हैं। इसी काम में सारी रात बिताई जाती है और प्रातःकाल वे वापस देवस्थान पर जाते हैं जहाँ एक बकरे को माला पहनाई जाती और उसकी पूजा की जाती तथा अन्त में बलि दी जाती है। इसके बाद नन्हकू की स्त्री को एक लाल मुर्गा चढ़ाया जाता है। होता बकरे और मुर्गे के मांस को ले जाता है। सभी उपस्थित जनों को प्रसाद बाँटा जाता है। नन्हकू की पूजा में जुलूस का नेतृत्व पंडित नहीं वरन् एक माझी करता है।

नन्हकू की पूजा समाप्त होने पर लोग 'महादानी' के देवस्थान पर जाते हैं। इस जुलूस का नेतृत्व एक बैगा करता है। महादानी ग्रामवासियों द्वारा पूजित एक अन्य प्रेतिनी है। उसे 'मलकिन' भी कहते हैं जिसका अर्थ है गाँव की शासिका। महा-दानी का देवस्थान गाँव के पश्चिमी ओर पीपल के एक वृक्ष के नीचे स्थित है। विश्वास है कि अच्छे-बुरे सभी प्रेत महादानी के प्रभाव में होते हैं। अतएव महादानी को मनाने वाले बैगा को स्वभावतः सभी भले प्रेतों से सहायता मिलती है और साथ ही वह दुष्ट प्रेतों से छुटकारा पाता है। ग्रामवासी तीन वर्षों में एक बार महादानी के पास जाते हैं। यह दिन सदा नन्हकू वाले दिन ही पड़ता है। आम की लकड़ी से बनाई वेदी पर हवन होता है और सारे समय बैगा इन शब्दों को दुहराता रहता है—"देवता आ आपन परसाद लइ जा, हमार रक्षा कर..." (देवता आओ, अपना प्रसाद ले जाओ और हमारी रक्षा करो)। गोबर के पिंड, गुड़ और घी अग्नि को चढ़ाए जाते हैं। हवन के समय बैगा का पूर्व की ओर मुख किए रहना अनिवार्य है। हवन समाप्त होने पर महादानी की आत्मा बैगा पर आधिपत्य कर लेती है और वह अभुआने लगता है। फिर ग्रामवासी, मुख्यतः निम्नवर्ण और कबायली, उससे प्रश्न पूछते हैं जिनके उत्तर वह महादानी के नाम पर देता है। कुछ लोग 'मौन' प्रश्नों के द्वारा बैगा की परीक्षा लेने की चेष्टा करते हैं। वे दाहिने हाथ में अक्षत ले कर बैगा से उन समस्याओं का, जिनका वे सामना कर रहे हैं, समाधान

करने को कहते हैं यद्यपि अधिकतर वह उनके सभी प्रश्नों के उत्तर नहीं दे पाता। फिर महादानी की आत्मा बैगा को छोड़ देती है और बैगा उसे कुछ प्रसाद चढ़ाता है। प्रसाद में प्रायः पूड़ी-मिठाई होती है। इसके बाद बकरी का एक बच्चा महादानी को चढ़ाया जाता है। उसके पैर भलीभाँति धोए जाते हैं और उसके माथे पर सिन्दूर लगाया जाता है। फिर उसे पानी में भिगोया हुआ चावल देते हैं। सामान्यतः बकरी का बच्चा इसे खा लेता है किन्तु यदि वह अस्वीकार करे तो निष्कर्ष निकालते हैं कि भेंट महादानी को अग्राह्य है। बकरी के बच्चे की बलि के समय बैगा की माँ और भाई पाँच गज़ लम्बे नए वस्त्र के टुकड़े से बैगा को अन्य लोगों की दृष्टि से दूर कर देते हैं। जब पशुबलि दी जाती है लोग उधर अपनी पीठ कर लेते हैं। कहा जाता है कि पहले बैगा कोई गाय चुनता था और उस पर अक्षत-पुष्प फेंकता था। तब गाय स्वयं देवस्थान का मार्ग ढूंढ निकालती थी और वहाँ जा कर महादानी की प्रतिमा के सामने प्राणत्याग करती थी। फिर लगभग ८० वर्ष पूर्व जब सम्पत महराज सपुरदार था उसने लोगों से गाय के स्थान पर बकरा चढ़ाने को कहा। परन्तु पशु को मरता हुआ न देखने की परम्परा अभी तक प्रचलित है। बकरे को मारते समय बैगा बायें हाथ से उसके मुख को पकड़ रखता है जिसमें वह शोर न करे। पर्दे के रूप में प्रयुक्त वस्त्र में मृत बकरे को लपेट कर एक कोने में डाल देते हैं।

एक अन्य प्रेत जिसके पास ग्रामवासी जाते हैं राजा महराज है जो महादानी के देवस्थान के समीप एक वृक्ष पर निवास करता है। राजा महराज सतयुग-कालीन एक ठाकुर राजा था जो दैवी शक्तियों से सम्पन्न था। वह बहुत दयालु शासक भी था। जब भी प्रजा कष्ट में होती वह राजा महराज के पास जाती। वह उसकी हर प्रकार से सहायता करता और दैवी शक्तियों के बल से उसकी समस्याओं का समाधान करता। लगभग १२ मील दूर एक पहाड़ी को राजा महराज का स्थान बतलाया जाता है। चितौरा में महादानी को बलि देने के बाद राजा महराज के देवस्थान पर एक बकरा चढ़ाते हैं। बकरे को पहले चावल खिला कर तब मारते हैं। बकरे को उसी जाति के लोग खिलाते हैं जिनकी ओर से बलि दी जाती है। इस बलि में पशु का बैगा द्वारा मारा जाना आवश्यक नहीं है। कोई भी मार सकता है। बकरे का सिर सदा बैगा लेता है और मांस वे लेते हैं जो बलि के व्यय का भार उठाते हैं।

अगली बलि महामारियों की देवी ज्वालामुखी देवी को दी जाती है। एक और बकरा सेलहा ठाकुर को चढ़ाया जाता है। ये दो बकरे सभी ग्रामवासियों के चन्दों से मोल लिए जाते हैं। अतएव हर ग्रामवासी को मांस बाँटा जाता है। विश्वास है कि ये प्रेत भी महादानी के देवस्थान के समीपवर्ती वृक्षों पर निवास करते हैं। बलि

के पूर्व बैगा हवन करता, पशुओं को नहलाता और उन्हें हलका सिन्दूर लगाता है।

ग्रामवासी तदुपरान्त लकड़ा बाँध जाते हैं जहाँ एक दुष्ट प्रेत 'दशा देव' का निवास एक छोटे-से पत्थर में बतलाया जाता है। इस देव को वे लोग बुलाते हैं जो किसी व्यक्ति को हानि पहुँचाना चाहते हैं। दशा देव को प्रसन्न करने के लिए एक सुअर चढ़ाया जाता है। उसके लिए चमार व्यय करते हैं क्योंकि सुअर का मांस केवल वे ही खाते हैं। वे नदीतट पर ही मांस पका कर खाते हैं।

राजा महराज की पत्नी मृगारानी के बारे में एक कथा है। मृगारानी अपने मैके में किसी भोज में सम्मिलित होना चाहती थी परन्तु राजा महराज कुछ निजी कारणों से उसे अनुमति नहीं दे रहा था। रानी ने उसकी एक न सुनी और जाने की तैयारियाँ कीं। महल से उसके बाहर निकलते ही राजा ने उस पर मंत्र चलाया जिससे उसके सारे वस्त्र ढीले और गिरने-गिरने को हो गए। उसने बारम्बार वस्त्रों को दुबारा ठीक करने की चेष्टा की किन्तु असफल रही। उसका हठ देख कर राजा न उसे पत्थर में वदल दिया। ग्रामवासियों का विश्वास है कि पहाड़ी का साधारण-सा कटाव और उसका सामान्य वाह्य रूप नतमस्तक हो कर धोती बाँधती हुई मृगारानी के प्रतीक हैं।

जादू में विश्वास

चितौरा के ग्रामवासियों में दो प्रकार के जादू का प्रचार है—कल्याणकारी तथा अनिष्टकारी। जादूगरों में कुछ अनिष्टकारी तथा कल्याणकारी दोनों प्रकार के जादू का अभ्यास करने वाले और कुछ केवल अनिष्टकारी जादू का अभ्यास करने वाले भी होते हैं। प्रथम प्रकार के जादूगर ओझा कहलाते हैं और द्वितीय प्रकार के जादूगरों में स्त्रियों को डाइन और पुरुषों को डैया कहते हैं। कोई जादूगर किसी समय एक ही भूत को जगा सकता है। जब किसी प्रेत या भूत को जगाने में वह सफल हो जाय तो प्रेत को उसकी आज्ञा का पालन करना पड़ता है। प्रेत की सेवाओं को प्राप्त करने को 'बैहन' कहते हैं। प्रेत जगाने के लिए गाए जाने वाले गीतों को 'रधिनी' कहते हैं।

डैया और डाइन अपनी विद्या को गुप्त रूप से सीखती हैं। जब नए सदस्य जादूगरों की मंडली में प्रविष्ट होते हैं वे किसी जादूगर से अपेक्षित प्रशिक्षण के लिए अनुरोध करते हैं। कभी-कभी जादूगर स्वयं आगे आ कर उनका ध्यान आकर्षित करने के लिए, जिन्हें वे जादूगर बनाना चाहते हैं, मंत्र पढ़ते हैं। मंत्र इतने शक्तिशाली होते हैं कि उनके द्वारा आकर्षित व्यक्ति तुरत जादूगर का शिष्य बन जाता है और स्वयं जादूगर के पास जाता है। जब कोई डाइन किसी अन्य स्त्री को डाइन बनाने

का निश्चय करती है तो जब वह स्त्री आटा पीस रही होती है तब डाइन उसे अपने वश में करती है। जब वह पीसती और जाँते के गीत गाती रहती है तब डाइन की आत्मा उस स्त्री में प्रविष्ट हो जाती है। डाइन के मंत्र पढ़ने पर वह स्त्री उसकी शिष्या बनने की तीव्र प्रेरणा का अनुभव करती है। स्त्रियाँ ऐसी घटनाओं से बच नहीं सकतीं और उन डाइनों को, जो उन्हें अपना शिकार बनाने की चेष्टा करती हैं, पहचानना बहुत कठिन होता है। इसके अतिरिक्त जब तक वे डाइन के वश में न आ जायँ स्त्रियों को कभी पता ही नहीं लगने पाता कि डाइन उन पर लगी हुई है। जब जादूगर बूढ़े होने लगते और सुपात्र को अपनी विद्या दे जाना चाहते हैं तो किसी नए व्यक्ति को अपनी मंडली में लाने की उनकी इच्छा विशेष रूप से तीव्र हो उठती है।

प्रशिक्षण विधियाँ बहुत गुप्त रखी जाती हैं यद्यपि अपेक्षाकृत साधारण विधियाँ ज्ञात होती हैं। अमावस्या के दिन श्मशान पर जा कर शिष्य किसी शिशु के मृत शरीर को खोद कर बाहर निकालता है (प्रायः छोटे शिशु जलाए नहीं वरन् गाड़े जाते हैं)। फिर उसके वस्त्रों को हटा कर वह उसकी कमर म झाड़ू बाँधता और सरसों के तेल का दीया जलाता है। फिर एक बिल्ली मारी जाती है और जिस प्रेत को शिष्य बुलाना चाहता है उसे वह चढ़ाई जाती है। इसके बाद वह शिशु के मृत शरीर के सामने नाचता और रधिनी गाता है। जब तक शिशु पुनः जीवित न हो जाय यह क्रिया प्रत्येक अमावस्या को चलती रहती है। कुछ काल तक वह शिशु के साथ खेलता और फिर उसे मार कर श्मशान से चला आता है। यदि शिष्य जादूगर को शिशु-शव न मिले तो वह मंत्रपाठ द्वारा किसी शिशु को पकड़ता और तब उसे मारता है। शरीर को रात में श्मशान में ले जाते हैं और शिष्य जादूगर सभी अपेक्षित क्रियायें करता है। जब कोई शिष्य (शिष्या) यह सब करने में सफल हो जाता (जाती) है तो उसका गुरु (गुरुआनी) समझता (समझती) है कि वह जादूगर (जादूगरनी) बन गया (गई) है। इस समय प्रशि-क्षण के उपलक्ष्य में गुरु शिष्य से दक्षिणा माँगता है। प्रायः किसी निकट सम्बन्धी का जीवन उसकी दक्षिणा होती है। अधिकतर यदि प्रशिक्षार्थी स्त्री हुई तो उसकी गुरुआनी उसके पति का जीवन माँगती है और यदि वह पुरुष हुआ तो उसका गुरु उसकी पत्नी का जीवन माँगता है। कभी-कभी प्रशिक्षार्थी की पहली सन्तान और कभी-कभी परिवार का पालक गुरु का शिकार होता है। गुरु प्रशिक्षार्थी के सर्वोत्तम बैल की न्यूनतम दक्षिणा ग्रहण करता है। गुरु जिस व्यक्ति या पशु की इच्छा करता है उस पर प्रशिक्षार्थी को मंत्र साधने को कहा जाता है। जब तक शिष्य जादूगर अपने गुरु को ऐसी दक्षिणा न दे दे तब तक वह पूर्ण जादूगर नहीं बन सकता।

जादू करने के लिए सर्वोपयुक्त स्थल हैं नहरें, बाँध, नदियाँ और कुँयें। इन स्थलों पर पढ़ने से मंत्र मारक सिद्ध होते हैं। दीवाली की रात को अधिकतम उत्साह के साथ जादूगर अपनी विद्या को जगाते हैं। वे श्मशान भूमि में रात्रि व्यतीत करते हैं। जो लोग अन्यों को हानि पहुँचाना चाहते हैं वे डैया या डाइन की सेवाओं का उपयोग करते हैं। इसके लिए जादूगर शुल्क लेते हैं। किसी व्यक्ति को मारने के लिए किसी प्रेत को बुलाने और आज्ञा देने में स्वयं जादूगर के जीवन पर संकट रहता है। प्रेत इतना रक्तपिपासु होता है कि यदि उसे शिकार न मिला तो अपनी पिपासा शांत करने के हेतु वह अपने बुलाने वाले पर ही आक्रमण करता है। अतः जादूगर सदा अपनी करधनी में एक सुई लटका कर रखता है। यदि प्रेत बुलाने वाले पर लौट आए तो जादूगर अपने शरीर को सुई से चुभाता और प्रेत को अपना रक्त अर्पित करता है। कभी-कभी वह प्रेत की सन्तुष्टि के लिए एक बकरा, बिल्ली, मुर्गा या कबूतर चढ़ाता है। शिकार पर प्रेत को भेजने के पूर्व सदा जादूगर वचन देता है कि यदि उद्देश्य में प्रेत असफल रहा तो उसकी रक्तपिपासा किसी न किसी प्रकार सन्तुष्ट की जायगी।

इस सम्बन्ध में दो कहानियों का वर्णन किया जा सकता है। १९४८ के लगभग दो कलवार बहिनें (कलवारों में अनेक जादूगर हैं) जो डाइनें थीं आपस में लड़ पड़ीं और उनमें प्रत्येक ने दूसरी के पति का रक्त पीने की धमकी दी। एक का विवाह स... कलवार से हुआ था और दूसरी का ब... कलवार से। रात में दोनों बहिनों ने एक दूसरे के पति पर आक्रमण करने के लिए अपने-अपने प्रेतों को जगाया। दोनों प्रेतों में स... कलवार की स्त्री द्वारा जगाया हुआ प्रेत अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुआ और ब... कलवार अगले दिन मर गया। सायंकाल उस पर विशूचिका का आक्रमण हुआ और उसी रात वह चल बसा। अगले दिन प्रातःकाल स... कलवार की स्त्री नन्हकू माझी के देवस्थान पर गई और उसके चारों ओर नंगी हो कर नाचने लगी। फिर वह महादानी के देवस्थान पर गई और वहाँ भी नाचने लगी। इस बीच ग्रामवासियों ने एक अन्य बैगा को बुलवाया जिसने स... कलवार की स्त्री को शांत किया। सायंकाल सभी ग्रामवासियों ने महादानी के देवस्थान पर एकत्रित हो कर सभी डैयों-डाइनों को ढँढ निकालने और गाँव से निष्कासित करने का निश्चय किया परन्तु ओझा लोगों ने हस्तक्षेप कर उन्हें क्षमा प्रदान करा दिया।

दूसरी घटना लगभग १२ वर्ष पूर्व घटी। कंजरों का एक दल खुले मैदान में ठहरा हुआ था। मध्य रात्रि में कोई डाइन एक एकवर्षीय शिशु को ले उड़ी। शिशु अपने माँ के पास सोया हुआ था और चार-पाँच कुत्ते पूरे दल की रखवाली कर रहे थे। डाइन शिशु को चुपके से ले कर चम्पत हुई और एक समीपवर्ती नहर पर

गई। फिर शिशु के रक्त को प्रेत को चढ़ाने के लिए वह उसके शरीर को चुभाने लगी। संयोगवश किसी ने डाइन को शिशु के साथ देख लिया और तुरन्त कंजरों के दल में जा कर हाँक लगाई। वे सब उस स्थान को दौड़े किन्तु संकट का आहट पा कर डाइन भाग गई थी। शिशु रोता हुआ पाया गया और उसके सारे शरीर पर सुइयाँ चुभाने के चिह्न थे। कुछ बेसिर के कबूतर भूलुंठित पड़े थे। शिशु को तीव्र ज्वर हो आया। दल ने व्रत रखा, सत्यनारायण कथा सुनी और ओझा को बुलवाया। विश्वास है कि उसने शिशु को अच्छा किया यद्यपि दुद्धी के एक डॉक्टर ने भी कुछ दवायें दी थीं। पुलीस को सूचना दी गई किन्तु डाइन का पता न चल सका।

अधिकांश डाइनें विधवा या निस्सन्तान होती हैं क्योंकि उनके गुरु दक्षिणा में उनके पतियों और बच्चों के जीवन ले लेते हैं। फलतः गाँव की विधवायें और निस्सन्तान स्त्रियाँ संदेह की दृष्टि से देखी जाती है।

कल्याणकारी जादू—कल्याणकारी जादू का अभ्यास करने वालों की सहायता निम्नलिखित रोगों में ली जाती है—

(१) सर्पदंश
(२) बिच्छू तथा अन्य कीड़ों का काटना
(३) 'नज़र' लगना
(४) 'अधकपारी' या विशेष प्रकार का सिरदर्द जो दिन चढ़ने के साथ-साथ बढ़ता और उतरने के साथ-साथ घटता है।
(५) अन्य रोग जैसे दाँत दर्द
(६) पशुरोग

कल्याणकारी जादूगरों के देवता अनिष्टकारी जादूगरों के देवताओं से भिन्न होते हैं। सामान्यतः ओझा अपने पितरों या गुरुओं की आत्माओं को जगाता है। गाँव में ऐसे अनेक जादूगर है। वे बहुधा शिष्यों के प्रशिक्षणार्थ पाठशालायें खोलते हैं। सायंकाल प्रशिक्षण कक्षायें लगती हैं और सभी जातियाँ, जिनमें चमार भी सम्मिलित रहते हैं, साथ-साथ बैठ कर प्रशिक्षण प्राप्त करती हैं। शिष्य का न्यूनतम वयस् १४ वर्ष अनिवार्य है। सफल शिष्य दूसरों को प्रशिक्षित कर सकते हैं। ये पाठशालायें सावन या भादों से कार्तिक तक चलती हैं। कार्तिक की पहली एकादशी को शिष्यों की परीक्षा ली जाती है और घोषित किया जाता है कि वे पूर्ण जादूगर बन पाए हैं या नहीं। अखाड़े में जहाँ कक्षायें लगती हैं प्रकाश करने के लिए उनसे तेल का प्रबन्ध करने को कहा जाता है। गुरुपत्नी नियमित रूप से अखाड़े में गोबर लीपती है। दो-तीन दिन तक प्रारम्भिक पाठ देने के उपरान्त गुरु 'चेलों' को वन

में ले जा कर विभिन्न रोगों को अच्छा करने के लिए प्रयुक्त जड़ी-बूटियों से परिचित कराता है। कार्तिक एकादशी को वह उनमें से प्रत्येक को एक हरा बाँस दे कर अंतिम शिक्षायें देता है। फिर स्नान कर वे अपने देवों का आवाहन आरम्भ करते हैं। सारे दिन वे व्रत रखते और रात में केवल फलाहार करते हैं। सारी रात पाठाभ्यास तथा देवों के आवाहन में बीत जाती है। अगले दिन प्रातःकाल स्नानोपरान्त वे लँगोटी को छोड़ शेष सभी वस्त्र उतार डालते हैं। गुरु लकड़ी के एक टुकड़े से उनके समस्त अंगों पर चावल का लेप मलता है। गुरु के नेतृत्व में जुलूस बना कर वे गाँव का चक्कर करते हैं। वे सभी मंत्रपाठ द्वारा अपने देवों को बुलाने की चेष्टा करते हैं। मार्ग में गुरु अपने एक शिष्य को अपंगु कर देता है और अन्य शिष्यों को अपने मंत्रबल से उसे अच्छा करने की आज्ञा देता है। जो अपने प्रेतों को जगाने में सफल होते हैं वे उत्तीर्ण घोषित किए जाते हैं। कभी-कभी ऐसा होता है कि गाँव के दुष्ट जन किसी शिष्य को गुरु की योग्यता की परीक्षा अथवा स्वयं शिष्य को हानि पहुँचाने के निमित्त आहत कर देते हैं। ऐसी अवस्थाओं में गुरु अन्य शिष्यों को उसे अच्छा करने की आज्ञा देता है और यदि वे असफल होते हैं तो स्वयं अच्छा करता है। गाँव का चक्कर काटते समय उन्हें घरों से 'सीधा' मिलता है। फिर वे रस्मी वलि के हेतु लकड़ा बाँध की ओर बढ़ते हैं। इसके लिए हर शिष्य के लिए एक मुर्गी लाना और एक बकरा ख़रीदने के लिए कुछ चन्दा देना अनिवार्य है। गुरु द्वारा दी जाने वाली अंतिम शिक्षाओं में एक यह है कि उन्हें लोगों को अच्छा करने के बदले में कोई पुरस्कार नहीं ग्रहण करना चाहिए। तदुपरान्त वे अपने गुरु को नदी पर ले जा कर सीने तक जल में खड़ा करते हैं और उसे धमकाते हैं कि यदि उसने विद्या के सभी रहस्य उन पर प्रकट नहीं किए हैं तो वे उसे डुबा देंगे। उसके पुनः आश्वासन देने पर वे उसकी करधनी का एक टुकड़ा ले लेते हैं और उसे एक नई करधनी देते हैं। विश्वास है कि गुरु की आध्यात्मिक शक्ति का रहस्य उसकी करधनी में निहित रहता है। अब ग्रामवासियों से प्राप्त 'सीधा' सभी शिष्यों में बाँट लिया जाता है और प्रत्येक अपना-अपना भोजन पकाता है। दक्षिणा रूप में शिष्यगण संयुक्त रूप से एक धोती, एक कमीज़ और एक अँगोछा ख़रीद कर गुरु और गुरुपत्नी को भेंट करते हैं।

ग्रामवासियों द्वारा वर्णित भूत-प्रेतों की कहानियाँ

१. न. कलवार के घर के सामने नीम के एक वृक्ष पर एक भूत के रहने पर लोगों का विश्वास था। अन्य जनों की चेतावनी के विपरीत न. कलवार ने वृक्ष को काट गिराया। उसी सायंकाल उसे तीव्र ज्वर हो आया और दुद्धी के विभिन्न डॉक्टरों

और वैद्यों की चेष्टाओं के बावजूद १९ घंटे तक सन्निपातग्रस्त रहा। एक ओझा ने रोग का निदान किया कि नीम के अमुक वृक्ष पर निवास करने वाले भूत ने आक्रमण किया है। फिर परिवार वालों ने ज्वालामुखी देवी की मनौती मानी। तदुपरान्त न. कलवार पहले से अच्छा अनुभव करने लगा और जल तथा पथ्य ग्रहण कर सका। बाद में इलाज के लिए उसे पटना ले गए। प्रतीत होता है कि वृक्ष के काटे जाने के कारण भूत कुपित था परन्तु ज्वालामुखी की मनौती मानने पर उसने हस्तक्षेप कर न. कलवार की प्राणरक्षा की।

२. म. सिंह नामक व्यक्ति एक खेत में ढोर चरा रहा था जहाँ एक अन्य भूत नीम के ही वृक्ष पर रहता था। म. सिंह थके होने के कारण सोने चला गया। जागने पर उसे तीव्र ज्वर तथा भीषण सिरदर्द था और बाद में वह रक्तवमन करने लगा। डॉक्टर बुलाए गए परन्तु मध्य रात्रि होने तक उसकी अवस्था चिन्ताजनक हो गई। डॉक्टरों ने सभी आशा छोड़ दी। फिर एक ओझा बुलाया गया जिसने उसको छोड़ देने के लिए भूत को मना कर उसको अच्छा किया।

३. ह. सिंह के घर के पीछे बरगद के एक वृक्ष पर पहले एक भूत रहता था। लगभग तीन वर्ष पूर्व भूत ने ह. सिंह की तीनवर्षीया कन्या पर, जो वृक्ष के नीचे खेल रही थी, आक्रमण किया। लड़की विचित्र प्रकार से व्यवहार करने लगी। वह परिवार में हर किसी को गाली देने लगी और ज़ोर-ज़ोर से अपना सिर हिलाने लगी। ह. सिंह तुरत भाँप गया कि कोई दुष्ट प्रेत उसकी कन्या पर सवार है। उसने अपनी कन्या को चार-पाँच तमाचे मारे और धमकाया कि यदि वह ठीक से व्यवहार न करेगी तो उसे डंडे से पीटेगा। ऐसा विश्वास है कि जब भी किसी व्यक्ति पर भूत आक्रमण करे तो पीड़ित व्यक्ति के शरीर पर पहुँचाई जाने वाली चोट वस्तुतः भूत को पहुँचती है। तत्काल लड़की ने अपना विचित्र व्यवहार बन्द कर दिया। तब ह. सिंह ने एक ओझा को बुलवाया। उसने उस वृक्ष के नीचे हवन किया। उसने वृक्ष पर लोहे की कुछ अभिमंत्रित कीलें भी गाड़ीं। उस समय से भूत ने किसी को कष्ट नहीं पहुँचाया है। सम्भवतः वह किसी अन्य स्थान को प्रवास कर गया है।

प्रतीत होता है कि भूतों की जनसंख्या बहुत अधिक बढ़ गई है और गाँव के अनेक वृक्षों और स्थलों में भूतों का निवास है। भूत-प्रेत सामान्यतः नीम, पीपल और बरगद सदृश वृक्षों पर निवास करते हैं। परन्तु हाल में एक प्रेत ने परम्परा भंग कर महुए के एक वृक्ष के नीचे निवास आरम्भ कर दिया है। उसका नाम महुआ देव है। कहा जाता है कि इस देव के अस्तित्व का पता सर्वप्रथम सिंगरौलीवासियों को लगा। एक रात महुआ देव एक ब्राह्मण के स्वप्न में प्रकट हुआ और उसने उसे अपने निवास

के लिए महुए के किसी वृक्ष को चुनने की आज्ञा दी। उसने उसे उस महुए के वृक्ष के सामने कुम्हली का एक वृक्ष जलाने की भी आज्ञा दी। अगले दिन ब्राह्मण ने महुए का एक वृक्ष चुना और उसके सामने कुम्हली का एक वृक्ष भी गड़वाया। तब उसने गाँव के बैगा को बुलवाया जिसने कुम्हली के वृक्ष के नीचे हवन किया और मंत्रबल से महुए के वृक्ष में देव को प्रतिष्ठापित किया। फिर ब्राह्मणों ने देव की आज्ञानुसार भजन-कीर्तन गाए। यह समाचार सारे गाँव में शीघ्र ही फैल गया और अधिकांश ग्रामवासी, जिनमें स्त्रियाँ भी थीं, उस स्थान पर उन सभी भूत-प्रेतों से मुक्ति पाने के लिए गए जो दीर्घ काल से उन्हें कष्ट पहुँचा रहे थे। बैगा ने एक-एक कर पीड़ित व्यक्तियों को बुलाया और उन्हें अच्छा करने के लिए महुआ देव को जगाया। देव की स्वीकृति मिलने पर उसने दुबारा उन व्यक्तियों को बुलाया। फिर बैगा ने देव की सहायता से एक-एक कर भूतों को भगाया। उसने हवन किया और तब प्रत्येक पीड़ित व्यक्ति के एक-एक बाल को अग्नि को भेंट किया। इससे वह व्यक्ति अच्छा हो जाता। जो व्यक्ति अच्छे हो गए उन्होंने बैगा को कुछ द्रव्य, अन्न और घी दिया। जिन्हें महुआ देव ने अच्छा किया उन पर दुबारा भूतों ने आक्रमण नहीं किया। परन्तु महुआ देव की खानाबदोशी की प्रवृत्ति है और वह किसी स्थान पर अधिक काल तक नहीं रहता। जब भी वह किसी गाँव में जाना चाहता है तो उस गाँव के किसी प्रमुख निवासी के स्वप्नों में प्रकट होता और उसे अपने निवास के लिए प्रबन्ध करने की आज्ञा देता है। उसे वहाँ अपने निवास की अवधि भी बतला देता है और अवधि समाप्त होते ही गाँव छोड़ देता है।

कबायली प्रथायें

कबायलियों का भी प्रेतों में गहरा विश्वास है। यदि कोई व्यक्ति बीमार पड़ जाय और शीघ्र स्वास्थ्यलाभ न करे तो इसका अर्थ है कि कोई भूत उसे कष्ट पहुँचा रहा है। वह सामान्यतः रोगी के कबीले के ही किसी व्यक्ति का भूत होता है। भूत को पहचानने की विधि बड़ी मनोरंजक है। अपने कबीले के सभी सदस्यों और ओझा लोगों के साथ रोगी किसी देवस्थान पर जाता है। एक थाली जल से भरी जाती है और कुरथी के कुछ पूर्वाभिमंत्रित दाने उसमें गिराए जाते हैं। कुछ दाने तत्काल नीचे बैठ जाते हैं जब कि अन्य ऊपर तैरते रहते हैं। बाद वाले भूत के दाने होते हैं। विश्वास है कि यदि उन्हें तौला जाय तो वे पाँच-पाँच सेर के होंगे यद्यपि उन्हें कभी तौला नहीं जाता। फिर जादू से ओझा पता लगाते हैं कि कौन भूत उस व्यक्ति को कष्ट दे रहा है। एक बार पहचान समाप्त हो जाने पर जिसका भूत उस रोगी को कष्ट पहुँचा रहा हो उसके सम्बन्धी अपने 'भूत सम्बन्धी' को उसके

पुराने घर में ले जाने के लिए सहमत होते हैं। फिर रोगी के घर बैगा हवन करता है। हवन के बाद वह बारम्बार जौ के कुछ दाने भूमि पर फेंकता और उन्हें गिनता है। यदि तीन बार गिनने से लगातार सम संख्या आए तो अर्थ लगाते हैं कि भूत उस व्यक्ति को छोड़ने को मान गया है। अन्न की राख को दो अलग पोटलियों में बाँध कर एक जवान बैल पर, जिसे इसी उद्देश्य से विशेष रूप से मोल लेते हैं, रखा जाता है। फिर भूत के सम्बन्धी बैल को उस घर में ले जाते हैं जहाँ वह रहा करता था और वस्त्र तथा बैल का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार भूत वापस उस पीड़ित व्यक्ति के पास नहीं जाता या कम से कम सम्बन्धीगण इसका ध्यान रखते हैं कि वह वापस न जाय।

बैगा का कर्तृत्व—बैगा के जिन कर्तव्यों का पहले उल्लेख हो चुका है उनके अतिरिक्त कुछ कृषि-सम्बन्धी उत्सवों में उसकी उपस्थिति अत्यन्त आवश्यक है। जब भूमि के किसी नए टुकड़े पर खेती करनी होती है बैगा महादानी के नाम पर हवन करता है। फिर पहले बैगा उस खेत में हल चलाता है जिसके बाद कृषक आगे के काम जारी रखता है। जेठ (मई-जून) में ग्रामवासी अपने खेतों में गोबर जला कर राख को खाद के रूप में प्रयुक्त करते हैं। परन्तु गोबर को जलाने के पूर्व महादानी की पूजा अनिवार्य है। जेठ के प्रथम सप्ताह में पूजा-सामग्री मोल लेने के लिए बैगा सभी ग्रामवासियों से चन्दे एकत्रित करता है। पूजा के समय वह महादानी के देवस्थान पर एक बकरा चढ़ाता और पशु के ऊपर शराब उँडेलता है। तब वह हवन करता है जिसके बाद ग्रामवासी गोबर जला सकते हैं। रबी की फ़सलें बोने के पूर्व ग्रामवासी 'टड़सुइया' उत्सव या 'टाड़' की पूजा के लिए बैगा को बुलाते हैं। टाड़ एक उपकरण है जिसकी सहायता से कुछ फ़सलों के बीज बोते हैं। बैगा ग्रामवासियों से द्रव्य एकत्रित कर क़ुआर के दूसरे पक्ष में महादानी के देवस्थान पर हवन करता है। तब वह प्रेतिनी को कुछ शराब और एक मुर्गी चढ़ाता है। इसके बाद ही ग्रामवासी बीज बोना आरम्भ करते हैं। बैगा को फिर धान रोपाई के समय आमंत्रित करते हैं। उस समय हर ग्रामवासी के खेत में एक रस्म होती है। वह पहले खेत के किसी कोने में दो छोटे-छोटे गड्ढे खोदता और मालिक द्वारा लाए गए धान से उन्हें भरता है। गड्ढे गीली मिट्टी से भर दिए जाते हैं और बैगा उनके ऊपर हवन करता है। वह दोनो स्थानों पर सिन्दूर से चिह्न बना देता है। तब वह उस खेत से पाँच पौदे ले कर किसी अन्य खेत में बैठाता है। उसके बाद मालिक या उसके श्रमिक रोपाई करते हैं। बैगा को कुछ द्रव्य और भोजन दिया जाता है।

कृषि-सम्बन्धी रस्मों में महत्वपूर्ण भाग लेने के अतिरिक्त विवाहोत्सवों में बैगा का बहुत काम रहता है। मंडप छाने में उसकी उपस्थिति परमावश्यक है। जहाँ केन्द्रीय खम्भा गाड़ना होता है उस स्थान पर वह हवन करता है। फिर वह परि-

वार की स्त्रियों के साथ खेतों में जा कर कुछ मिट्टी खोदता है। इसे 'मटकोड़वा' कहते हैं। मटकोड़वा के समय बैगा की आँखों पर नए वस्त्र के एक टुकड़े से पट्टी बाँध दी जाती है और बाद में वह वस्त्र कुछ द्रव्य के साथ उसे दे दिया जाता है। जहाँ हवन किया गया था वहाँ मिट्टी को ले जाते हैं और वहाँ बैगा केन्द्रीय खम्भे के रूप में हल गाड़ता है। लकड़ा बाँध के तट पर मेडार नामक स्थान है जिसे मेडार देव का निवासस्थान मानते हैं। वधू के साथ लौटने पर वर इस स्थान पर जा कर अपना मौर उतारता है। वहाँ बैगा हवन करता और मेडार देव को अन्न के कुछ दाने चढ़ाता है। फिर वधू स्नान करती और बैगा को एक नई धोती और कुछ द्रव्य देती है।

प्रेतों और जादू में ग्रामवासियों के विश्वास के परिणामस्वरूप जादूगर लोग पर्याप्त धन कमा लेते हैं।

अन्धविश्वास

सभी जातियों और कबीलों के ग्रामवासियों के सरल मस्तिष्क में विभिन्न अन्ध-विश्वासों ने घर कर रखा है यद्यपि कबायली सवर्ण हिन्दुओं जैसे अन्धविश्वासी नहीं हैं।

शुभ दिन—सोमवार, मंगलवार और शुक्रवार शुभ दिन हैं जब कोई नया काम आरम्भ करना चाहिए। दक्षिण की ओर मंगलवार और बुधवार को, उत्तर की ओर सोमवार और शनिवार को तथा पश्चिम की ओर रविवार और शुक्रवार को यात्रा करना शुभ है। यात्रा के हेतु पूर्णमासी शुभ दिन है किन्तु अमावस्या अशुभ। हर उत्सव को मनाने के लिए गाँव का पंडित ग्रामवासियों को शुभ मास और दिन बतलाता है।

शुभ शकुन तथा अपशकुन—यदि छिपकली पुरुष के दाहिने पक्ष पर और स्त्री के बायें पक्ष पर गिरे तो इसे शुभ शकुन मानते हैं। यदि वह मस्तक पर गिरे (पुरुष के मस्तक के दाहिने अर्धांश पर और स्त्री के मस्तक के बायें अर्धांश पर) तो वह किसी निकट सम्बन्धी से मिलने की पूर्व सूचना है। यदि वह कमर पर गिरे (पुरुष की दाहिनी और स्त्री की बाईं ओर) तो उसका अर्थ है नए कामों में सिद्धि।

छींकते समय इस बात को महत्व दिया जाता है कि उस व्यक्ति का मुख छींकते समय किधर था। यदि मुख उत्तर की ओर था तो झगड़े की आशा की जाती है। यदि पूर्व की ओर था तो नए कामों के असफल होने की सम्भावना रहती है। परन्तु यदि मुख पश्चिम की ओर था तो यह शुभ है और किसी अच्छी बात के होने की आशा की जाती है।

यात्रा के लिए प्रस्थान करते समय किसी व्यक्ति को रिक्त घड़ा ले जाते हुए या गेरुआ वस्त्र धारण किए हुए देखना अशुभ होता है। यदि ऐसे अपशकुन दिखाई दें तो यात्रा पर जाने वाले व्यक्ति का वापस घर लौट आना और दुबारा बाद में प्रस्थान करना अनिवार्य होता है। यदि बिल्ली या सियार रास्ता काट दे तो उस मार्ग को छोड़ कर अन्य मार्ग से जाना अनिवार्य है। घर से बाहर निकलते समय लोग चाँदी देखने से बचाते हैं और काने व्यक्ति का दिखाई पड़ना सदा अशुभ माना जाता है। प्रातःकाल कुछ लोगों और वस्तुओं को सर्वप्रथम देखना भी अशुभ होता है। जब लोग उठते हैं तो वे हथलियों से अपने चेहरे को मलते हैं क्योंकि विश्वास है कि ऐसा करने से ऐसे अशुभ लोगों या वस्तुओं के दर्शन के कुप्रभाव नष्ट हो जाते हैं। प्रस्थान करते समय धुले कपड़े लिए हुए धोबिन या तेल लिए हुए तेली का दर्शन अशुभ होता है। दही बहुत शुभ है और लोग प्रस्थान करते समय थोड़ी-सी दही ग्रहण करते हैं। खाँड भी शुभ मानी जाती है। मछली का दर्शन भी शुभ है और यदि किसी को मार्ग में मृतक दिखाई दे जाय तो सफलता पूर्ण रूप से निश्चित होती है। वह सबसे शुभ 'वस्तु' है जिसे कोई व्यक्ति कहीं जाते समय देख सकता है।

शरीर के विभिन्न भागों (पुरुष के लिए दाहिने पक्ष और स्त्री के लिए बायें पक्ष) का फड़कना किसी शुभ बात की पूर्व सूचना देता है। बाँह के ऊपरी भाग का फड़कना विलासपूर्ण जीवन का द्योतक है। आँख के फड़कने का अर्थ है द्रव्यलाभ। यदि भौंहों के बीच का भाग फड़के तो वह किसी प्रिय मित्र से मिलने की पूर्व सूचना है।

जब कोई व्यक्ति खाट पर लेटा हो और वह टूट जाय तो उसका अभिप्राय है कि वह निकट भविष्य में किसी गम्भीर रोग से ग्रसित होगा। गाँव में प्रचलित एक अत्यन्त मनोरंजक विश्वास यह है कि यदि संयोगवश दो लोगों के सिर परस्पर टकरा जायँ तो उनके लिए दुबारा अपने सिर टकराना अनिवार्य है अन्यथा उनमें किसी के परिवार में कानी लड़की जन्म ले सकती है। ग्रामवासी कभी अपने चूल्हों के मुख दक्षिण की ओर नहीं रखते। जब परिवार में कोई मृत्यु हो गई हो तभी दक्षिण की ओर मुख वाला चूल्हा बनाया जाता है।

भविष्यवक्ता के रूप में पक्षी—उल्लू का बोलना और बाज तथा गीध का चिल्लाना अशुभ है। यदि किसी की छत पर बैठ कर कौआ काँव-काँव करे तो किसी निकट सम्बन्धी के आगमन की आशा की जाती है। नीलकंठ का दर्शन शुभ है और दशहरा के प्रातःकाल लोग इस पक्षी को देखने के लिए उत्कंठित रहते हैं। हंस और तोते का दर्शन अच्छे भाग्य का द्योतक है। इस क्षेत्र का एक विशेष पक्षी सुइया है। इसकी बोली को खरवार सबसे अशुभ मानते हैं। यदि यात्रा के समय वे इस पक्षी की बोली सुन लें तो वे प्रस्थान करने वाले स्थान पर लौट जाते हैं भले ही इसके कारण विवाह या अन्य किसी उत्सव को स्थगित करना पड़े।

स्वप्न

१. **अच्छे भाग्य का पूर्वाभास देने वाले स्वप्न**—मृतक को स्वप्न में देखने का अर्थ है कि स्वप्नद्रष्टा को अन्य स्वप्न तंग नहीं करेंगे। स्वप्न में मछली का दर्शन द्रव्यलाभ का द्योतक है। सुअर देखने पर भी वही बात लागू होती है। दही, दूध और चावल के स्वप्न प्रतिस्पर्धियो पर विजय के भविष्य-सूचक हैं। स्वप्न में दृश्यमान हाथी और हंस अच्छे भाग्य के दूत हैं। यदि कोई रक्त या सर्पदंशित व्यवित को स्वप्न में देखे तो उसका अर्थ है अच्छी उपज और वर्षा। यदि कोई कमल के पत्ते में चावल खाते हुए किसी व्यक्ति को देखे तो वह अतुल सम्पत्ति अर्जित करने का सूचक है। स्वप्न में दिखाई देने वाले फलदायी वृक्ष या कच्चा मांस या श्वेत वस्त्र पहने ब्राह्मण उज्वल भविष्य का संकेत करते हैं।

२. **अनिष्ट का पूर्वाभास देने वाले स्वप्न**—स्वप्न में भैंस को देखने का अर्थ है कि कोई निकट सम्बन्धी शीघ्र ही मर जायगा। नीम या पीपल का वृक्ष महामारियों की देवी का प्रतीक है। स्वप्न में कुत्तों का देखना बुरा होता है। चाँदी के सिक्कों को स्वप्न में देखने का अर्थ है अर्थहानि। स्वप्न में मृत पक्षी या मृत गाय को देखन का अभिप्राय बतलाते हैं कि वे अतिवृष्टि या वर्षाभाव या अग्निकांड सदृश अना-शंकित विपत्तियों के कारण फ़स्लों के न होने का पूर्वाभास देती हैं।

यदि किसी को प्रात:काल किसी स्वप्न का स्मरण हो तो उसे उसके अभिप्राय जानने के लिए किसी वृद्ध जन या पंडित के पास जाना चाहिए। यदि यह कोई अशुभ स्वप्न है तो वह बहुधा पूर्वाभासित अनिष्ट को दूर करने के लिए उपाय पूछता है। प्राय: उपाय यह होता है कि गाँव के किसी प्रेत या देवता को भेंट दी जाय।

एकादश अध्याय

आयोजित परिवर्तन

दुद्धी में १९५३ में सामुदायिक योजना (कम्यूनिटी प्रॉजेक्ट) की स्थापना हुई। योजना खंड के अन्तर्गत ९० गाँव हैं जिनकी जनसंख्या लगभग ३५,००० और क्षेत्रफल १९५ वर्ग मील है। इस क्षेत्रफल में केवल २६,२४० एकड़ में कृषि होती है और शेष वन या बंजर भूमि है। अधिकांश निवासी आदिवासी हैं। वे अशिक्षित, रूढ़िवादी परम्पराओं में डूबे हुए और अत्यन्त निर्धन हैं। उनका मुख्य व्यवसाय खेतिहर मज़दूरों का है। उनके साथ मिल-जुल कर रहने वाले अनेक बाहरी लोग हैं जो आरम्भ में व्यापार-वणिज्य के हेतु इस क्षेत्र में आए किन्तु बाद में बस गए। ये पर्याप्त रूप से शिक्षित तथा अपेक्षाकृत सम्पन्न हैं। योजना खंड के ९० गाँवों में १२ मुख्य कार्यालय केन्द्र हैं जिनमें प्रत्येक के अन्तर्गत ७-८ गाँवों का समूह है। मुख्य कार्यालय केन्द्र इन १२ गाँवों में हैं—रजखड़, बीडर, नगवा, बोम, दुद्धी, विंढमगंज, केवल, मझौली, महोली, झारो कलाँ, धूरवा और करहिया। दुद्धी कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत ये ९ गाँव हैं—दुद्धी, जाबर, मलदेवा, बरईडाँड़, शाहपुर, पीपरडीह, चितौरा, खजुरी और जपला।

दुद्धी एक पुराना क़स्बा है। इसकी जनसंख्या लगभग ३,००० है। यहाँ तहसील, थाना, डाकघर, एक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय और लड़कों का एक प्राइमरी स्कूल तथा लड़कियों का एक प्राइमरी स्कूल हैं। यहाँ सामुदायिक योजना खंड का मुख्य कार्यालय है, अतः हाल में योजना के कुछ भवन बन गए हैं। दुद्धी एक ओर सड़क से रॉबर्ट्सगंज से सम्बद्ध है और वही सड़क आगे मिर्ज़ापुर चली गई है। दूसरी ओर यह एक अन्य सड़क से विंढमगंज से सम्बद्ध है और वह सड़क आगे गढ़वा रोड में मिल जाती है। इस क्षेत्र में विंढमगंज ही दूसरा स्थान है जिसे क़स्बा कहा जा सकता है। वस्तुतः यहाँ केवल एक हाट है जिसका निर्माण और नामकरण ज़िले के एक भूतपूर्व कलेक्टर के नाम पर हुआ था। यह स्थान घी, लाह और तेलहन का निर्यात केन्द्र है। इसके वाणिज्य-सम्बन्ध मुख्यतः बिहार से हैं और यह बिहार और उत्तर प्रदेश की सीमा पर स्थित है। सड़कों द्वारा यह दुद्धी और डाल्टनगंज से सम्बद्ध है जहाँ अधिकतर व्यापारी और व्यवसायी बसे हुए हैं।

हाल तक यह सारा क्षेत्र ज़िले के शेष भागों से, विशेपतया वर्षा काल में, प्रायः कटा हुआ था। रिहन्द बाँध के निर्माण के फलस्वरूप रॉबर्ट्सगंज से पिपरी जाने वाली सड़क पक्की बना दी गई है। उसी सम्बन्ध में चोपन में सोन नदी पर एक

पुल वन गया है। दुद्धी और हथियानाला के बीच की सड़क अब दुद्धी को पिपरी-चोपन सड़क से सम्बद्ध करती है। अतएव अब सभी ऋतुओं में दुद्धी गम्य है। कई अन्य सड़कों का निर्माण हो रहा है और उनके निर्माण के बाद इस क्षेत्र के महान विकास की सम्भावनायें हो जायेंगी।

सभी ग्रामीण क्षेत्रों के समान दुद्धी क्षेत्र की भी अनेक समस्यायें हैं। सा. वि. यो. ने इस क्षेत्र में कुछ समस्याओं को हाथ में लिया है। इसके कार्यकलाप मुख्यत: कृषि, पशुपालन, जनस्वास्थ्य, शिक्षा, सामाजिक तथा सांस्कृतिक शिक्षा, ग्राम्य और कुटीर उद्योग, ग्राम संघटन तथा परिवहन की ओर संचालित हैं।

श्रमदान

एक प्रकार से गाँव में श्रमदान को सर्वप्रथम सा. वि. यो. ने आरम्भ किया। परन्तु जब सा. वि. यो. ने इसे लोकप्रिय बनाया और नियोजित तथा संघटित रीति से स्वेच्छापूर्ण श्रम पर आधारित कई उपयोगी योजनाओं को चलाया उसके पूर्व गाँव में सार्वजनिक भलाई तथा सामुदायिक कल्याण के लिए श्रम-संग्रह तथा सहकारी प्रयत्न का विचार पाया जाता था और उसका मूल कबायलियों और अकबायलियों के परम्परागत स्वभाव तथा सांस्कृतिक मूल्यों में निहित था। बारम्बार सामूहिक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए संयुक्त प्रयास किए गए। इसका यह अर्थ नहीं कि इस दिशा में प्रयत्न विधिवत् नियोजित अथवा श्रृंखलाबद्ध रूप में संघटित होते थे, परन्तु पुरा काल में भी ग्रामीण क्षेत्रों में स्वेच्छापूर्ण तथा अस्वेच्छापूर्ण श्रम का संग्रह अवश्य होता था। ध्यान में रखने की बात है कि सामान्यत: ग्रामवासी कृषि-सम्बन्धी विभिन्न कार्यों में वर्ष भर व्यस्त रहते हैं। निर्धन होने के कारण जो भी अवकाश मिलता है उसमें वे कोई ऐसा काम करते हैं जिसमें उन्हें कुछ अर्थलाभ हो। इस प्रकार जब जनकल्याण या व्यक्तिगत लाभ के लिए किसी स्वेच्छापूर्ण कार्य में कई व्यक्तियों का संयुक्त श्रम अपेक्षित होता है तो बहुत कम लोग अपने समय और श्रम का योगदान देने के लिए आगे आते हैं। फलत: धनी और उच्च जातियों के लोग निर्धनों तथा निम्न जातियों से बेगार लेते हैं। वस्तुत: बेगार निम्न जातियों और निर्धनों द्वारा कमाने का एक साधन था।

सा. वि. यो. द्वारा श्रमदान के चालू होने के पूर्व गाँव में श्रम-संग्रह द्वारा कई जनोपयोगी निर्माण कार्य हुए थे। ऐसे ही विभिन्न चबूतरे हैं—नन्हकू माझी का चबूतरा, शंकरजी के दो चबूतरे, राजमोहिनी का चबूतरा और डिहवार का चबूतरा। सार्वजनिक पूजा के इन स्थानों पर भजन-कीर्तन होता है। चबूतरे धर्म-निरपेक्ष उद्देश्यों के लिए भी प्रयुक्त होते हैं जैसे वहाँ गाँव सभा और सहकारी समिति की बैठकें होती हैं और वे सामुदायिक गायन के केन्द्र हैं।

उसी प्रकार बाँध हैं। 'सम्पत महराज का बाँध' समीपवर्ती खेतों को सींचने के लिए प्रयुक्त होता है। इसका निर्माण तब हुआ था जब रामदेव मिश्र विधि-सम्मत सपुरदार था और सम्पत महराज वास्तविक। चमारों और ग्राम समुदाय के अन्य अपेक्षाकृत निर्धन वर्गों के बेगार से इसका निर्माण हुआ था। उपर्युक्त बाँध के अतिरिक्त छोटे-छोटे कई बाँध हैं जिन पर धनी ग्रामवासियों का स्वामित्व है। सिंचाई के मुख्य साधन लकड़ा बाँध का निर्माण १९०८ में हुआ था। इसका सूत्रपात तत्कालीन ज़िलाधीश श्री विंढम ने किया था। ग्रामवासियों के संयुक्त प्रयत्नों से कई कुँयें भी बनाए गए हैं।

सा. वि. यो. द्वारा संघटित श्रमदान तथा उसके प्रति जनता की मनोधारणा

सा. वि. यो. द्वारा किए जाने वाले अनेक ग्रामकल्याण कार्यों में एक श्रमदान है। आशा थी कि श्रमदान द्वारा न केवल जनोपयोगी निर्माण कार्य होगा वरन् यह ग्रामवासियों में सहकारी श्रम की इच्छा का संचार करेगा और स्थानीय नेतृत्व भी विकसित करेगा। अन्य सभी योजनाओं की भाँति इस योजना की सफलता भी इस बात पर निर्भर थी कि जनता इसमें कितनी गहराई के साथ भाग लेती है। ग्रामवासियों को दीर्घकाल से सहकारी प्रयत्नों की आवश्यकता तथा उपादेयता की अनुभूति है परन्तु इस गाँव में श्रमदान आन्दोलन की लोकप्रियता में कई कारण बाधक बने।

इन कारणों में प्रथम है दरिद्रता। अधिकांश ग्रामवासी दैनिक पारिश्रमिक पाने वाले श्रमिक हैं। यदि वे श्रमदान के किसी कार्य में एक दिन भी भाग लें तो उसका अर्थ होगा पारिश्रमिक की यथेष्ट हानि। अतएव गाँव के अपेक्षाकृत दरिद्र स्तर के लोग श्रमदान को पसन्द नहीं करते।

दूसरे, जब स्वेच्छापूर्ण श्रम उपलब्ध नहीं होता तो अपेक्षित कार्य को पूरा करने के लिए बलप्रयोग से श्रम कराया जाता है। इस प्रकार श्रमदान का पतन हो कर वह बेगार बन जाता है। अब बेगार का उन्मूलन हो गया है और जहाँ लिया जाता हो विधि द्वारा दंडनीय है। इसके उन्मूलन से चमारों को, जो बेगार के मुख्य शिकार थे, बड़ी राहत मिली। परन्तु वे अब उन्मूलित बेगार और नए चालू किए गए श्रमदान में इसके अतिरिक्त कोई अन्तर नहीं देखते कि श्रमदान को राजकीय समर्थन प्राप्त है। फिर बेगार का एक सन्तोपदायी लक्षण भी था कि लोगों को पारिश्रमिक मिलता था किन्तु श्रमदान 'अवैतनिक बेगार' है। दरिद्रता के कारण अनेक लोग श्रमदान के कार्यों में सम्मिलित होने से दूर रहे और इसलिए लोगों से 'अनिवार्य श्रमदान' कराया गया। सरकारी काग़ज़ों और प्रॉजेक्ट के अभिलेखों में इसे श्रमदान के रूप में अंकित किया गया है जब कि वस्तुतः यह बेगार है।

श्रमदान योजना का एक उद्देश्य था नेतृत्व का विकास परन्तु गाँव में जाति प्रतिष्ठा तथा आर्थिक मर्यादा पर आधारित अपना अलग नेतृत्व प्रतिमान है। एक के बजाय कई नेता हैं और योजना की प्रगति में सर्वथा अप्रत्याशित रूप से गाँव के गुटों की उलझाने वाली जटिलतायें एक बड़े रोड़े के समान सामने आ जाती हैं। इस बात के उदाहरणस्वरूप कुछ मामले आगे चल कर 'सहकारी श्रम द्वारा किए गए पूर्ण तथा अपूर्ण निर्माण कार्य' शीर्षक के अन्तर्गत दिए गए हैं।

सहकारी प्रयास द्वारा निर्माण कार्य की असफलता का एक अन्य कारण यह है कि कभी-कभी योजनाओं के पीछे स्वार्थ छिपे रहते हैं। इनके उदाहरण आगे चल कर दिए गए हैं। इसके अतिरिक्त कभी-कभी निर्माण कार्य के ही विरुद्ध ग्रामवासियों का पूर्वाग्रह रहता है। उदाहरणार्थ, कलवार और कबायली अच्छी सड़कों के निर्माण के घोर विरोधी हैं जिसके कारण आगे चल कर इस अध्याय के अगले भाग में 'सड़कें' शीर्षक के अन्तर्गत बतलाए जायँगे। इसी प्रकार ग्रामवासी सोचते हैं कि इस श्रम-दान आन्दोलन द्वारा सरकार उन्हें मूर्ख बनाने की चेष्टा कर रही है। उनका कहना है कि कुछ निर्माण कार्यों को, जिनका उत्तरदायित्व वस्तुतः सरकार पर है और जो सरकारी व्यय पर होने चाहिए, चतुराई के साथ श्रमदान के आदर्श की ओट में ग्राम-वासियों के कन्धों पर टाल दिया गया है।

सहकारी श्रम द्वारा किए गए पूर्ण तथा अपूर्ण निर्माण कार्य

१. **पुलियाँ**—चितौरा-खजुरी सड़क पर एक पुलिया बनाई गई है और इससे चितौरा से दुद्धी के लिए एक अन्य मार्ग खुल गया है। अकेले विरोधी दल के नेता बैजनाथ चौबे के आगे आने से पुलिया बनी और इसके पूरी होने पर हर किसी ने इसे एक सराहनीय कार्य माना। सा. वि. यो. कोष से इसे स्वीकृति और अर्थदान मिला। इसकी सफलता से प्रोत्साहित हो कर चौबे ने एक अन्य पुलिया के निर्माण कार्य को हाथ में लिया। परन्तु ग्रामवासियों ने सोचा कि दूसरी पुलिया के निर्माण के पीछे व्यक्तिगत स्वार्थ काम कर रहा था क्योंकि यह पुलिया ब्राह्मण टोला और उसके घर को सम्बद्ध करने वाली कड़ी का काम करेगी। फलतः उन्होंने उसे सहयोग देना अस्वीकार किया और यह काम आज तक अधूरा पड़ा है। लकड़ा नदी पर एक पुलिया बनाने की, जिससे नदी-पार की सड़क सर्वदमन सिंह के घर तक आ सकती है, वास्तव में आवश्यकता है। यहाँ फिर केवल ठाकुरों के स्वार्थ थे, अतः इस काम में ग्रामव्यापी सहयोग न मिल सका। इसके अतिरिक्त सरपंच सर्व-दमन सिंह में भी उत्साह का अभाव था जिससे काम पूरा न हो सका।

२. **सड़कें**—हाल के वर्षों में विकास तथा निर्माण कार्यक्रमों में सरपंच और गाँव सभापति (चितौरावासी) सर्वदमन सिंह ने कम रुचि दिखलाई है। इधर सार्वजनिक निर्माण विभाग के छोटे-छोटे ठेकों तथा राज्य द्वारा आयोजित अन्य कार्यों के द्वारा धन उपार्जित करने की ओर ही अधिकतर उसका ध्यान रहा है। इस प्रकार उपर्युक्त कार्यकलापों की ओर उसने बिलकुल ध्यान नहीं दिया है। कभी-कभी उसकी क्रियायें विघ्नमूलक भी रही हैं जैसे वह बैजनाथ चौबे का विरोध करता रहा जो सड़क निर्माण सम्बन्धी कुछ बड़ी-बड़ी योजनायें चालू करना चाहता था। १९५०-५१ में दुद्धी-चितौरा सड़क के निर्माण के लिए बैजनाथ चौबे ने सक्रिय प्रयत्न किए। उसे राज्य अधिकारियों का समर्थन प्राप्त था जो सड़क पूरी करने को उत्सुक थे। प्रस्ताव ग्रामवासियों के सामने स्वीकृति के हेतु रखा गया किन्तु इसका विरोध सर्वदमन सिंह ने केवल इसलिए किया कि इसे उसके विरोधी ने उपस्थित किया था। सर्वदमन सिंह ने बैजनाथ चौबे के साथ दुहरी चाल चलनी चाही और अन्त में वह उसकी योजना को नष्ट करने में सफल हुआ। सर्वदमन सिंह की मुख्य आपत्ति थी कि योजना के सफल हो जाने पर चौबे अत्यधिक ख्याति तथा लोकप्रियता अर्जित कर लेगा। उसने चौबे के प्रस्तावों को रद कराने के लिए तहसीलदार से नए सिरे से बातचीत की और शिकायत की कि इस प्रकार की योजना का अर्थ होगा दरिद्र किसानों को उनकी भूमि से वंचित कर देना। चौबे ने समय की पुकार पूरी की और योजना की सफलता के लिए कोई भी त्याग करने की इच्छा व्यक्त की। वह अपनी कुछ भूमि छोड़ने और उन लोगों में उसके अमूल्य वितरण के लिए तत्पर था जिनकी भूमि की हानि निर्माण के कारण होती। गाँव के दलों की प्रतिस्पर्धाओं और गुटबन्दियों को देख कर आरम्भ में राज्य अधिकारियों द्वारा दिखाया गया उत्साह बहुत हद तक ठंडा हो गया और उन्होंने इस विषय को यह कह कर समाप्त कर दिया कि सुधार का कोई क़दम उठाने के पूर्व गाँव में एकता का होना अनिवार्य है। इस प्रकार प्रस्ताव बिलकुल त्याग दिया गया। आज तक इस प्रस्ताव की असफलता का लोगों को दुःख है और अनेक लोग सारा दोष सर्वदमन सिंह को देते हैं। यदि उसे समझा कर मना लिया जाता और उसके साथ नीतिपूर्वक व्यवहार किया जाता तो सड़क के निर्माण से गाँव समृद्ध हो जाता। हर किसी ने स्वीकार किया कि प्रस्ताव अच्छा था परन्तु यह केवल इसलिए गिर गया कि इसे अपेक्षाकृत दुर्बल दल के नेता चौबे ने उपस्थित किया था। बहुतों ने सोचा था कि जवाहर सिंह प्रस्ताव का अनुमोदन करेगा क्योंकि मध्य में स्थित होने के कारण उसका घर प्रमुख हो जायगा और मोटर चलने योग्य सड़क से सीधा दुद्धी से सम्बद्ध हो जायगा। प्रस्ताव के पक्ष में होते हुए भी जवाहर सिंह ने बैजनाथ चौबे का सक्रिय समर्थन नहीं किया क्योंकि जवाहर सिंह सर्वदमन

सिंह के दल का है। दोनों गुटों के सक्रिय सदस्यों के अतिरिक्त गाँव के तटस्थ एवं तटवर्ती व्यक्ति हैं। प्रश्न के सम्पूर्ण महत्व को समझे बिना उन्होंने प्रायः आँख मूँद कर उसका समर्थन अथवा विरोध किया।

चमारों का समुदाय अपने ही विशिष्ट कारणों से अच्छी सड़कें चाहता था। उनका कथन है कि छक कर शराब पीने के बाद जब वे अँधेरे में भट्ठी से वापस आते हैं तो उन्हें चलने के लिए अच्छी सड़कों की आवश्यकता रहती है जिससे वे गड्ढों में गिर कर अपने हाथ-पाँव न तोड़ बैठें। इस प्रकार उनके लिए अच्छी सड़कों की एकमात्र उपादेयता यह है कि नशे में होने पर सुरक्षित रूप से घर लौटने की गारंटी हो। इस समुदाय के वृद्धतम तथा सबसे सम्मानित सदस्यों में एक, सदन चमार जब गत वर्षा ऋतु में एक अँधेरी रात को नशे में घर लौट रहा था तब एक गड्ढे में गिर कर अपनी टाँग तोड़ बैठा। उसे वहुत कष्ट था तथा लगभग एक मास तक खाट पकड़े रहा। सम्भवतः जीवन में प्रथम बार गाँव में अच्छी सड़कों का विचार उसके मस्तिष्क में उपजा। उसने बारम्बार लोगों से कहा कि ख़राब सड़कें गाँव के सुनाम के लिए अभिशाप तथा कलंक हैं। अतएव अच्छा हो जाने पर कुछ समय तक वह गड्ढे भरने और सड़कों की मरम्मत के काम में लगा रहा। अन्य चमारों ने भी सदन चमार के दुर्भाग्य से पाठ सीखा और अपने टोले की सड़क की मरम्मत में कठिन श्रम किया। परन्तु उनमें अधिकांश का विचार था कि उनको अच्छी सड़कें प्रदान करना सरकार का प्राथमिक कर्तव्य था और ऐसे निर्माण कार्यों के लिए उनसे श्रमदान नहीं कराना चाहिए क्योंकि इससे उन्हें दैनिक श्रम तथा पारिश्रमिक से वंचित रहना पड़ता था। यह बेगार का ही एक अन्य रूप था और गाँव समुदाय के अपेक्षाकृत निर्धन वर्ग होने के कारण उन्हें ही वास्तविक शारीरिक श्रम का बोझ उठाना पड़ता था जब कि उच्च जातियाँ केवल अवेक्षण (supervision) कार्य करती थीं। इस प्रकार दुर्बलतम कंधों को सबसे भारी बोझ उठाना पड़ता था।

कलवारों का सर्वथा भिन्न मत है। अच्छी सड़कों के होने तथा नए मार्गों के खुलने के वे इसलिए विरोधी हैं कि उन्हें नए संकटों का सामना करना पड़ सकता है—अनजान लोगों से सम्पर्क का भय, चोरी-डकैती का भय, बाहरी लोगों के अन्तःसरण तथा अधिकारियों के अनावश्यक हस्तक्षेप और बीच-बचाव की आशंका। वे सरकारी कर्मचारियों के आगमन की उत्तरोत्तर वृद्धि को पसन्द नहीं करते क्योंकि उसका अर्थ है निरन्तर रोक-टोक, नियंत्रण तथा अवेक्षण। अच्छी सड़कें सरकारी कर्मचारियों को निरन्तर निरीक्षण तथा दिन प्रति दिन के व्यापार में हस्तक्षेप के लिए मुक्त निमंत्रण देती हैं।

माझी, भुइयाँ, चेरो और पनिका परिवारों ने भी सीधी और समतल सड़कों के निर्माण का विरोध किया। अच्छी सड़कें गाँव की एकान्तता, पृथकत्व तथा प्रशांति के लिए संकट उपस्थित कर देती हैं। वे सभी प्रकार के लोगों के अन्तःसरण के विरोधी हैं जब कि कलवार विशेपतया अधिकारियों के प्रवेश के विरोधी हैं। वे अपना भय व्यक्त करते हैं कि यदि मोटर चलने योग्य सड़क द्वारा दुद्धी क़स्बे तथा तहसील के मुख्य कार्यालय से सुगमतापूर्वक चितौरा सम्बद्ध हो जायगा तो ग्रामवासियों की शांति सदा के लिए छिन जायगी क्योंकि उन्हें बाहरी लोगों का संकट बना रहेगा। फलतः वे चाहते हैं कि गड्ढे ज्यों के त्यों पड़े रहें और वे अच्छी सड़कों के निर्माण के विरुद्ध हैं।

दृष्टांत—गत वर्षाकाल में इस गाँव के रामचन्द्र साहु को कुछ डाकुओं का चेतावनी का पत्र मिला जिसमें उसके घर पर तत्काल डाका डालने की धमकी थी। सम्भवतः यह एक प्रकार की व्यावहारिक दिल्लगी थी। भयग्रस्त होकर ग्रामवासी भाग कर वन में जा छिपे। सम्पत्ति घर छोड़ दी गई। पुलीस दल ने आ कर स्थिति पर नियंत्रण किया और शांति स्थापित की। चेतावनी के पत्र में निर्दिष्ट रात्रि को पुलीस का पहरा बिठाया गया। परन्तु कोई घटना न घटी। बाद में उन्होंने अपना अहोभाग्य समझा कि उन्होंने अच्छी सड़कें नहीं बनाई थीं जो डाकुओं के दल का गाँव में आना सुगम कर देतीं। इस प्रकार ख़राब सड़कें प्रच्छन्न वरदान सिद्ध हुई।

अच्छी सड़कें होने के विरुद्ध दिए जाने वाले कारणों के बावजूद सड़क निर्माण के प्रति गाँव पूर्ण रूप से सजग रहा है और ऐसी योजनाओं के नियोजन तथा प्रगति में बार-बार बैजनाथ चौबे का अग्रगण्य कर्तृत्व विदित है। उपर्युक्त मामले के अलावा, जिसमें उसे सफलता नहीं मिल सकी, विकास कार्यक्रमों में अपनी रुचि और उत्साह का उसने यथेष्ट प्रमाण दिया है। यहाँ तक कि १९४७-४८ तक गाँव के अन्दर ही कोई भी अच्छी सड़क नहीं थी। इसका श्रेय चौबे को है कि प्रथम बार ग्रामवासियों ने एक सड़क तैयार करने के लिए सुसमाहित प्रयास आरम्भ किया। बाद में इसका नाम ब्राह्मण टोले की सड़क पड़ गया। लोगों का कथन है कि यह क्षेत्र निम्न धरातल पर था और निर्माण कार्य में बहुत अधिक मिट्टी का काम अपेक्षित था। आज इसकी उपादेयता भलीभाँति समझी जाती है, विशेपतया ब्राह्मणों द्वारा जिनके घर मुख्यतः इसके किनारे पर स्थित हैं। यह काम किसी साधारण पुरुप के सामर्थ्य के बाहर की बात थी परन्तु तहसील कांग्रेस का सभापति रहने तथा यथेष्ट रूप से प्रभावशाली होने के कारण चौबे अपने प्रयासों में सफल रहा। इससे उसने अच्छा नाम कमाया। बाद में चौबे की स्थिति गिर गई और वह सर्वदमन सिंह से पराजित हुआ जिसके

हाथ में आजकल नेतृत्व की बागडोर है। सड़क निर्माण के कार्यक्रम को अपेक्षाकृत धक्का पहुँचा है। सा. वि. यो. के आरम्भ तथा सभापति पद पर सर्वदमन सिंह के निर्वाचन के काल से एक अन्य सड़क, तथाकथित नदी-पार की सड़क, द्वारा गाँव की श्रीवृद्धि हुई है। इसका निर्माण जनवरी १९५५ में श्रमदान सप्ताह के अन्तर्गत हुआ। इस श्रमदान कार्य में ग्रामवासियों में अभूतपूर्व टोला-भावना थी। पश्चिमी टोले के सदस्यों ने काम में भाग नहीं लिया। ऐसा समझा गया कि इस प्रकार की सड़क का प्रत्यक्ष लाभ पश्चिमी टोले के नेताओं अर्थात् प्यारे सिंह, सर्वदमन सिंह और जवाहर सिंह को ही मिलने वाला था इसलिए पश्चिमी टोले के लोगों ने, जहाँ कलवारों की प्रभुता है और जिसका नेतृत्व रामचन्द्र साहु, भुलई साहु और नकुल साहु के हाथों में है, सहयोग नहीं दिया। पश्चिमी टोले में उतनी दृढ़ एकता नहीं है न इतनी शक्ति ही है कि पूर्वी टोले द्वारा आयोजित किसी प्रयत्न का मुक्त रूप से और एकता के साथ विरोध कर सके। वे मुठभेड़ बचाते हैं क्योंकि वे निज को दुर्बल अनुभव करते हैं। इस श्रमदान के कार्य को सफल बनाने में ग्रामसेवक (Village Level Worker) का योगदान नगण्य था। वह ऐसे कामों में भी, जिन पर सारे गाँव को ध्यान देना चाहिए था, पूरे गाँव को एकमत न कर सका। उसे क्षेत्रगत टोला-नेतृत्व का पता तक न था और वह दोनों टोलों में साथ-साथ सामुदायिक कार्य आरम्भ कर एक स्वस्थ प्रतियोगिता की भावना न उत्पन्न कर सका जिससे अन्त में दोनों में निर्माण कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न होता। परन्तु गाँव में सबसे अधिक एकताबद्ध तथा शक्तिसम्पन्न जाति होने के कारण ठाकुर लोग सड़क का निर्माण करने में समर्थ हुए।

उपर्युक्त दो सड़कों के निर्माण के अतिरिक्त गड्ढे भरना और ग्रामपथों की मरम्मत जैसे लघु कार्य भी हाथ में लिए गए हैं। सा. वि. यो. के प्रारम्भिक वर्ष में जब ग्रामसेवकगण प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे थे, क्षेत्र कार्यकर्ताओं की अप्रेंटिसी के समय लघु श्रमदान कार्य हाथ में लिए गए। यह गाँव अप्रेंटिस ग्रामसेवक हृदय नारायण के सुपुर्द था। उसने श्रमदान कार्यों में बहुत रुचि दिखलाई। उसने पश्चिमी टोले के युवकों को जो मुख्यतः कलवार और चमार जातियों के थे एकत्रित किया, उनके लिए खेल-कूद की व्यवस्था की और श्रमदान कार्य के लिए सफल आन्दोलन किया। उसकी अप्रेंटिसी में संघटित मुख्य कार्य हैं कलवार टोले के पथ की मरम्मत, चमार टोले में गड्ढे भरना और पश्चिमी टोले में गाँधी चबूतरे का निर्माण।

१९५६ में दुद्धी के अधिकारियों ने श्रमदान सप्ताह के अन्तर्गत दुद्धी-लकड़ा सड़क के निर्माण का कार्यक्रम तैयार किया। कार्य चितौरा गाँव में होने वाला था, अतः चितौरावासियों से अधिक उत्साह एवं सहयोग की आशा थी किन्तु विस्मय की बात

थी कि उन्होंने सहायता न दी और गाँव का योगदान प्रायः शून्य रहा। चितौरा के केवल उन निवासियों ने जो तहसील कर्मचारी भी थे यथा जवाहर सिंह, पुरुषोत्तम कलवार, पलकधारी सिंह, मोती सिंह, बच्छराज सिंह, लाल सिंह और गाँव के अधिकारियों और ग़ैर-सरकारी पदधारियों ने उसमें भाग लिया। चमार सम्मिलित होने में असमर्थ थे क्योंकि उनमें एक दिन का पारिश्रमिक भी गँवाने की सामर्थ्य नहीं थी। कलवार अधिकतर 'लदनी' के व्यापार के सम्बन्ध में बाहर ही रहते हैं। जब से गाँव के विषयों में बैजनाथ चौबे का प्रभाव क्षीण हो गया है विकास कार्यों में ब्राह्मणों की अभिरुचि स्पष्टतः घट गई है। इसके अतिरिक्त गाँव की विपरीत दिशा में निवास करने वाले ब्राह्मणों को इस सड़क विशेष से कोई लाभ नहीं होता था। परमदेव मिश्र को छोड़ कर जो रानू स्कूल में सरकारी अध्यापक है कोई भी ब्राह्मण सरकारी कर्मचारी नहीं है और इसलिए अधिकारीगण उन पर सम्मिलित होने के लिए प्रत्यक्ष रूप से दबाव नहीं डाल सकते थे। सर्वोपरि, अधिकारीगण स्वयं विशेष गम्भीर नहीं थे और उनकी उपस्थिति कम थी। यदि उपस्थिति को किसी काम में जनता की रुचि और गम्भीरता को जाँचने का किसी प्रकार मापदंड माना जाय तो अधिकांशतः अधिकारियों ने इस काम को एक लाक्षणिक कार्य या हँसी-दिल्लगी के रूप में किया और मुख्य कार्य के लिए अपने नौकरों-चाकरों पर निर्भर रहे। यह गाँव वालों के लिए एक बुरा उदाहरण था और उन्होंने भी इस काम में गम्भीरता नहीं दिखाई। प्रथम दिन पर्याप्त संख्या में लोग आए परन्तु शीघ्र ही संख्या लुप्त हो गई। यद्यपि श्रमदान को एक सप्ताह तक चलाना था तीन-चार दिन बाद एक भी व्यक्ति काम पर न आया। जहाँ तक अन्य निम्नवर्ण लोगों और कबायलियों का प्रश्न है वे भी चमारों द्वारा बतलाए गए कारण से अलग रहे। उनमें अधिकांश ने श्रमदान को बेगार ही समझा और इसलिए इससे भागने की चेष्टा की। इसके अतिरिक्त उन्हें अपने दैनिक पारिश्रमिक को गँवाने का भय था। अतएव कोई यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि अतीव दरिद्र लोगों में श्रमदान सफल नहीं हो सकता क्योंकि एक दिन के लिए भी उनके श्रम का दान उन्हें उस दिन के अपने आहार से वंचित कर देता है।

इस वर्ष गाँव में श्रमदान बिलकुल नहीं हुआ। संभवतः १९५६ में श्रमदान की असफलता का जनता के मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ा। इस प्रकार के कार्यक्रम की अनुपयोगिता पर उनका विश्वास जम गया। अन्य कारण भी थे। श्रमदान बिलकुल न हो पाने का एक मुख्य कारण यह था कि सरपंच और गाँव सभापति सर्वदमन सिंह इस काल में बाहर रहा। ग्रामसेवक ने दुद्धी में श्रमदान संघटित करने पर सारा बल लगाया जिसका मुख्य अंग था हाट से हरिजन बस्ती को जाने

वाली नाली की सफ़ाई जिसमें अधिकारियों ने भी भाग लिया। इस बार विरोधी दल का नेता बैजनाथ चौबे बिलकुल आगे नहीं आया। उसके अनुसार यह सरपंच का कर्तव्य था जिसमें उसके कथनानुसार अभिरुचि तथा उत्साह का अभाव था। इसके अतिरिक्त उसके पास ग्रामसेवक या प्रॉजेक्ट का कोई अन्य अधिकारी गया भी नहीं।

सामुदायिक भवन की आवश्यकता तथा पंचायतघर-सामुदायिक केंद्र के निर्माण पर विवाद

गाँव में ऐसा कोई सार्वजनिक स्थान नहीं है जिसका प्रयोग सामाजिक, मनोरंजन-सम्बन्धी अथवा शैक्षणिक उद्देश्यों के लिए किया जा सके। न तो कोई पाठशाला है न मंदिर जहाँ बच्चों को पाठशालीय, धार्मिक अथवा सदाचार की शिक्षा दी जा सके। प्रौढ़ रात्रि पाठशाला तथा बेसिक प्राइमरी कन्या स्कूल सा. वि. यो. द्वारा खोले गए थे और अल्प काल तक जीवित रहे। उन दोनों की कक्षायें निजी घरों में लगती थीं क्योंकि गाँव में ऐसा कोई सामुदायिक भवन नहीं है जो इस उद्देश्य के हेतु प्रयुक्त होता। अनौपचारिक बैठकों में एक सामुदायिक भवन की आवश्यकता चर्चा का एक रुचिकर विषय रहा है।

एक पंचायतघर-सामुदायिक केन्द्र के निर्माण की बातचीत आरम्भ हुई और यह तीन वर्षों तक गाँव का प्रमुख प्रश्न रहा परन्तु इस उपयोगी योजना के कार्यान्वित होने में स्थान के चुनाव, व्यक्तिगत तथा सहकारी योगदान, नेतृत्व तथा ग्रामवासियों के स्वतः आगे आने की समस्यायें महान बाधायें सिद्ध हुई जिसके फलस्वरूप कभी भवन का निर्माण न हो पाया। यह अपने आप में एक मनोरंजक कथा है।

चितौरा गाँव सभा में ३ गाँव हैं—चितौरा, खजुरी और जपला। तहसील का एक अग्रणी गाँव होने से तथा गाँव सभा का केन्द्र होने के कारण चितौरा ने कुछ साहसपूर्ण कार्यक्रम आरम्भ करने के निमित्त सा. वि. यो. के अधिकारियों का ध्यान आकर्षित किया है। पंचायतघर-सामुदायिक केन्द्र निर्माण की योजना में अन्य स्थानों की अपेक्षा चितौरा को प्राथमिकता दी गई और आशा की गई कि चितौरा एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करेगा। जनता के भाग लेने और योगदान के विषय में ऊँची आशायें थीं। परन्तु सभी आशाओं पर पानी फिर गया। जिस ग्रामसेवक के सुपुर्द चितौरा था उसे संभवतः गाँव के दलों और नेतृत्व प्रतिमान की बिलकुल परख नहीं थी और इसलिए नीतिनैपुण्य के साथ स्थिति को अपने अधिकार में करने में वह असफल रहा। वह न तो स्थान के चुनाव या जनता के योगदान से सम्बन्धित प्रश्नों को हल कर सका न अगुओं और निर्णायकों के कर्तृत्व विषयक विवादों

को। लगभग एक वर्ष तक स्थान का चुनाव मतभेद का विषय बना रहा। इसके अतिरिक्त इसका सम्बन्ध टोला नेतृत्व और दलगत नेतृत्व के तत्वों से था। एक अवसर पर रानू के स्कूल के अध्यापक श्री परमदेव मिश्र ने अपनी भूमि का स्वेच्छापूर्ण दान देना स्वीकार कर लिया। उनकी भूमि मध्य में स्थित होने के कारण टोला नेतृत्व की स्थिति को प्रायः सन्तुलित रखती। परन्तु उनके पड़ोसियों ने एक प्रकार से विघ्नकारक भाग लिया और उन्हें इस प्रकार का दान देने से यह कह कर रोका कि उनके घरों के मध्य सार्वजनिक भवन के निर्माण से उनके घरों का पर्दा छिन जायगा और उनके घरों की स्त्रियों की मुक्त रूप से घूमने-फिरने की स्वतंत्रता में बाधा पड़ेगी। वे इस विचार को सहन नहीं कर सकते थे कि बाहरी लोग आ कर उनके बीच बसें। निदान, उन्होंने सुझाया कि गाँव के मध्य से दूर स्थित नन्हकू बाबा का आम का बाग सर्वोत्तम स्थान होगा। अन्ततः इस बाग के लिए सब सहमत हुए। तब एक ठेकेदार राजकिशोर सिंह को भवन के लिए प्राक्कलन तैयार करने को कहा गया। उसने २,२०० रु. का प्राक्कलन प्रस्तुत किया जब कि सा. वि. यो. के लोग अधिकतम उपदान केवल १,००० रु. का देने को तैयार थे। अब पूरक आवश्यकता के लिए चन्दे के विषय में आगे आने का प्रश्न था। कोई स्वयं आगे नहीं आया वरन् हर किसी ने अगुआई के लिए सर्वदमन सिंह का मुँह ताका। उसने वचन दिया कि वह लकड़ी, ईंट और श्रम के रूप में पदार्थ-संग्रह करेगा परन्तु रुपए-पैसे की सहायता करने में असमर्थ था। प्रतिस्पर्धी दल के नेता बैजनाथ चौबे ने लोगों से कहा कि वह सफलतापूर्वक इस काम को निभाएगा यदि सर्वदमन सिंह अपनी पराजय स्वीकार कर लिख कर दे दे कि इस प्रकार की योजना को पूर्ण करना उसके साधन, शक्ति तथा योग्यता के बाहर था। स्पष्टतः सर्वदमन सिंह अपने को इतना नीचे गिराने की नहीं सोच सकता था और लगभग एक वर्ष और मामला खटाई में पड़ा रहा। चूँकि यह कार्य लगभग दो वर्षों तक हाथ में नहीं लिया जा सका और इस काल में जिस ग्रामसेवक को यह कार्य सौंपा गया था वह पदोन्नति पर किसी अन्य खंड (ब्लॉक) में चला गया, इसलिए पहले चितौरा के लिए निर्धारित धनराशि किसी अन्य गाँव सभा को दे देनी पड़ी।

निष्कर्ष—किसी भी अन्य कार्यक्रम अथवा संस्था की भाँति सा. वि. यो. द्वारा संकल्पित एवं कार्यान्वित श्रमदान में भी सबल तथा दुर्बल दोनों पक्ष रहे हैं। विशुद्ध रूप से उत्पादन की दृष्टि से श्रमदान की क्षमता अथवा प्रभावोत्पादकता जाँचने से अधिक महत्वपूर्ण है जनता और उसके सामाजिक जीवन पर इसके अच्छे या बुरे प्रभावों की जाँच करना। यदि सकारात्मक पक्ष में इसने कम से कम कुछ सीमा तक स्वेच्छापूर्ण स्थानीय नेतृत्व का विकास किया है और सामुदायिक चेतना एवं सामुदायिक

प्रभाव के विकास में योगदान दिया है तो कुछ नकारात्मक परिणाम भी हुए हैं—बलात् श्रम लेना और रूपबद्धता (regimentation), सामान्य उदासीनता और प्रतिस्पर्धी दलों का वैरभाव तथा विभिन्न सामाजिक स्तरों से असमान माँगें।

श्रमदान में भाग न लेने के कारणों में एक दरिद्रता है। चमार और कबायली समुदाय तथा जनता के अपेक्षाकृत निर्धन वर्ग बिना पारिश्रमिक के काम नहीं कर सकते और इसलिए श्रमदान को बिना पारिश्रमिक के बलात् लिया जाने वाला श्रम मानते हैं। कलवार समुदाय इसमें कोई व्यक्तिगत लाभ नहीं देखता। राजनीतिक विरोध एवं दल-प्रतिस्पर्धाओं के कारण ठाकुर और ब्राह्मण संकोच करते हैं। अनेक अन्य श्रमजीवियों को सर्वथा अवकाश नहीं है। फिर भाग न लेने में उचित समझ-बूझ का अभाव एक अन्य बड़ा कारण है। निर्धन किसान इससे डरते हैं क्योंकि इसके कारण उनकी भूमि पर अतिक्रमण की आशंका रहती है। अनेक सूचनादाता ऐसे थे जिन्होंने उत्तर ही नहीं दिए या अप्रासंगिक बातें कहीं और कुछ ने भाग न लेने के कारणों में निरक्षरता, दरिद्रता तथा स्वार्थपरता को गिनाया। ऐसा कोई भी सूचनादाता नहीं था जिसने यह कहा हो कि उसने गर्व या झूठी प्रतिष्ठा या उच्चतर सामाजिक-आर्थिक मर्यादा के कारण भाग नहीं लिया जैसा मैदानों के नगरप्रभावित गाँवों में देखा जाता है।

सा. वि. यो. के अधिकारीगण इस मत के थे कि जब तक किसी न किसी रूप में दबाव नहीं डाला जायगा इस क्षेत्र में श्रमदान का कार्यक्रम सफल नहीं हो सकता। दबाव डालने से उनका अभिप्राय था जुर्माने, अनिवार्यता, बलात् सम्मिलित करने इत्यादि धमकियों द्वारा सरकारी और गाँव के अधिकारियों का दबाव डालना।

सामाजिक तथा सांस्कृतिक शिक्षा

सामाजिक तथा सांस्कृतिक शिक्षा सा. वि. यो. का एक महत्वपूर्ण अंग है। सा. वि. यो. की विचारधारा से जनता को परिचित कराने के हेतु सामाजिक शिक्षा के विभिन्न माध्यमों का प्रयोग किया जा रहा है। सामाजिक तथा सांस्कृतिक शिक्षा का उद्देश्य केवल निरक्षरता-निवारण नहीं है वरन् सामाजिक जागरूकता के विकास में बाधक पूर्वाग्रहों का अन्त करना भी है। इस कार्यक्रम के कुछ अंग हैं प्रौढ़ साक्षरता कक्षायें, मंगल दल, भजन मंडलियाँ, अन्तरग्राम आवागमन तथा ग्रामलक्ष्मी केन्द्र।

१. प्रौढ़ शिक्षा

एक प्रकार से सभी प्रौढ़ शिक्षा सामाजिक शिक्षा है। प्रथम वर्ष में लगभग १६ प्रौढ़ साक्षरता कक्षायें तथा द्वितीय वर्ष में २४ कक्षायें लगीं। प्रत्येक शैक्षणिक

वर्ष ६ से ८ मास तक चला। शिक्षक को १५ रु. मासिक वेतन मिलता था। कक्षायें सायंकाल देर से होती थीं। प्रकाश का प्रबन्ध था और शिक्षण के लिए प्रत्येक शिक्षक को एक-दो पुस्तकें दी गईं।

चितौरा में नवम्वर १९५४ में एक प्रौढ़ पाठशाला खुली। सहायक प्रॉजेक्ट अधिकारी (सामाजिक शिक्षा) ने दुद्धी तहसील के एक कर्मचारी पुरुषोत्तम को शिक्षक नियुक्त किया। प्रौढ़ पाठशाला के अस्तित्व के प्रथम मास में कक्षा की संख्या १५ से बढ़ कर २४ हो गई। प्रति दिन प्रार्थना से कक्षा आरम्भ होती थी। शिक्षार्थियों को हिन्दी पढ़ने-लिखने और कुछ गणित की शिक्षा दी जाती थी। डाकघर, तहसील और थाने की क्रियाविधियों का भी कुछ ज्ञान कराया गया। रोगों और सा. वि. यो. द्वारा उनकी रोक-थाम के लिए किए गए प्रयत्नों के बारे में भी उन्हें कुछ बतलाया गया। भजन-कीर्तन भी कराए गए।

यद्यपि कक्षाओं के लिए नियत समय रात के ८ से १० बजे तक था शिक्षार्थी बिरले ही समय पर आते थे जिसके फलस्वरूप कक्षायें रात में देर तक, ११½ बजे तक, चलानी पड़ती थीं। जब भी कक्षा के क्रम की उबा देने वाली एकरसता को भंग करने के लिए शिक्षार्थी कीर्तन करना चाहते कीर्तन होता था। स्थानाभाव के कारण शिक्षार्थियों को शिक्षक के निवासस्थान पर एकत्रित होना पड़ता था। कभी-कभी उप प्रॉजेक्ट कार्यकारी अधिकारी और सहायक प्रॉजेक्ट अधिकारी (सामाजिक शिक्षा) कक्षाओं का निरीक्षण करते थे।

चितौरा की कक्षा में १३ हरिजन, ७ गोंड, २ पुनिका, १ लोहार और १ कलवार थे। शिक्षार्थियों का वयस् ८ से ३० वर्ष तक था। परन्तु पाठशाला उद्देश्य-पूर्ति में असफल रही। स्थापना के चार मास वाद ही शिक्षक गम्भीर रूप से अस्वस्थ हो गया। चुटकाई बहरा के एक व्यक्ति को काम चालू रखने को कहा गया। परन्तु वह अनुत्तरदायी निकला जिसके फलस्वरूप सारी सम्पत्ति नष्ट या लुप्त हो गई। चार्ट फाड़ डाले गए और लालटेन टूट गई। उपस्थिति अनियमित थी जिसका अधिक कारण शिक्षक था न कि शिक्षार्थी। हर किसी की इच्छा के सर्वथा विपरीत वह पाठशाला को हटा कर अपने गाँव में ले जाना चाहता था। २० दिनों के वाद पुरुषोत्तम लौटा और दुबारा उसने कार्य सँभाला। सा. वि. यो. के अधिकारियों की आज्ञानुसार उसने एक परीक्षा ली। १५ व्यक्तियों को 'साक्षरता प्रमाणपत्र' दिए गए। परीक्षा की समाप्ति के वाद पाठशाला भी समाप्त हो गई।

प्रौढ़ साक्षरता पाठशाला के फल—पाठशाला के तात्कालिक फल न्यूनाधिक मात्रा में सन्तोषजनक रहे। अनेक प्रौढ़ व्यक्तियों ने इस प्रकार दिए गए अवसर का लाभ उठा कर पढ़ना-लिखना सीखा। पाठशाला ने दो पुस्तकें 'गाँव की वात'

और 'ज्ञान की बात' निर्धारित की थीं। कुछ उत्साही शिक्षार्थियों ने थोड़ा-बहुत साधारण गणित भी सीखा और आज वे उसके ज्ञान का दैनिक कामों में प्रयोग करने में समर्थ हैं। कुछ प्रौढ़ अपने साथी ग्रामवासियों के लिए पत्र भी पढ़ते-लिखते हैं। कुछ व्यक्ति ऐसे थे जिन्होंने अपने नाम केवल इसलिए लिखा रखे थे कि उन्हें भजन-कीर्तन में अभिरुचि थी।

परन्तु पाठशाला का कोई स्थायी प्रभाव न पड़ा। शिक्षक इस कार्य के लिए सर्वथा अप्रशिक्षित था। उसने १९५१ में हाई स्कूल परीक्षा दी थी और एक बार अनुत्तीर्ण होने के उपरान्त उसने दुबारा प्रयत्न नहीं किया। उसने शिक्षण कार्य १५ रु. के वेतन पर केवल अपनी आयपूर्ति के लिए ग्रहण किया था। बाद में अवश्य ही उसे शिक्षण में अभिरुचि उत्पन्न हुई। उसके प्रयत्नों से ही २५ शिक्षार्थी लाए जा सके। उसने उन्हें पढ़ना, लिखना और गणित तीनों विद्यायें सिखाईं और कुछ सामान्य ज्ञान भी कराया परन्तु यह संदिग्ध है कि वह सा. वि. यो. के आदर्शों और कार्य को लोकप्रिय बनाने में सफल हुआ। इस संघटन तथा इसके उद्देश्यों का उसका अपना ज्ञान अत्यन्त सीमित और खोखला था। फिर भी उसके बीमार पड़ने पर पाठशाला को धक्का पहुँचा।

योजना ने प्रत्याशित रूप से जनता में उत्साह संचार नहीं किया जिसका एक कारण यह था कि पाठशाला में अर्जित ज्ञान का प्रयोग करने के लिए लोगों के सामने कोई मार्ग नहीं था। जिन्होंने पढ़ना-लिखना सीखा था वे दुबारा निरक्षरता की अवस्था को प्राप्त हो गए हैं क्योंकि पुस्तकों तथा समाचारपत्रों का पूर्ण अभाव है। कुछ लोग गणित का कुछ ज्ञान उसकी व्यावहारिक उपादेयता के कारण बचा कर रख सके हैं। अन्यथा अधिकांश व्यक्तियों ने जो कुछ सीखा था उसे वे भूल बैठे हैं और 'साक्षरता प्रमाणपत्र' पाने वाले लोग उन पत्रों को दिखाने में संकोच करते हैं।

जनमत—गाँव के प्रौढ़ों ने साक्षर बनने के अवसर का स्वागत किया। परन्तु उनका विचार था कि पढ़ना, लिखना और गणित तीनों विद्याओं को सीखने तथा कुछ सामान्य ज्ञान अर्जित करने के लिए छः मास का काल बहुत कम था। एक वर्ष पर्याप्त हो सकता है परन्तु शिक्षक की अस्वस्थता ने शिक्षण-काल को और भी कम कर दिया।

कुछ लोग अवसर से लाभ इसलिए नहीं उठा सके कि आर्थिक कार्यकलापों के बाद नियमित रूप से कक्षाओं में जाने के लिए उन्हें बिलकुल अवकाश नहीं रहता था।

भजन-कीर्तन के कार्यक्रम कक्षा के काम के बाद एक प्रकार के मनोरंजन के रूप में आरम्भ किए गए। परन्तु पाया गया कि उसके कारण बहुत कुछ ध्यान बँट जाता

था। अनेक प्रौढ़ अध्ययन के लिए पाठशाला नहीं जाते थे वरन् भजन सुनने के लिए जाते थे। प्रारम्भ में इसके लिए केवल एक घंटा नियत था परन्तु कभी-कभी इस कार्यक्रम में भाग लेने वाले रात-रात भर मग्न रहते थे।

२. मंगल दल

सा. वि. यो. ने चितौरा में एक मंगल दल का संघटन किया। यद्यपि मंगल दल छः बार खेल-कूद के उत्सव करा चुका है इसका इतिहास असफलता का इतिहास रहा है।

प्रशिक्षणार्थ चितौरा से सम्बद्ध ग्रामसेवक की अभिरुचि श्रमदान तथा युवक संघटनों में थी। जनता के सहयोग से उसने खेल-कूद की व्यवस्था की और कई श्रमदान योजनाओं को कार्यान्वित किया जिनमें गड्ढे भरना, सड़कों की मरम्मत और एक गाँधी चबूतरे का निर्माण सम्मिलित थे। स्थानीय समस्याओं में उसकी अभिरुचि के कारण ग्रामवासी अब भी उसका स्मरण करते हैं। प्रशिक्षण समाप्त होने पर जब यह ग्रामसेवक चला गया तो एक अन्य ग्रामसेवक ने कार्य सँभाला। परन्तु अपने पूर्वाधिकारी द्वारा आरम्भ किए गए कार्यकलापों के प्रति वह उदासीन था। लगभग एक वर्ष बाद फिर उसके स्थान पर एक अन्य व्यक्ति आया। नए ग्रामसेवक ने वचन दिया कि लोग जो भी चाहेंगे वह करेगा किन्तु उसने कभी किसी वचन का पालन करने की चिन्ता न की। युवक दल (क्लब) के महत्व पर बल देते हुए उसने कहा कि चितौरा को इसे इस प्रकार संघटित करना चाहिए कि दुद्धी में होने वाले खेल-कूद के उत्सव में वह अन्य सभी गाँवों को पछाड़ दे। उसने यह भी वादा किया कि यदि लोग मंगल दल संघटित करना चाहें तो वह सा. वि. यो. से उन्हें खेल-कूद के सामानों और संगीत वाद्यों के एक सेट दिला देगा। ऐसे वचनों के लोभ में आ कर गाँव के युवकों ने जुट कर २६ जनवरी १९५७ को एक मंगल दल की स्थापना की। शीघ्र ही सदस्यता ७ से बढ़ कर १२ हो गई। वॉलीबाल का खेल आरम्भ किया गया। एक वृद्ध कलवार सभापति चुना गया और मंगल दल को चलाने के लिए मंत्री और कोषाध्यक्ष नियुक्त हुए।

परन्तु यह संघटन सुचारु रूप से नहीं चल सका। सभापति शीघ्र ही अन्य जातियों, विशेष रूप से ठाकुरों, में अलोकप्रिय हो गया। मंगल दल एक सामूहिक संघटन माना जाता था और इसलिए यदि सदस्यों के चन्दे के द्वारा यह ५० रु. जमा कर सकता तो इसे सा. वि. यो. से १५० रु. के मूल्य की सहायता प्राप्त करने का अधिकार था।

सभापति ने अपने पास से पूरा चन्दा दे दिया और बाद में दल की सम्पत्ति पर एकाधिकार जताना चाहा। इसके अतिरिक्त अपने निवासस्थान के समीप भूमि चुन कर, अपनी सुविधानुसार कीर्तन-भजन के कार्यक्रमों का आयोजन कर और अपनी जाति तथा टोले के लोगों को आमंत्रित कर कलवार युवकों ने मंगल दल पर प्रायः एकाधिपत्य स्थापित कर लिया। ग्रामसेवक सम्भवतः इन सब बातों से अनभिज्ञ था। मंगल दल स्थापित करने के उत्साह में उसने इस तथ्य की उपेक्षा की कि चन्दा केवल एक व्यक्ति से आया था और संघटन में एक ही जाति दृढ़तर स्थान प्राप्त करती जा रही थी। प्रथमतः इस सब को समझने में वह असमर्थ रहा। परन्तु जब उसे ज्ञात हुआ कि केवल कलवार और चमार लड़के जिनके टोले बहुत पास में थे भाग लेते थे तो उसने मामले की जाँच की। परन्तु जब उसे बतलाया गया कि ब्राह्मण और ठाकुर लड़कों के भाग न लेने का कारण उनके टोलों और खेल के मैदान के बीच की लम्बी दूरी थी तो वह सन्तुष्ट हो गया। इसके विपरीत ठाकुर लोग तथा अन्य महत्वपूर्ण व्यक्ति चाहते थे कि सा. वि. यो. द्वारा दी गई सामुदायिक सम्पत्ति कलवार सभापति के स्थान पर गाँव के सभापति की देखरेख में रहे। सभापति ने दलील दी कि जब तक गाँव में सामुदायिक केन्द्र न बन जाय या सामग्रियों को प्राप्त करने के लिए उसकी लगाई पूँजी वापस न मिल जाय तब तक वह अपने अधिकार नहीं छोड़ सकता था। फिर दोनों दलों को प्रसन्न करने के ग्रामसेवक के प्रयत्नों का भी परिणाम यह हुआ कि फूट और बढ़ गई। अन्ततः मंगल दल को बन्द करना पड़ा।

मंगल दल गाँव के सभी युवकों को आकर्षित करने में इसलिए असफल रहा कि इस पर कुछ लोगों ने एकाधिपत्य कर लिया था तथा अन्य जन इसका वहिष्कार कर रहे थे। इसके सामने कोई योजना नहीं थी न उद्देश्य की एकता। चन्दा अनिवार्य नहीं था। यह सामुदायिक भावना का संचार नहीं कर सका क्योंकि सदस्यों को इसका लक्ष्य अथवा उपयोगिता नहीं समझाई गई। खेल के सामान जिनमें दो वॉलीबाल, एक जाली, एक पम्प और दो फ़ालतू ब्लैडर थे, शीघ्र ही फटे-पुराने हो गए क्योंकि किसी ने सावधानी तथा उत्तरदायित्व के साथ उनका प्रयोग नहीं किया।

३. भजन मंडलियाँ

बहुत प्राचीन काल से विशेष रूप से ग्राम्य भारत में हमारे पुराणों, इतिहास तथा परम्पराओं के ज्ञान को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्रदान करने का एकमात्र महत्वपूर्ण साधन भजन मंडलियाँ तथा इस प्रकार की अन्य अनौपचारिक बैठकें

रही हैं। चितौरा में ऐसी बैठकें साधारणतया देखने में आती हैं। इन बैठकों को प्रोत्साहित करने तथा उन्हें जनशिक्षा के हेतु एक प्रभावपूर्ण साधन तथा संचार के एक माध्यम के रूप में प्रयुक्त करने की सा. वि. यो. द्वारा चेष्टा हो रही है। इन भजन मंडलियों का उद्देश्य है गाँव के विभिन्न परिवारों तथा जातियों में एकता स्थापित करना। उनका कर्तृत्व न केवल प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओं को सुरक्षित रखना है वरन् जनता को उन्नत कृषि, वैज्ञानिक पशुपालन तथा स्वास्थ्य एवं स्वच्छता के आधुनिक विचारों से परिचित कराना भी है।

यद्यपि सा. वि. यो. ने भजन मंडलियाँ संघटित करने के लिए बहुत कुछ किया है वे अधिक सफलता प्राप्त करती प्रतीत नहीं होतीं। लोग एक स्थान पर अवश्य एकत्रित होते हैं परन्तु ये बैठकें किसी भी प्रकार पुरानी बैठकों से भिन्न नहीं हैं जिनका एकमात्र उद्देश्य होता था भजन गाना। इन बैठकों में जीवनविधि सम्बन्धी नए विचारों, कृषि की नई विधियों तथा भारत के स्वतंत्र होने से जनित नई सम्भावनाओं की बिरले ही चर्चा होती है।

४. स्थान-दर्शन का कार्यक्रम

सा. वि. यो. द्वारा संघटित स्थान-दर्शन के कार्यक्रमों में जनता ने बिलकुल सहयोग नहीं दिया। उनके शैक्षणिक मूल्य को भी उसने नहीं समझा। एक बार सा. वि. यो. की ओर से योजना खंड के बाहर के स्थानों के दर्शन के कार्यक्रम का प्रबन्ध किया गया। इसमें चितौरा के तीन निवासी सम्मिलित हुए जिनमें सरपंच भी था। उन्होंने कुछ विकास योजनाओं तथा दयालबाग, आगरा; नैनी इन्स्टीटयूट, इलाहाबाद; पशुचिकित्सा महाविद्यालय, मथुरा; तथा ग्रामसेवक प्रशिक्षण केन्द्र एवं विकास योजना, वाराणसी सदृश उपयोगी स्थानों को देखा। जो लोग इस भ्रमण के लिए चुने गए थे उन्होंने अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति न की। इस भ्रमण का हेतु केवल मनोरंजन रहा और इसका शैक्षणिक पक्ष सर्वथा उपेक्षित रहा। वे लोग विकास योजनाओं द्वारा नहीं वरन् नागरिक जीवन के आकर्षणों से प्रभावित हो कर चितौरा आए। जो अल्प काल उनके पास था वह गपशप और आमोद-प्रमोद के साथ घूमने-फिरने में ही बीता।

५. ग्रामलक्ष्मी केन्द्र

किसी समय महिला कल्याण की उपेक्षा करने के कारण सा. वि. यो. की आलोचना की गई थी। अतएव आलोचकों की सन्तुष्टि तथा महिलाओं के शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक अवसरों की वृद्धि के हेतु सा. वि. यो. ने प्रयोगात्मक आधार पर योजना

खंड के गाँवों में कतिपय महिला मंगल केन्द्र स्थापित किए। एक ऐसा केन्द्र दुद्धी की एक शिक्षिका के अवेक्षण में जनवरी १९५५ में चितौरा में भी खुला। परन्तु यह बहुत थोड़े दिनों तक चला। यह अक्तूबर १९५५ में इस आधार पर बन्द कर दिया गया कि लोगों को सामुदायिक विकास की विचारधारा में प्रशिक्षित करने का लक्ष्य इसने पूरा कर लिया था। प्रशासन ने यही सहज बहाना ढूँढा।

गाँव की स्त्रियाँ बिरले ही एक साथ बैठती और किसी योजना पर विचार करती या कोई निर्णय लेती हैं। सम्भवतः इसके लिए उनके घरेलू काम-काज तथा सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़ापन उत्तरदायी हैं। मताधिकार उन्हें भी प्राप्त हो गया है, फलतः उन्हें मतदान स्थल पर एकत्रित होने का अवसर मिलता है। अन्य अवसर जब वे एक स्थान पर जुटती हैं निम्नलिखित हैं— दशहरा के समय रामलीला, मकर संक्रांति के दिन सामुदायिक स्नान और हाल में आरम्भ किए गए सिनेमा प्रदर्शन। विकास प्रदर्शिनी, किसान मेले और प्रदर्शन उन्हें आकृष्ट नहीं करते। जिस महिला के सुपुर्द यह महिला मंगल केन्द्र था उसने केन्द्र को संघटित करने में बहुत श्रम किया। उसने महिलाओं से उनकी अभिरुचि की समस्याओं यथा शिशु-पालन, रसोईघर की स्वच्छ आदतें, आदि पर विचार-विमर्श किया तथा उन्हें कढ़ाई-बुनाई जैसे मूलभूत कला-कौशलों की शिक्षा दी। उसने स्त्रियों की शिक्षा में उनका पक्का विश्वास करा दिया और चितौरा में ही कक्षायें आरम्भ करने का प्रस्ताव रखा। लोग ऐसे अवसर की प्रतीक्षा में थे और इसके आने पर उन्होंने इसका स्वागत किया। शीघ्र ही विद्यालय २९ लड़कियों के नाम लिखे जाने से संचालित हुआ। आठ महीनों में ही छात्राओं ने पढ़ना-लिखना, गिनती और बुनाई तथा सिलाई सीख ली। परन्तु विद्यालय अधिक दिनों तक नहीं चलाया जा सका। लोगों ने विद्यालय को पुनरुज्जीवित करना चाहा, उनमें कुछ ने विद्यालय को चलाने का व्यय भी स्वयं उठाने का प्रस्ताव रखा। वे उच्चतर अधिकारियों के पास भी गए। परन्तु इस संस्था को दुबारा चलाने के लिए कुछ नहीं हुआ।

महिला संयोजिका, जिसे ग्रामलक्ष्मी भी कहते हैं, २८ वर्षीया एक विवाहिता महिला थी। वह हलवाई जाति की और मिर्ज़ापुर ज़िले की ही थी। उसके काम तथा योग्यता के बारे में ग्रामवासियों की बड़ी ऊँची धारणा थी। यद्यपि उसे केवल २५ रु. वृत्ति मिलती थी वह मिशनरी उत्साह से काम करती थी। सा. वि. यो. द्वारा उसकी सेवायें समाप्त हो जाने के बाद भी लोग चाहते थे कि वह उनके गाँव में ही रहे। संयोजिका के रूप में अपने कार्यकाल में उसने स्त्री शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया। प्रयोग की असफलता के कारण केन्द्र नहीं बन्द हुआ वरन् इसलिए कि सघन खंड

परिवर्तित कर साधारण खंड बना दिया गया था जिसके फलस्वरूप सा. वि. यो. कोष से सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक कार्यकलापों के लिए किसी भी राशि का विनिधान संभव नहीं था। लोगों को जो वस्तु सबसे प्रिय थी उसीसे वे वंचित रखे गए।

अन्य कार्यकलाप

सामाजिक शिक्षा कार्यक्रम के अन्तर्गत किए जाने वाले अन्य कार्यकलाप हैं श्रमदान, किसान मेले, पशु प्रदर्शिनी, गाँधी जयन्ती उत्सव तथा सिनेमा प्रदर्शन। प्रौढ़ पाठशाला अध्यापक तथा ग्रामसेवक ने ग्रामवासियों की सहायता से सड़कों की सफ़ाई और मरम्मत की तथा एक गाँधी चबूतरे का निर्माण किया। किसान मेलों और पशु प्रदर्शिनियों में ग्रामवासियों की अभिरुचि एकमात्र पुरस्कारों के हेतु थी। लोगों को शिकायत थी कि प्रतियोगिताओं में ईमानदारी नहीं बरती गई।

उपर्युक्त विवरणों से प्रकट होता है कि सामाजिक शिक्षा कार्यक्रम की लक्ष्यसिद्धि पूर्ण रूप से नहीं हुई है। ईमानदार और उत्साही होते हुए भी प्रौढ़ पाठशाला अध्यापक अपने काम के विस्तार को नहीं समझ पाया। मंगल दल का संघटन स्वस्थ सिद्धान्तों पर नहीं हुआ और अन्ततः अन्तर्जातीय तनावों के कारण बन्द करना पड़ा। भजन मंडलियाँ पुराने ढर्रे पर चलती रहीं। अन्तरग्रामीण आवागमन तथा स्थान-दर्शन यात्राओं के महत्व को लोगों ने नहीं समझा। महिला मंगल केन्द्र ने अच्छा कार्य किया था और उसका अच्छा स्वागत हुआ किन्तु उसे बन्द कर देना पड़ा। सामाजिक शिक्षा के विभिन्न माध्यम अभी प्रभावोत्पादक नहीं बन पाए हैं और कहीं भी पर्याप्त रूप से उनका प्रभाव परिलक्षित नहीं है। कार्यक्रमों को संघटित करने के लिए जनता को उत्तरदायित्व सौंपने के परिणामस्वरूप नेतृत्व के विकास का कोई आभास नहीं मिलता। ग्रामवासियों के कार्यकलापों तथा मुख्य विकास कार्यक्रम में समेकन स्थापित करने के प्रयत्न शेष ही हैं। परन्तु लोग अनुभव कर रहे हैं कि नाटकों तथा जनता को रुचिकर लगने वाले अन्य सांस्कृतिक कार्यकलापों पर अधिक बल देना चाहिए जिससे सामाजिक चेतना का विकास हो सके।

सामाजिक शिक्षा के क्षेत्र में सा. वि. यो. का काम

१९५४–५५	१.	दुद्धी में किसान मेला	१
	२.	समाज सेवा केन्द्र	१
	३.	मंगल दल	१
	४.	भजन मंडली	१
	५.	प्रौढ़ साक्षरता कक्षा	१
	६.	स्थान-दर्शन कार्यक्रम	३

१९५५–५६	१.	ग्रामलक्ष्मी सेवा केन्द्र	१
	२.	सामुदायिक केन्द्र	१
	३.	महिला सम्मेलन	१
	४.	भजन मंडलियाँ	२
	५.	कीर्तन के आयोजन	४०
	६.	स्थान-दर्शन कार्यक्रम	३
	७.	ग्रामनेता शिविर	१
	८.	सार्वजनिक भाषण	१
	९.	मंगल दल खेल-कूद	६
	१०.	प्रभात फेरियाँ	३

सामग्री-पूर्ति

१. स्कूली खेल-कूद के सामानों का एक पूरा सेट
२. वॉलीबाल के खेल का एक सेट
३. एक हारमोनियम

श्रमदान

१.	सड़क निर्माण	२ फ़र्लांग
२.	सड़क मरम्मत	४ ,,
३.	कम्पोस्ट के गड्ढे	२
४.	वृक्षारोपण के गड्ढे	६
५.	स्वच्छ तथा गहरा किया गया कुँआँ	१
६.	गाँधी चबूतरे की मरम्मत	१

प्रशिक्षण-उत्पादन केन्द्र

इस क्षेत्र के आर्थिक विकास की अभिवृद्धि के लिए कारीगरों को आधुनिक उपकरणों तथा प्राविधिक कौशल से सम्पन्न कर सा. वि. यो. कुटीर उद्योगों के विकास की चेष्टा कर रही है। ३६,००० रु. के वार्षिक अनुदान से चार प्रशिक्षण-उत्पादन केन्द्र स्थापित किए गए हैं—काष्ठ उद्योग, टिन उद्योग, सिलाई तथा रेशम उद्योग के लिए एक-एक। प्रत्येक केन्द्र का वार्षिक उत्पादन लगभग २,५०० रु. के मूल्य का है। केन्द्र निर्धन प्रशिक्षणार्थियों को आसान शर्तों पर ऋण भी देता है। परन्तु योजना का मुख्य उद्देश्य लोगों को आजीविका के लिए विभिन्न व्यवसायों में प्रशिक्षित करना है।

काष्ठ उद्योग

राजकीय काष्ठ उद्योग विद्यालय, इलाहाबाद, में छः वर्ष के प्रशिक्षण प्राप्त एक शिक्षक के अधीन मार्च १९५५ में काष्ठ उद्योग केन्द्र स्थापित हुआ। केन्द्र विभिन्न गाँवों तथा उच्च-निम्न सभी जातियों के लोगों को भर्ती करता है परन्तु कबायली और निम्नवर्ण के प्रशिक्षणार्थी स्पष्टतः बहुसंख्यक हैं। पहले बैच में १४ व्यक्ति थे और दूसरे में १२। उनके वयस् १३ वर्ष से ले कर ३० वर्ष तक हैं।

जनसहयोग—काष्ठ उद्योग केन्द्र की स्थापना कारीगरों को केवल प्रशिक्षित करने के लिए हुई थी न कि किसी व्यावसायिक उद्देश्य को दृष्टि में रख कर, अतएव इन केन्द्रों में निर्मित वस्तुओं को समुचित कम मूल्यों पर पाने की आशा ग्रामवासियों को थी। परन्तु जब उन्होंने देखा कि वहाँ की तैयार की हुई वस्तुओं के मूल्य बहुत अधिक थे तथा उन्हें मोल लेना उनकी सामर्थ्य के बाहर था तो शीघ्र ही उनकी आशाओं पर पानी फिर गया। योजना में उनकी अभिरुचि के समाप्त होने में देर न लगी। वस्तुओं के ऊँचे मूल्य इसलिए थे कि सामग्रियाँ बाहर से प्राप्त करनी होती थीं। सर्वोत्तम लकड़ी के आयात के लिए केन्द्र की दलील यह थी कि स्थानीय लकड़ी का संस्कार करने का साधन उपलब्ध नहीं था। परन्तु इस पर ग्रामवासियों का विश्वास न जम सका। उन्होंने तर्क उपस्थित किया कि यदि स्थानीय लकड़ी फ़र्नीचर बनाने के उपयुक्त नहीं थी तो केन्द्र ने उसका कोई अन्य उपयोग क्यों नहीं किया जैसे खिलौना बनाना जिसके लिए स्थानीय लकड़ियों की क़िस्में उपयुक्त थीं। इसके अतिरिक्त उन्होंने शिकायत की कि केन्द्र ने स्थानीय आवश्यकताओं पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया। इसने मेज़-कुर्सियाँ बनाईं जब कि लोगों की माँग दरवाज़ों, खिड़कियों और लकड़ी के बक्सों इत्यादि के लिए थी।

प्रशिक्षणार्थियों का विचार था कि प्रशिक्षण से उनके लिए रोज़गार की सम्भावनायें बढ़ीं नहीं। पहले बैच का कोई व्यक्ति स्वतंत्र व्यवसाय स्थापित नहीं कर सका। परन्तु उनमें ९ को बहुत कम पारिश्रमिक पर आकस्मिक रोज़गार मिल गया था। अनुदान तथा उपदान दिए गए, तथापि प्रशिक्षणार्थी उनका लाभ न उठा सके और उन्होंने अपने पुराने व्यवसायों को ही दुबारा अपनाया। भविष्य में व्यावसायिक कारबार हाथ में लेने की तथा इस प्रकार अपने प्रशिक्षणार्थियों को रोज़गार का अवसर प्रदान करने की केन्द्र की योजना थी। परन्तु जब तक प्रशिक्षण के उपरान्त केन्द्र अपने प्रशिक्षणार्थियों को रोज़गार का आश्वासन न दे सके और स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली वस्तुयें तैयार न कर सके, योजना से कुछ अधिक आशा नहीं की जा सकती।

टिन उद्योग

टिन उद्योग केन्द्र मार्च १९५५ में खुला। इसके प्रशिक्षणार्थी २५ रु. मासिक वृत्ति पाते थे। यद्यपि टिन उद्योग शिक्षक की कोई शैक्षणिक योग्यता नहीं थी उसे पर्याप्त व्यावहारिक अनुभव था। पहले बैच में दस प्रशिक्षणार्थी थे और दूसरे में ग्यारह। इस केन्द्र को व्यावसायिक उद्देश्य के स्थान पर प्रशिक्षण के अनुरूप ही बनाया गया है।

जनसहयोग—यद्यपि टिन उद्योग केन्द्र और काष्ठ उद्योग केन्द्र दोनों ने समान नीतियों तथा विधियों का अनुसरण किया उनके प्रति जनसहयोग बहुत उत्साह-जनक नहीं रहा है। लोग टिन उद्योग केन्द्र की तैयार की हुई वस्तुओं को इसलिए अपनाते हैं कि उनके मूल्य हाट के मूल्यों से कम हैं। इसके अतिरिक्त बाहर से कच्चे माल के आयात के लिए भी कोई विरोध नहीं हो सकता क्योंकि स्थानीय पूर्ति का सर्वथा अभाव था। स्थानीय व्यवसाय से प्रतियोगिता करते रहने के कारण केन्द्र ने स्थानीय व्यवसायियों में दुर्भावना तथा खिन्नता उत्पन्न की।

टिन उद्योग केन्द्र के लोकप्रिय होने का एक कारण यह है कि यह बालटी, सन्दूक और रैक सदृश दैनिक व्यवहार की वस्तुयें तैयार करता है।

तथापि केन्द्र के भूतपूर्व प्रशिक्षणार्थी असन्तुष्ट रहते हैं। प्रशिक्षण समाप्त होने पर उन्हें कोई रोज़गार न मिल सका। पहले बैच के केवल एक व्यक्ति को आकस्मिक रोज़गार मिला। स्वतंत्र उद्योग आरम्भ करने में असमर्थ होने के कारण वे अपने पुराने व्यवसाय में ही लगे हुए हैं। समय व्यतीत होने के साथ-साथ वे स्वाभाविक रूप से केन्द्र में सीखी हुई सारी विद्या भूलते जाते हैं। अनुदान तथा उपदान प्राप्त किए जा सकते हैं परन्तु प्रशिक्षणार्थीगण अपेक्षित ज़मानत देने में असमर्थ होते हैं।

सिलाई

नवम्बर १९५५ में आरम्भ किए गए सिलाई केन्द्र के सामने एक लम्बी-चौड़ी योजना थी। इसमें सिलाई, कसीदाकारी और बुनाई के प्रशिक्षण की व्यवस्था थी। परन्तु जब देखा गया कि केवल चार व्यक्तियों ने इसमें प्रवेश लिया तो यह योजना बन्द कर दी गई। इसके स्थान पर सिलाई का एक प्रशिक्षण-उत्पादन केन्द्र खोला गया जिसने १२ प्रशिक्षणार्थियों को आकृष्ट किया और उनमें ११ को वृत्तियाँ दी गई। परन्तु पहले बैच के निकलने के बाद देखा गया कि केन्द्र कोई ठोस काम करने में असफल रहा था, अतएव इसे हटा कर वाराणसी ले जाया गया।

जनसहयोग—यह बात कि केन्द्र बन्द करना पड़ा व्यक्त करती है कि जनसहयोग बहुत कम था। इसकी स्थापना के समय से ही लोग इसके काम के प्रति उदासीन थे और इसके बन्द कर दिए जाने से किसी को विस्मय नहीं हुआ। इस योजना की असफलता के कई कारण हैं।

प्रथम कारण यह है कि ग्रामवासी बहुत कम वस्त्रों का प्रयोग करते हैं। कुछ लोग वर्ष भर दो गज़ से अधिक वस्त्र का प्रयोग नहीं करते। जब तक वस्त्र फट न जायँ या चीथड़े न हो जायँ तब तक वे अपने वस्त्र बदलते नहीं। केन्द्र के पूर्ण उत्पादन का मूल्य ४८० रु. ठहराया गया परन्तु विक्रय द्वारा आय प्रायः शून्य थी क्योंकि सिले-सिलाए वस्त्रों की कोई माँग ही नहीं थी।

तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि नागरिक जीवन के बढ़ते हुए प्रभाव के प रणामस्वरूप लोगों की परिधान-रुचि में परिवर्तन की सम्भावना है और तब केन्द्र उपादेय सिद्ध हो सकता है। यद्यपि आजकल ग्रामवासियों में अधिक और सुन्दरतर वस्त्रों के लिए तीव्र लालसा है, केन्द्र को दुद्धी के दर्ज़ियों की प्रतियोगिता का भी सामना करना पड़ता है। दर्ज़ी सस्ते सिले-सिलाए वस्त्र बेचते हैं जो स्थानीय आवश्यकताओं को यथेष्ट रूप से पूरा करते हैं।

सिलाई केन्द्र ने स्त्रियों तथा बच्चों के लिए कुछ आकर्षक वस्त्र तैयार किए जो दुद्धी में प्राप्य नहीं थे। परन्तु अधिक मूल्यवान होने के कारण लोग उन्हें मोल न ले सके। इसके अतिरिक्त जिन्हें जीवन की साधारणतम आवश्यकतायें उपलब्ध नहीं हैं वे बढ़िया वस्त्र कैसे मोल ले सकते हैं? ग्रामवासियों के लिए सादी कमीज़ें और कुर्ते अपेक्षित हैं न कि बढ़िया और मूल्यवान परिधान।

सिलाई केन्द्र के भूतपूर्व प्रशिक्षणार्थियों का भाग्य टिन उद्योग तथा काष्ठ उद्योग के अप्रेंटिसों से भी अधिक बुरा था। उनकी सेवाओं की कोई माँग न थी।

रेशम उद्योग

इस क्षेत्र में प्रायः ५० वर्ष पूर्व जो टसर रेशम का व्यापार उन्नति पर था उसे राजकीय प्रयत्नों के द्वारा पुनरुज्जीवित करने के हेतु दिसम्बर १९५५ में रेशम प्रशिक्षण-उत्पादन केन्द्र खोला गया। इस व्यापार के ह्रास के बाद परम्परागत बुनकर पनिकों ने इस व्यवसाय को त्याग दिया। यदि रेशम के उद्योग की पुनर्व्यवस्था हो सके तो पनिकों को पुनर्वासित किया जा सकता है।

यद्यपि सा. वि. यो. ने खादी की कताई आरम्भ कर दी है इससे विशेष लाभ नहीं हुआ है क्योंकि कपास की स्थानीय पूर्ति का सर्वथा अभाव है। परन्तु रेशम उत्पादन ने अपेक्षाकृत प्रगति की है और उससे बहुत कुछ आशायें की जाती हैं। टसर की

अपेक्षा एरी रेशम का उत्पादन लाभकर है क्योंकि एरी के कीड़े अपने बागीचे में ही शहतूत के वृक्षों पर पाले जा सकते हैं जब कि टसर के कीड़े वन में उगने वाले शाल, अर्जुन और असर के वृक्षों पर ही पनपते हैं।

केन्द्र में १६ प्रशिक्षणार्थियों को प्रविष्ट किया गया। शिक्षक ने सलेमपुर, देवरिया ज़िले, में प्रशिक्षण प्राप्त किया था। रेशम केन्द्र में सैद्धांतिक ज्ञान तथा व्यावहारिक प्रशिक्षण दोनों दिए जाते हैं। इस केन्द्र की स्थापना के पूर्व सात गाँवों में जिनमें दुद्धी भी था इसी प्रकार के प्रयोग किए गए थे। कीड़े पालने की प्रविधि की शिक्षा ३० व्यक्तियों को दी गई थी। ७ व्यक्तियों को २०० कोकून दिए गए और उत्पादन लगभग ३ सेर हुआ था। अगले वर्ष सभी ३० व्यक्तियों को ६०० कोकून दिए गए और उत्पादन १० सेर हुआ। उन प्रयोगों से पता चला कि योजना को उचित रूप से चलाने के लिए कोकून की नियमित पूर्ति आवश्यक है।

जनसहयोग—अभी पहला बैच भी नहीं निकला है, इसलिए इतनी जल्दी यह कहना सम्भव नहीं है कि योजना सफल हुई है या नहीं। परन्तु प्रतीत होता है कि इस योजना में जनता की विशेष अभिरुचि नहीं है। लोगों का विचार है कि यदि वे शहतूत के वृक्ष लगायें, फ़ार्म की देखरेख करें और कीड़े पालना सीखें तो भी इसका कोई निश्चय नहीं है कि उचित समय पर सरकार उन्हें कोकून देगी। ऐसी किसी भी योजना के प्रति जिसमें कच्चा माल बाहर से लाना पड़े लोगों में तनिक भी उत्साह नहीं होता। सरकार की सदिच्छा के पक्के प्रमाणों के द्वारा अविश्वास अथवा विश्वास के अभाव की जनता की मनोधारणा को दूर करना अनिवार्य है और इसका अर्थ यह है कि दिए हुए वचनों का अवश्य पालन किया जाय तथा अतिरंजित परिणाम न दिखलाए जायँ।

प्राथमिक सहकारी समिति

चितौरा की प्राथमिक सहकारी समिति की स्थापना का श्रेय स्व. शिवशंकर राव को है। सहकारिता ऐक्ट १९१२ के नियमानुसार १९४२ में चितौरा ग्राम बैंक सोसायटी की रजिस्ट्री हुई जिसकी संख्या ४२३ थी। सोसायटी ने अक्तूबर १९४५ में कार्य आरम्भ किया। इसका उद्देश्य है निर्धन कृषकों की ऋण-सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति तथा आनुषंगिक रूप से बेईमान, स्वार्थी प्राइवेट महाजनों का उन्मूलन।

सोसायटी का वर्तमान सरपंच इसका प्रथम सदस्य था। १९४५ में केवल १० सदस्य भर्ती हुए। निम्नलिखित तालिका से १९४५–५५ में विभिन्न जातियों की सदस्य-संख्या का पता चलता है—

भर्ती का वर्ष	जाति	सदस्य संख्या	वर्ष का जोड़
१९४५	ब्राह्मण	६	
	ठाकुर	२	
	वनिया	२	१०
१९४६	ब्राह्मण	१	
	ठाकुर	४	
	बनिया	२	
	माझी	१	८
१९४७	ब्राह्मण	३	
	ठाकुर	१	
	हरिजन	४	८
१९४८	ब्राह्मण	१	
	हरिजन	७	८
१९५०	ब्राह्मण	१	
	बनिया	१	
	हरिजन	३	५
१९५२	ठाकुर	३	
	हरिजन	८	
	माझी	१	१२
१९५३	बनिया	१	
	हरिजन	१	२
१९५४	वनिया	१	१
१९५५	ब्राह्मण	३	
	बनिया	२	
	अहीर	१	
	हरिजन	१	७
जोड़		६१	६१

जनवरी १९५६ में की गई एक जाँच से ज्ञात हुआ कि इन ६१ सदस्यों में ७ मर चुके थे (५ हरिजन, १ ब्राह्मण और १ बनिया) तथा ७ नियमभंग करने वालों में थे (४ हरिजन, २ ठाकुर और १ माझी)।

मासिक बैठकों के अतिरिक्त अक्तूबर में सहकारी समिति की वार्षिक बैठक भी होती है। इन बैठकों में नए सदस्य भर्ती किए जाते हैं। न्यूनतम शेयर की राशि है २ रु. वार्षिक और इससे किसी सदस्य को वर्ष में २५ रु. तक ऋण लेने का अधिकार रहता है। ऋण को १२ रु. ८ आ. की दो क़िस्तों में चुकाया जा सकता है। पहली क़िस्त के साथ ब्याज रूप में ६ आने और ग्राम विकास कोष के लिए ४ आने वसूल किया जाता है। भर्ती के समय पासबुक के लिए लगभग ६ आने लिया जाता है। वार्षिक बठक में ५ पंच चुने जाते हैं जिनमें एक सरपंच और एक अन्य कोषाध्यक्ष बन जाते हैं।

ऋण तभी दिया जाता है जब ऋण लेने वाला व्यक्ति दो ज़मानतें दे कर और दो सदस्य गवाहों के साक्ष्य के साथ एक प्रोनोट दे। भावी ऋणी की आर्थिक मर्यादा आँकने के लिए सोसायटी के पास एक रजिस्टर है जिसमें इसके सभी सदस्यों के पूर्ण विवरण दिए रहते हैं। इन सब अभिलेखों को सचिव अपने पास रखता है। किसी सदस्य को वर्ष में १०० रु से. अधिक ऋण लेने की अनुमति नहीं है। कोषाध्यक्ष अपने पास केवल १५ रु. 'इम्प्रेस्ट' (imprest) के रूप में रखता है, शेष राशि दुद्धी सहकारी बैंक यूनियन में लगा दी जाती है।

सहकारी समिति, जैसा अन्यत्र हुआ है, लोगों की आर्थिक स्थिति को सुधारने तथा उनकी ऋण-सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बहुत कुछ कर सकती है। ग्रामीण विकास कार्य में सहकारी समिति के कर्तृत्व के अध्ययनार्थ १९५६ में की गई एक जाँच से निम्नलिखित सूचना प्रकाश में आई है।

हमारी जाँच के अन्तर्गत ये विषय थे—ग्रामीण ऋण के मुख्य माध्यम अथवा एजेन्सियाँ, सम्पूर्ण ऋणग्रस्तता, वार्षिक ऋण-सम्बन्धी आवश्यकतायें, ऋण का उद्देश्य, ऋण के विभिन्न प्रकार के माध्यमों को तरजीह देना, ऋणदाता तथा ऋणी के सम्बन्ध, सदस्यता, सहकारी संघटन के प्रति सदस्यों की मनोधारणा, सहकारी ऋण की किसी प्रकार की अपर्याप्ति तथा सुधार के लिए सुझाव। गहन अध्ययन के निमित्त सदस्यों और ग़ैर-सदस्यों से ३३-३३ व्यक्तियों के दो न्यादर्श (samples) इसका पता करने को लिए गए कि किन कारणों से सदस्यता बढ़ती या घटती है। हमने सोसायटी की आन्तरिक संरचना तथा संघटन की भी जाँच की। इस अध्ययन के अन्तर्गत चितौरा के लगभग ७५ प्रति शत सदस्य-परिवार आ गए।

१. क–जाति तथा सदस्यता

तालिका १.क से जाँच के समय मर्यादानुसार सूचनादाताओं के वितरण का पता चलता है। इसके पीछे यह जानने का विचार था कि जाति पूर्वाग्रहों का प्रभाव सदस्यता पर पड़ता है या नहीं।

न्यादर्श में ३९ प्रति शत ब्राह्मण, ३५ प्रति शत चमार, १५ प्रति शत ठाकुर, ६ प्रति शत कलवार और ३ प्रति शत अहीर थे।

चमारों में सदस्यता का प्रति शत ऊँचा था जिससे प्रकट होता है कि उन्हें अल्पकालीन ऋण की अपेक्षा थी। ब्याज की नीची दर उनके लिए मुख्य प्रेरणा थी। अधिकांश परिवार भूमिहीन हैं, अतः ऋण अनुत्पादक कार्यकलापों पर व्यय किए गए। फलतः ऋण की अदायगी एक समस्या बनी रही।

कलवारों में सदस्यता का कम प्रतिशत इस कारण है कि स्वयं महाजन होने के कारण स्वभावतः उन्हें ऋण की अपेक्षा नहीं हुई। उन्होंने सहकारी समिति का विरोध तक किया क्योंकि इससे उनके व्यापार पर प्रभाव पड़ा। चमारों के अतिरिक्त अन्य पिछड़ी जातियों और कबायलियों ने सोसायटी से विशेष लाभ नहीं उठाया है।

तालिका १. क — जाति मर्यादानुसार सूचनादाताओं का वितरण

जाति या कबीला		सूचनादाता-सदस्य		गैर-सदस्य	
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
१.	ठाकुर	५	१५	५	१५
२.	ब्राह्मण	१३	३९	५	१५
३.	कलवार	२	६	३	९
४.	चमार	१२	३६	८	२४
५.	अहीर	१	३	—	—
६.	लोहार	—	—	१	३
७.	केवट	—	—	४	१२
८.	गोंड	—	—	३	९
९.	पनिका	—	—	४	१२
	जोड़	३३	९९	३३	९९

१. ख—वयस्-समूह तथा सदस्यता

तालिका १. ख से प्रकट होता है कि ६० प्रति शत सदस्य ४५ से कम वयस् के हैं और ९४ प्रति शत सदस्यों का वयस् ५९ से कम है। अधिकांश सदस्य ३२–३८ वयस्-समूह के हैं। इससे प्रकट होता है कि वृद्ध लोग सदस्य नहीं बनते क्योंकि उनके पुत्र तथा उत्तराधिकारी ही उनके स्वार्थों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

तालिका १. ख — वयस्-समूह के अनुसार सूचनादाताओं का वारम्वारता वितरण (frequency distribution)

वयस्-समूह	सदस्य		ग़ैर-सदस्य	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
अल्पवयस्क	—	—	१	३
१८–२४	—	—	—	—
२५–३१	६	१८	७	२१
३२–३८	८	२४	५	१५
३९–४५	६	१८	५	१५
४६–५२	५	१५	८	२४
५३–५९	६	१८	१	३
६०–६६	१	३	५	१५
६७–७३	१	३	१	३
जोड़	३३	९९	३३	९९

१. ग—परिवार का आकार तथा सदस्यता

तालिका १. ग से विदित होता है कि ३६ प्रति शत परिवारों में ४ या उससे कम सदस्य हैं, ५४ प्रति शत परिवारों में ५ से ले कर ९ सदस्य तक हैं और ९ प्रति शत परिवारों में १० से अधिक सदस्य हैं।

ग़ैर-सदस्यों का वारंवारता वितरण प्रायः समान है। इससे प्रकट होता है कि परिवार के आकार का सदस्यता से कोई सम्बन्ध नहीं है।

तालिका १. ग — परिवार के आकार के अनुसार सूचनादाताओं का वितरण

सूचनादाता परिवार की सदस्य-संख्या	सदस्य		ग़ैर-सदस्य	
	परिवार-संख्या	प्रतिशत	परिवार-संख्या	प्रतिशत
४ या कम	१२	३६	१२	३६
५– ९	१८	५४	१९	५७
१०–१४	२	६	२	६
१५–१९	१	३	—	—
जोड़	३३	९९	३३	९९

१. घ—साक्षरता तथा सदस्यता

तालिका १. घ से पता चलता है कि ३० प्रति शत सदस्य निरक्षर हैं जब कि ग़ैर-सदस्यों में निरक्षरों का प्रतिशत दूना है। ६० प्रति शत सदस्यों को प्राइमरी स्कूल की शिक्षा मिली थी जब कि ग़ैर-सदस्यों में केवल ३३ प्रति शत उस स्तर तक शिक्षित थे। केवल एक सदस्य हाई स्कूल पढ़ा था। आँकड़ों से पता चलता है कि साक्षरता तथा सदस्यता का परस्पर सम्बन्ध है सम्भवतः इसलिए कि सोसायटी के लाभ साक्षर अधिक अच्छी तरह समझ सकते हैं।

तालिका १. घ — साक्षरता के स्तरों के अनुसार सूचनादाताओं का वितरण

साक्षरता का	सदस्य		ग़ैर-सदस्य	
स्तर	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
निरक्षर	१०	३०	२०	६०
केवल हस्ताक्षर करने वाले	२	६	२	६
प्राइमरी	२०	६०	११	३३
हाई स्कूल	१	३	—	—
जोड़	३३	९९	३३	९९

१. ङ—जोत का आकार तथा सदस्यता

तालिका १. ङ से प्रकट होता है कि ७० प्रति शत सदस्यों के पास १० बीघे से कम भूमि है और १८ प्रति शत सदस्य भूमिहीन हैं; ६ प्रति शत सदस्यों के पास १० से ले कर २० बीघे तक की जोतें हैं; तथा ९ प्रति शत सदस्यों के पास ३० बीघे से ऊपर की जोतें हैं। परन्तु कुछ सदस्य ऐसे हैं जिनके पास काफ़ी बड़ी–बड़ी जोतें हैं और जो केवल अपनी प्रतिष्ठावृद्धि के लिए सहकारी समिति में सम्मिलित हो गए हैं। इन आँकड़ों से कोई महत्वपूर्ण निष्कर्ष नहीं निकलता।

तालिका १. ङ—जोतों का आकार (बीघे में)

जोतों का आकार	सदस्य		ग़ैर-सदस्य	
(बीघे में)	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
१. शून्य	६	१८	७	२१
२. १० से कम	१७	५१	१५	४५
३. २० से कम	२	६	६	१८
४. ३० से कम	५	१५	५	१५
५. ३० से ऊपर	३	९	—	—
जोड़	३३	९९	३३	९९

१. च—व्यवसाय वितरण तथा सदस्यता

तालिका १. च से विदित होता है कि ६० प्रति शत सदस्य कृषक हैं, २४ प्रति शत श्रमिक, १२ प्रति शत कर्मचारी और ३ प्रति शत परम्परागत व्यवसायों का अनुसरण करते हैं। सहकारी समिति का कोई भी सदस्य भूमि श्रमिक नहीं है जब कि २१ प्रति शत ग़ैर-सदस्य भूमि श्रमिक हैं। प्रतीत होता है कि भूस्वामी भूमि श्रमिकों को सदस्य बनने से निरुत्साहित करते हैं।

जहाँ तक सहायक व्यवसायों का सम्बन्ध है ३० प्रति शत सदस्यों का कोई सहायक व्यवसाय नहीं है, २१ प्रति शत सदस्य कृषि तथा सम्बन्धित कार्यकलाप करते हैं तथा शेष चमड़े खींचना, बैलगाड़ी में भार ढोना, दूकान चलाना, इत्यादि काम करते हैं।

तालिका १. च—सूचनादाताओं का व्यवसायानुसार वितरण

मुख्य

सूचनादाता	सदस्य		ग़ैर-सदस्य	
व्यवसाय	वारंवारता	प्रतिशत	वारंवारता	प्रतिशत
१. कृषि	२०	६०	१३	३९
२. श्रम	८	२४	५	१५
३. नौकरी	४	१२	५	१५
४. पेशे	१	३	३	९
५. भूमि श्रम	—	—	७	२१
जोड़	३३	९९	३३	९९

सहायक

व्यवसाय	सदस्य वारंवारता	सदस्य प्रतिशत	ग़ैर-सदस्य वारंवारता	ग़ैर-सदस्य प्रतिशत
१. कुछ नहीं	१३	३९	१२	३६
२. कृषि	७	२१	१०	१०
३. श्रम	७	२१	६	१८
४. अन्य	६	१८	५	१५
जोड़	३३	९९	३३	९९

२. ऋणों का इतिहास

२. क—ऋण के वर्तमान माध्यमों (एजन्सियों) का अभिलेख

तालिका २. क से पता चलता है कि किस सीमा तक कृषकों के ऋणों में

ग्रामीण ऋण के मुख्य माध्यमों का भाग रहता है।

सदस्यों की ऋण-सम्बन्धी ७२ प्रति शत आवश्यकतायें प्राइवेट महाजनों द्वारा पूरी होती हैं, १४ प्रति शत सहकारी समिति द्वारा तथा शेष १४ प्रति शत सरकारी तक़ावी तथा सा. वि. यो. कोष द्वारा।

ग़ैर-सदस्यों की ऋण-सम्बन्धी सम्पूर्ण आवश्यकताओं में ८७.६ प्रति शत आवश्यकतायें प्राइवेट महाजनों द्वारा पूरी होती हैं, ९.१ प्रति शत राजकीय कोष से तथा ३.३ प्रति शत मित्रों और सम्बन्धियों द्वारा।

आँकड़ों से पता चलता है कि ग़ैर-सदस्यों की अपेक्षा सदस्यगण प्राइवेट महाजनों से कम ऋण लेते हैं।

तालिका २. क —— कृषकों द्वारा लिए गए ऋणों का प्रतिशत

ऋण का माध्यम	सहकारी सदस्यों के सम्पूर्ण ऋणों में इस ऋण का अनुपात	ग़ैर-सदस्यों के सम्पूर्ण ऋणों में इस ऋण का अनुपात
१. सरकारी तक़ावी	९ प्रति शत	५.६ प्रति शत
२. सा. वि. यो. कोष	५ ,,	३.५ ,,
३. सहकारी समिति	१४ ,,	—
४. प्राइवेट महाजन	७१.९ ,,	८७.६ ,,
५. सम्बन्धीगण	०.१ ,,	३.३ ,,
जोड़	१०० प्रति शत	१०० प्रति शत

२. ख——सम्पूर्ण ऋणग्रस्तता

सहकारी समिति का ऋण——जाँच के समय ३६ प्रति शत सदस्य ऋणमुक्त थे; ५१ प्रति शत सदस्यों को २५–२५ रु. का एक वर्ष का ऋण देना था और १२ प्रति शत सदस्यों पर ५०–५० रु. का ऋण था।

सरकार का ऋण——जाँच के समय ४५ प्रति शत सदस्यों पर बिलकुल ऋण नहीं था; ४५ प्रति शत सदस्यों को २०० रु. से कम का ऋण चुकाना था और शेष सदस्यों पर २०० रु. से अधिक का ऋण था।

अन्यों का ऋण——लगभग ६३ प्रति शत सदस्य ऋणमुक्त थे; १५ प्रति शत पर लगभग १५ रु. का ऋण था; ६ प्रति शत पर ५० रु. से लेकर १०० रु. तक का ऋण था; ६ प्रति शत पर १०० रु. से लेकर २०० रु. तक का ऋण था; ६ प्रति शत पर

२०० रु. से ले कर ३००रु. तक का ऋण था और ३ प्रति शत पर ३००रु. और ४००रु. के बीच का ऋण था। इससे निष्कर्ष निकलता है कि किसी पर असाधारण ऋण नहीं हैं।

जाँच से पता चला कि प्रत्येक सदस्य कभी न कभी उपर्युक्त ऋण के माध्यमों में किसी न किसी के प्रति ऋणी रहता आया है।

२.ग—ऋण की आवश्यकता: निर्दिष्ट राशि, शर्त तथा उद्देश्य के आधार पर आकलित

(इसका सम्बन्ध सहकारी समिति द्वारा दिए गए ऋण को छोड़ कर सदस्यों की ऋण-सम्बन्धी अतिरिक्त आवश्यकताओं से है।)

जाँच के समय २२ प्रति शत सदस्यों को सोसायटी द्वारा दिए गए ऋण के अतिरिक्त किसी अन्य ऋण की अपेक्षा नहीं थी। ७८ प्रति शत सदस्य अतिरिक्त ऋण चाहते थे।

अपेक्षित राशि—२४ प्रति शत को १०० रु. से कम की राशियाँ अपेक्षित थीं; २१ प्रति शत को १००रु. से ले कर ३०० रु. तक की आवश्यकता थी; ९ प्रति शत को ३०० रु. से ले कर ५०० रु. तक की आवश्यकता थी; १५ प्रति शत को ५०० रु. से ले कर १,००० रु. तक की आवश्यकता थी और ९ प्रति शत को १,००० रु. से ऊपर की आवश्यकता थी।

शर्तें—२७ प्रति शत सदस्यों ने इच्छा प्रकट की कि ऋण की अदायगी ५ वर्षों में होनी चाहिए, ३६ प्रति शत ने १० वर्ष के लिए इच्छा प्रकट की और १५ प्रति शत ने २० वर्ष से अधिक काल के लिए इच्छा प्रकट की। अल्पकालीन ऋण के विचार का लोग बिलकुल समर्थन नहीं करते।

उद्देश्य—कृषि-सम्बन्धी आवश्यकतायें—२७ प्रति शत सदस्यों को खेती-सम्बन्धी आवश्यकताओं पर व्यय करने के निमित्त ऋण की अपेक्षा थी। उनमें १५ प्रति शत को सिंचाई पर तथा १२ प्रति शत को खेत को समतल करने और तैयार करने पर व्यय करना अधिक पसन्द था।

परिवार के व्यय—१५ प्रति शत सदस्यों का विचार परिवार की आवश्यकताओं पर व्यय करने का था जिनमें उत्सव सम्मिलित थे और ६ प्रति शत का विचार केवल उत्सवों पर व्यय करने का था।

उन्नत पशुधन—१२ प्रति शत सदस्यों को अच्छी नस्ल के पशु मोल लेने के लिए ऋण अपेक्षित था।

घरों का निर्माण तथा मरम्मत—६ प्रति शत घरों के निर्माण और मरम्मत के लिए ऋण चाहते थे।

व्यापार पूँजी—६ प्रति शत को अपने व्यापार में पूँजी के रूप में लगाने के लिए ऋण की आवश्यकता थी।

२. घ—कुछ प्रकार के ऋण के माध्यमों को तरजीह देना

३३ सदस्यों में ३१ ने ऋण लेने के लिए सरकारी सहकारी समिति को प्राथमिकता दी। एक सदस्य ने ऐसे किसी भी माध्यम से ऋण प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की जो बिलकुल ब्याज न ले और एक सदस्य को प्राइवेट महाजन ही प्रिय था। सरकारी ऋण लेने की इच्छा के कारण थे ब्याज की कम दर और क़िस्तों में अदायगी की सुविधा। सरकार से किसी भी प्रकार की बेईमानी की कोई आशा नहीं थी। कुछ सदस्य सहकारी शेयर मोल लेने को मानते थे कि उन्होंने लाभप्रद रीति से पूँजी लगाई है। अन्य सदस्य प्राइवेट महाजनों को इसलिए नापसन्द करते थे कि वे ऋण की अदायगी के बदले में उनकी सेवा माँगते थे। महाजन उनका शोषण भी करते थे, ज़मानत के तौर पर आभूषण माँगते थे, ऊँचे दर पर ब्याज लेते थे और उन्हें अन्य रीतियों से तंग करते थे।

जिस सदस्य को प्राइवेट महाजन प्रिय था वह अपने पिता के अंतिम परामर्श का अनुसरण कर रहा था। उसके पिता ने उसे सरकारी ऋण लेने के विरुद्ध चेतावनी दी थी क्योंकि अदायगी न करने से कारावास तथा सम्पत्ति-अपहरण हो सकता था। इसके विपरीत अदायगी की तिथि स्थगित करने के लिए कह-सुन कर प्राइवेट महाजन को मनाया जा सकता था।

२. ङ—ऋण तथा ऋणदाता के बीच मध्यस्थ का कर्तृत्व

ऋण के माध्यमों के पास ४ प्रति शत सदस्यों की प्रत्यक्ष पहुँच थी; ६ प्रति शत ऋण प्राप्त करने में सम्बन्धियों की सहायता लेते थे; और ६ प्रति शत ऋण प्राप्त करने में......की सहायता लेते थे।

३. मनोधारणायें

३. क—सोसायटी में सम्मिलित होने के कारण

२७ व्यक्ति इसलिए सदस्य बने कि सोसायटी उन्हें ऋण लेने और उसकी अदायगी दोनों में सुविधा देती थी। सदस्य बनने के अन्य कारण थे कि सदस्यता से बचत की आदत बनती थी, बोनस के भाग मिलते थे, सहकारी आधार पर ग्रामोन्नति में सहायता मिलती थी और व्यक्ति की प्रतिष्ठावृद्धि होती थी।

३. ख—सदस्यों के विचार में सोसायटी के सबसे महत्वपूर्ण कार्य

अधिकांश सदस्य एकमत थे कि सहकारी समिति का मुख्य उद्देश्य था कम ब्याज की दर पर द्रव्यऋण देना। अन्य सदस्यों का विचार था कि केवल निर्धन तथा

आवश्यकताग्रस्त व्यक्तियों को द्रव्यऋण दिया जाना चाहिए। कुछ का विचार था सोसायटी का कार्य था ग्रामोन्नति। विभिन्न सदस्यों की दृष्टि में इसके अन्य कार्य थे महाजनों के अत्याचार का अन्त, ग्रामवासियों में सहयोग-भावना का सृजन तथा अतिरिक्त राशि का संचय। यह वर्षाकाल के लिए ग्रामवासियों की बचत करने में भी सहायता कर सकती थी, दैनिक व्यवहार की वस्तुओं यथा चीनी, मिट्टी के तेल और नमक की पूर्ति कर सकती थी, सदस्यों में बोनस बाँट सकती थी और ग्रामवासियों को कृषि तथा रहन-सहन की उन्नत रीतियाँ सिखा सकती थी।

३. ग—उन्होंने सर्वप्रथम सहकारी समिति के बारे में कैसे जाना

अनेक सदस्यों ने सोसायटी के बारे में अपने ही गाँव में सुपरवाइज़र से सुना। कुछ ने इसके बारे में भूतपूर्व ज़िलाधीश श्री वाई. डी. गुंडेविया द्वारा आयोजित एक सभा में सुना था।

दो सदस्यों को सुपरवाइज़र ने तथा एक को सेक्रेटरी ने सोसायटी में सम्मिलित होने के लिए प्रोत्साहित किया था।

३. घ—कितने-कितने अन्तर पर बैठकें होती हैं और इन बैठकों में औसत उपस्थिति

पंचायत की बैठकें—२३ सदस्यों के अनुसार प्रति मास बैठकें होती थीं। एक ने कहा कि बैठकें इतनी अधिक होती हैं कि उन्हें स्मरण रखना कठिन है। कुछ ने अनिश्चित रूप से कहा कि ये वर्ष में कई बार होती हैं।

इन बैठकों की औसत उपस्थिति के बारे में पूछने पर कुछ ने उत्तर दिया कि साधारणतया दस व्यक्ति इनमें भाग लेते थे। अन्य सदस्यों ने भाग लेने वाले सदस्यों की संख्या १० से ले कर २५ तक बतलाई। कुछ अन्य सदस्यों का कहना था कि सभी सदस्य इनमें भाग लेते थे। कुछ थोड़े-से सूचनादाताओं के उत्तर सर्वथा अनिश्चित थे और वे तथ्यों से अवगत नहीं थे।

साधारण सभा की बैठकें—साधारण सभा के बारे में अधिकांश सदस्यों का विचार था कि यह वर्ष में एक बार बैठती है जब कि कुछ का अनुमान था कि यह वर्ष में दो या तीन बार बैठती है।

औसत उपस्थिति के प्रश्न के उत्तर भिन्न-भिन्न थे। अधिकांश सूचनादाताओं ने बतलाया कि सारा गाँव बैठकों में भाग लेता है। अन्यों ने औसत उपस्थिति ३० से ले कर १०० तक बतलाई।

३. ङ—अनुपस्थिति के कारण

यह पूछे जाने पर कि बैठकों में उपस्थिति क्यों अच्छी नहीं रहती उनके कुछ उत्तर ये थे कि सदस्यों को सूचना नहीं मिल पाती, उस समय कुछ सदस्य गाँव के बाहर

गए रहते हैं, अनुपस्थित रहने वाले इन बैठकों को व्यर्थ मानते हैं और सदस्यों के पास समय नहीं रहता। कुछ सदस्यों ने कोई उत्तर नहीं दिया।

कृषि विस्तार कार्य

गाँव आजीविका के हेतु मुख्यतः कृषि पर निर्भर है। परन्तु सा. वि. यो. के कार्यकलापों के कारण कृषि की प्राचीन रीतियों में परिवर्तन हो रहा है।

सिंचाई

स्थान-स्थान पर भिन्न होते हुए भी इस क्षेत्र की मिट्टी सामान्यतः निम्न प्रकार की है। इस अनुर्वरा मिट्टी में फ़स्ल खड़ी करने के लिए सिंचाई अपेक्षित है। परन्तु पर्याप्त सिंचाई की सुविधायें उपलब्ध नहीं हैं। इस भूखंड की प्रकृति तथा रचना नहरें बनाने और कुँयें खोदने दोनों में कठिनाइयाँ उपस्थित करती हैं। छोटी-छोटी बंधियों द्वारा सिंचाई सम्भव है और कुछ इच्छुक कृपकों को बंधियाँ बाँधने के लिए ऋण दिए गए हैं। सा. वि. यो. द्वारा पिपरडीहा, कटौली, सुखरा में बड़ी बंधियाँ भी बनाई गई हैं। तथापि सिंचाई की समस्या का सन्तोषजनक रूप से समाधान नहीं हुआ है। चितौरा में कुछ कच्चे कुँयें बनाए गए हैं परन्तु इस समय सिंचाई की जितनी सुविधायें उपलब्ध हैं उनसे अधिक के लिए लोग व्यग्र हैं क्योंकि वर्षा की मनमानी तथा सिंचाई की सुविधाओं के अभाव के कारण वारम्बार फ़स्लों की उपज कम होती रही है।

सिंचाई की व्यवस्था के लिए सा. वि. यो. द्वारा किए गए काम को निम्नलिखित तालिका में दिखलाया गया है—

१९५४–५५

१. बंधियाँ बाँधना	२०० गज़
२. 'गूलों' का निर्माण	२०० गज़
३. बंधियों की मरम्मत	४५० गज़
४. कच्चे कुँओं का निर्माण	५

१९५५–५६

१. छोटी बंधियाँ बाँधना	३
२. कच्चे कुँओं का निर्माण	२
३. पर्शियन ह्वील (रहट) गाड़ना	१
४. बंधियों की मरम्मत	१०,००० घन फ़ीट
५. ऋण-वितरण	२,६७० रु.

खाद

गोबर और जलाए गए गोबर की राख ही स्वदेशीय खाद है। कभी-कभी खाद के लिए डंठल भी जलाए जाते हैं। १९५४ में जब सा. वि. यो. ने सुपरफ़ॉस्फ़ेट, बोन मील और कैस्टर केक उपलब्ध कराए उसके पूर्व रासायनिक खादों का प्रयोग अविदित था। तब से धान के खेतों में बोन मील का प्रयोग होता है। ऐसी खादों की माँग बढ़ रही ह और इस माँग को पूरा करना कठिन रहा है।

जनसहयोग---रासायनिक खादों की उपयोगिता पर शीघ्र ही ग्रामनेताओं का विश्वास जम गया और उनका प्रयोग काफ़ी लोकप्रिय हुआ। अब फ़स्लों की उपज में वृद्धि का कारण ग्रामवासी इन रासायनिक खादों के प्रयोग को ही बतलाते हैं। वर्तमान व्यवस्था के द्वारा खादों की स्थानीय माँग पूरी नहीं हो सकती, अतएव एक सुझाव रखा गया है कि वितरण कार्य सहकारी समिति अपने हाथ में ले ले।

हरी खाद

सा. वि. यो. ने हरी खाद का प्रयोग आरम्भ करने की चेष्टा की किन्तु उसके प्रयत्न असफल रहे। वर्षा का स्तर ३०" से नीचे होने के कारण हरी खाद देना असम्भव है, अतएव यह विचार त्याग देना पड़ा। परन्तु विढमगंज के आसपास सनई हरी खाद योजना को कुछ सफलता मिली यद्यपि चितौरा में यह पूर्ण रूप से असफल रही।

खाद की व्यवस्था के लिए सा. वि. यो. द्वारा किए गए काम को इस प्रकार दिखलाया जा सकता है—

१९५४–५५

१.	खाद प्रदर्शन	१

१९५५–५६

१.	कम्पोस्ट गड्ढों का निर्माण	१३
२.	कम्पोस्ट गड्ढों की खाद का प्रयोग	११
३.	खाद वितरण (अमोनियम सल्फ़ेट)	२० सेर
४.	अमूल्य खाद वितरण	२ मन २० सेर
५.	धान के उपयुक्त खाद का प्रदर्शन	१
६.	गेहूँ और जौ के उपयुक्त खाद का प्रदर्शन	१

बीज

सरकार के बीच में पड़ने के पूर्व कृषक बीज की अपनी आवश्यकतायें अपने ही भांडार से या अपने साथी कृषकों से, जिनके पास अधिक मात्रा में बीज रहता था,

पूरी कर लेते थे। बीज उधार लेने तथा फ़स्ल कटने के समय ऋण को चुकाने की प्रथा बहुत साधारण थी और अब भी पाई जाती है।

१९४२ में कृषि विभाग ने बीज की पूर्ति तथा उन्नत प्रकार के बीज चालू करने के उद्देश्य से 'बेसिक सीड स्टोर' खोला। 'बेसिक सीड स्टोर' द्वारा वितरित कुछ क़िस्में हैं 'धान टी ३६', 'पूसा गेहूँ', मूँग, तिल, सनई, जौ, चना, अलसी, इत्यादि।

१९५४–५५ में सा. वि. यो. की स्थापना के समय से उन्नत प्रकार के बीजों के वितरण पर और अधिक ध्यान दिया गया है। बीज की पूर्ति के लिए 'बेसिक सीड स्टोर' उत्तरदायी है। सा. वि. यो. के द्वारा जिन क़िस्मों के बीज उपलब्ध हुए वे हैं—

१. गेहूँ—आरम्भ में गेहूँ सी १३ चालू किया गया परन्तु बाद में गेहूँ सी. पी. बासी ने पूर्ति की। एक प्रदर्शन फ़ार्म पर गेहूँ की अन्य क़िस्में, विशेष रूप से के ५३, एन्. पी. ७६०, एन्. पी. ७७१, एन्. पी. १६५ और एन्. पी. ५२ बोई गई किन्तु उनके फल चितौरा के कृषकों को प्रभावित न कर सके।

२. धान—धान की उन्नत क़िस्मों टी १००,२२ ए और टी ३६ में, जिनका परीक्षण चितौरा में किया गया, लोगों ने केवल टी ३६ को पसन्द किया। चालू वर्ष में टी २२ नामक धान की एक क़िस्म चलाई गई है जो अपेक्षाकृत पहले बोई जाती है।

३. जौ—यद्यपि जौ सी २५१ का परीक्षण हो चुका है ग्रामवासी इसके बारे में कोई पक्की राय नहीं दे पाते। सुनिश्चित जलपूर्ति की अवस्था में ही इसे उगाते हैं।

४. चना—गाँव में तीन स्थानीय प्रकार के चने पैदा किए जाते थे अर्थात् बड़ा, मँझला और छोटा। सा. वि. यो. ने टी ८७ और टी २५ को चालू किया परन्तु टी २५ असफल होने के कारण बन्द कर दिया गया।

५. मक्का—पहले एक स्थानीय क़िस्म का मक्का पैदा किया जाता था जो पीले रंग का होता था और शीघ्र पकने तथा स्वाद के लिए विख्यात था। जौनपुरी क़िस्म को चालू करने के प्रयत्न का ग्रामवासियों ने कुछ विरोध किया। परन्तु परीक्षण को महान सफलता मिली। अब स्थानीय क़िस्म की जगह जौनपुरी क़िस्म ५० प्रति शत आ गई है।

६. अरहर—सा. वि. यो. ने अब अरहर की चैती नामक एक स्थानीय क़िस्म को लोकप्रिय बनाया है।

जनसहयोग—जब किसी नई क़िस्म के बीज को आरम्भ करने से उपज में वृद्धि की संभावना होती है तो ग्रामवासी स्वेच्छापूर्वक उसे ग्रहण करते हैं। परन्तु कभी-कभी प्रदर्शन दोषपूर्ण होते हैं। बीज प्रदर्शन में न केवल उन्नत क़िस्म का बीज बोते

हैं वरन् खेत में ढेर-सी खाद भी डालते हैं। अतएव ग्रामवासियों को यह विश्वास हो जाता है कि उपज में वृद्धि नई क़िस्म के बीज के कारण नहीं वरन् खाद के कारण हुई है।

बीज गोदाम विशुद्ध प्रकार के बीज वितरित करता है। ग्रामवासी उन्हें सरलता-पूर्वक पा सकते हैं। परन्तु ऋण वापस करते समय झंझट पैदा होती है क्योंकि उन्हें उधार लिया हुआ विशुद्ध प्रकार का वही बीज लौटाना होता है। ग्रामवासी विशुद्ध प्रकार की उपज नहीं पैदा कर पाते क्योंकि उचित रीति से मिट्टी नहीं बन पाती, मिट्टी दोषयुक्त होती है, जलाभाव रहता है अथवा स्थानाभाव के कारण ग्रामवासी को विभिन्न प्रकार के बीजों के पौदों को काटने के बाद एक स्थान पर ही रखना पड़ता है। बीज की विशुद्धता नष्ट हो जाने पर अथवा उन्नत और स्थानीय प्रकार के बीजों के घुल-मिल जाने पर बीज गोदाम उन्हें वापस लेना अस्वीकार करता है। तब ग्रामवासी शिकायत करते हैं कि गोदाम उनके प्रति सहानुभूति नहीं रखता तथा वे उससे बीज का ऋण लेना बन्द कर देते हैं। बीज गोदाम से कृषकों के बीज उधार न लेने का एक अन्य कारण यह है कि उनमें अनेक अभी भी अन्न व्यापारियों के ऋणी हैं। अन्ततः बीज गोदाम कृषकों की बीज की आवश्यकतायें सम्पूर्ण रूप से पूरी करने में असमर्थ है।

बीज वितरण के लिए ग्रा. वि. यो. द्वारा किया गया कार्य—

१९५४–५५

बीज वितरण		
ख़रीफ़	धान	८ मन २० सेर
	मूँग	१ मन १० सेर
	मक्का	१० सेर

१९५५–५६

बीज वितरण (धान, तिल, मूँग, सनई)	४२ मन
,, ,, (गेहूँ, चना, जौ)	१५ मन
अर्ध क्षेत्रफल प्रदर्शन गेहूँ, चना और जौ का	१२ बिस्वा

न्नत उपकरण

इस दिशा में अधिक प्रगति न हो सकी। कुछ प्रदर्शन किए गए जिनमें 'गुर्जर' ल से जोतने का एक प्रदर्शन भी था। इसमें मानिकपुर कर्षण यंत्रों (culti-vators), आर्. एन्. कर्षण यंत्रों, सिंह हैण्ड हो (Singh Hand Hoes)

और शर्मा हैण्ड हो (Sharma Hand Hoes) का प्रयोग हुआ था। सिंह हैण्ड हो प्रदर्शनार्थ गाँव सभाओं को दिए गए।

जनसहयोग—उन्नत उपकरणों के प्रति ग्रामवासियों की मनोधारणा अभी भी उपेक्षापूर्ण है। इसके कई कारण हैं। नवीन उपकरणों अर्थात् 'गुर्जर' हल और 'मोल्ड बोर्ड' हल (Mould Board Ploughs) में दोष यह है कि वे उनमें जोते जाने वाले पशुओं के लिए बहुत भारी हैं। नवीन उपकरणों का प्रयोग पथरीली भूमि के कारण भी कठिन हो जाता है। ओसाने की मशीन लोकप्रिय न हो सकी क्योंकि भूसा प्रयोग करने के उपयुक्त नहीं रह जाता था। हैण्ड हो जो जापानी विधि की कृषि तथा मक्के की खेती में सहायक हो सकते हैं अभी नहीं अपनाए जा सके हैं। सिंचाई की कठिनाइयाँ चोब यंत्र (dibbles) के प्रयोग को निरुत्साहित करती हैं। चारा काटने की मशीन पर हर किसी का विश्वास जम गया है परन्तु उसे मोल लेने में बहुत कम लोग समर्थ हैं।

१९५५–५६ में वितरित उपकरण

१.	मानिकपुर कर्षण यंत्र	१ दुद्धी में
२.	शर्मा हैण्ड हो	२ चितौरा में
३.	सिंह हैण्ड हो	२ दुद्धी में
४.	हल	२ चितौरा में
५.	चारा काटने की मशीनें	२ दुद्धी में

कुछ दुद्धीवासियों के खेत चितौरा में भी हैं, इसलिए वही उपकरण दोनों स्थानों पर प्रयुक्त होते हैं।

उन्नत प्रविधियाँ

जापानी विधि की कृषि—मा. वि. यो. ने अपने अस्तित्व के प्रथम वर्ष में ही इस विधि को आरम्भ किया। चितौरा में धान टी ३६ को ले कर व्यापक रूप मे प्रदर्शन किए गए। इस विधि को अपनाने वाले कृषकों में रासायनिक खाद अमूल्य वितरित की गई। प्रथम प्रदर्शन क्रमबद्ध रूप से हुआ परन्तु अन्ततः यह असफल रहा क्योंकि अपेक्षित समय पर वर्षा न हुई। सुनिश्चित जलपूर्ति वाले गाँवों में प्रयोग अवश्य सफल रहा। अतएव ग्रामवासियों ने अगले वर्ष इस विधि का अनुसरण करने का निश्चय किया। परन्तु वर्षा फिर अपर्याप्त रही और इस विधि को त्याग दिया गया। खेतों में ढेर-सी खाद डालने की आवश्यकता ने इसके पालन में और भी व्यवधान उपस्थित किया।

यू. पी. विधि की कृषि—सा. वि. यो. द्वारा आरम्भ की गई एक अन्य विधि साधारणतया यू. पी. विधि के नाम से जानी जाती है। इस विधि पर आधारित प्रथम प्रयोग १९५६ में ४ एकड़ के एक छोटे से फ़ार्म पर गेहूँ सी. पी. बासी को ले कर किया गया। बारह बार हल चलाया गया अर्थात् पहले की अपेक्षा तीन बार अधिक। अंतिम बार हल चलाने के पूर्व कम्पोस्ट खाद डाली, खुरपियाई और समतल की गई। ९–९ इंच की दूरी पर पंक्तियों में बीज बोया गया। इस विधि में भी अच्छी जलपूर्ति अपेक्षित है, अतएव यह संदिग्ध है कि इसका लोग विशेष स्वागत करेंगे।

फ़स्लों की अदला-बदली—सा. वि. यो. के पथ-प्रदर्शन में कुछ ग्रामवासियों ने फ़स्लों की अदला-बदली की प्रथा अपनाई है। इसके फलस्वरूप उपज में वृद्धि हुई है और इसलिए यह लोकप्रिय है।

जनसहयोग—यदि जापानी विधि की कृषि के दो प्रयत्न असमय वर्षा तथा वर्षाभाव के कारण असफल न हुए होते तो लोग उसका स्वागत करते। अनेक अन्धविश्वासी ग्रामवासियों का विश्वास है कि नई विधि का आग्रहण अनावृष्टि का कारण है। वस्तुतः 'जापानी' शब्द का अर्थ है 'जा पानी'।

कृषक इस तथ्य से अवगत हैं कि कृषि की उनकी परम्परागत रीति की अपेक्षा कृषि की जापानी और यू. पी. दोनों विधियों में कम परिमाण में बीज अपेक्षित होता है। जहाँ पहले एक मन बीज प्रयुक्त होता था वहाँ १० सेर पर्याप्त है। इसके अतिरिक्त बीज समान अन्तर पर बोए जाते हैं जिससे निराई अधिक कुशलतापूर्वक होती है।

इस दिशा में किया गया कार्य—

१९५४–५५	
पंक्ति में मक्के का बोना	१ एकड़
मक्के को घना न बो कर छिटक-छिटक कर बोना	७ ,,
जापानी विधि प्रदर्शन	१
१९५५–५६	
पंक्ति में मक्के का बोना	½ एकड़
जापानी विधि की कृषि	१ ,,
मिट्टी तैयार करना	१½ ,,
समतल करना	१ ,,
खंड बीजारोपण प्रदर्शन	५ ,,

प्रॉजेक्ट की त्रुटियाँ

प्रदर्शनार्थ सा. वि. यो. के अपने खेत नहीं हैं। अतएव प्रयोग कृषकों के खेतों में होते हैं जहाँ कड़ाई के साथ निगरानी नहीं रखी जा सकती। ऐसी दशाओं में

जनता को नई विधियों, बेहतर बीजों, इत्यादि के लाभों को स्पष्ट रूप से समझाना प्रायः कठिन होता है।

कभी-कभी थोड़े-से प्रदर्शन ही होते हैं जो पर्याप्त रूप से ग्रामवासियों को प्रभावित करने में असमर्थ होते हैं। उदाहरणार्थ, बीडर में के ५३, के ५४, एन्. पी. ७६०, एन्. पी. ७७१, एन्. पी. १६५, एन्. डी. ५२, सी. पी. बासी तथा सी १३ सदृश गेहूँ की विभिन्न क़िस्मों का परीक्षण केवल एक बार हो सका क्योंकि बीज गोदाम ने प्रदर्शनार्थ हर क़िस्म के केवल चार-चार सेर बीज दिए। परीक्षणों से प्रकट हुआ कि इस क्षेत्र के लिए केवल सी १३ और सी. पी. बासी उपयुक्त हो सकते हैं परन्तु यह संदिग्ध है कि केवल एक प्रदर्शन के आधार पर जो एक ही गाँव में किया गया हो ऐसा निष्कर्ष निकालना सम्भव है। किसी स्थान-दर्शन कार्यक्रम अथवा अन्तरग्रामीण आवागमन की व्यवस्था नहीं की गई है जिनसे लोग प्रदर्शनों के परिणामों की स्वयं समीक्षा कर सकते।

इसके अतिरिक्त स्वयं प्रदर्शन दोषयुक्त हैं। एक समय में किसी एक कारण का पता कर अलग करने की चेष्टा नहीं होती। इसके विपरीत प्रदर्शन के खेत में साथ-साथ बेहतर औज़ार, अच्छी खाद, विशुद्ध बीज तथा उन्नत प्रविधियाँ सभी प्रयुक्त होती हैं। इन सब कारणों के एक साथ काम करने से उपज में वृद्धि होती ह परन्तु ग्रामवासियों में विश्वास नहीं जमता कि वृद्धि उस कारण से हुई है जिस पर सा. वि. यो. बल देना चाहती है। इसके विपरीत वे स्वभावतः सफलता का कारण किसी अन्य वस्तु को बतलाते हैं। इस प्रकार प्रदर्शन का उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता।

प्रदर्शन उन लोगों के खेतों में होते हैं जिनके पास काफ़ी भूमि होती है जिसका एक अंश प्रदर्शनार्थ दिया जा सकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि छोटे कृपक जो बहुसंख्यक हैं इन प्रदर्शनों की परिधि के बाहर रह जाते हैं। ध्यान देने योग्य एक अन्य बात यह है कि कृषि विस्तार योजना के अन्तर्गत खाद वितरण के लिए भी 'केमिक सीड स्टोर' उत्तरदायी है। केवल अग्रणी कृपक इन अवसरों से लाभ उठाते हैं। वे अन्नऋण भी देते हैं, फलतः उन्नत बीज को लोकप्रिय बनाने में उनकी कोई अभिरुचि नहीं है।

बीज गोदाम के सफल संचालन में ग्रामवासियों की दरिद्रता बाधक है। कुछ के पास बहुत छोटे-छोटे खेत हैं, इसलिए वे नाममात्र के परिमाण में तिल, अलसी और सरसों का ऋण लेते हैं और प्रमुख अन्नों की उन्नत क़िस्मों का लाभ नहीं उठाते। इसी प्रकार अन्य लोग हैं जो धान और गेहूँ का ऋण बोने के लिए नहीं अपितु खाने के लिए लेते और ऋण को द्रव्य में चुकाते हैं। इस प्रकार बीज की उन्नत क़िस्मों को लोकप्रिय बनाने का बीज गोदाम का उद्देश्य सफल नहीं हो पाता।

इस दिशा में सा. वि. यो. के कार्य में कई बाधायें हैं जिनमें कुछ दूर की जा सकती हैं और दूसरों के लिए कुछ सम्भव नहीं है। परन्तु एक बात निश्चित है और वह यह कि जब तक सिंचाई की सुविधाओं का विस्तार नहीं होता तब तक कृषकों की दशाओं को सुधारने के अन्य सारे प्रयत्न निष्फल सिद्ध होंगे।

वृक्षपालन

फलदायी वृक्षों को लगाने के लिए बहुत प्रचार कार्य हुआ। गाँव में कुछ लोगों के पास पहले से कुछ फलदायी वृक्ष, मुख्यतः आम, सन्तरे और अमरूद के वृक्ष थे। वे या तो बागीचों में या इधर-उधर छिटके हुए थे। सा. वि. यो. ने ग्रामवासियों को सर्वप्रथम क्रमबद्ध रीति से वृक्ष लगाना सिखलाया। वृक्षारोपण आन्दोलन संघटित हुए और प्रति वर्ष उद्यानविज्ञान विस्तार कार्य को लोकप्रिय बनाने के हेतु वनमहोत्सव मनाया जाता है। पहले गाँव के नेताओं को पक्ष में करने के लिए सही क़दम उठाया गया। सुनियोजित फल उद्यानों के लाभ उन्हें समझाए गए। जो फल उद्यान लगाना चाहते थे उन्हें सा. वि. यो. की ओर से बेहनों, फल उद्यानों के चारों ओर चहारदीवारी खड़ी करने के लिए उपदान, प्राविधिक परामर्श, इत्यादि की पूर्ति द्वारा सहायता का आश्वासन दिया गया। फल उद्यानों के लिए उपयुक्त स्थान सुझाए गए। कुछ थोड़े-से उत्साही व्यक्तियों ने सा. वि. यो. के कार्यकर्ताओं के सहयोग से कार्य आरम्भ किया। परन्तु शीघ्र ही पौदों की नियमित पूर्ति की व्यवस्था करने में असमर्थ होने के कारण इस कार्य के प्रति सा. वि. यो. उदासीन हो गई। परन्तु कुछ मवासियों का फल उद्यान रखने का निश्चय है और सा. वि. यो. की सहायता के अभाव में भी वे अपनी योजनानुसार आगे बढ़ रहे हैं।

जनता का सहयोग तथा योगदान—सर्वदमन सिंह चितौरा का प्रथम निवासी था जिसने क्रमबद्ध रीति से आम का एक अच्छा बाग लगाया। इसके लिए एक बीघा भूमि अलग कर दी गई। जून १९५४ में शुभ मृगदाह नक्षत्र में सहायक प्रॉजेक्ट अधिकारी (सामाजिक शिक्षा), स. प्रॉ. अ. (पंचायत), तहसीलदार और ग्रामसेवक की उपस्थिति में कार्य आरम्भ हुआ। उनकी देखरेख में तीस गड्ढे खोदे गए। हर गड्ढा तीन फ़ीट गहरा, तीन फ़ीट व्यास का तथा अगले गड्ढे से तीस फ़ीट की दूरी पर था। जुलाई में खोदी हुई मिट्टी और सा. वि. यो. द्वारा दी हुई ५ सेर रासायनिक खाद के मिश्रण से गड्ढे भरे गए। सा. वि. यो. ने बेहन देने का भी वचन दिया था परन्तु बाद में उसे जावर की नर्सरी से बेहन लेने को कहा गया। फलतः उसे स्वयं बेहनों की पूर्ति का प्रबन्ध करना पड़ा। दुद्धी की राजकीय नर्सरी ने उसे उन्नत क़लमी क़िस्म के पाँच बेहन दिए किन्तु दोषपूर्ण रीति से क़लम लगाने

के कारण ये सूख गए। जो तीस बेहन बैठाए गए उनमें केवल बाईस बढ़ रहे हैं। सिंचाई और खाद डालना उचित रूप से होता है। आशा है कि वृक्ष १९५९ में फल देंगे। यद्यपि चहारदीवारी के लिए ऋण का आश्वासन सर्वदमन सिंह को दिया गया था उसने यह सहायता नहीं ली। सम्भवतः सा. वि. यो. के आश्वासनों पर से उसका विश्वास उठ गया। जब पौदे छोटे थे उसने स्थानीय रीति से रक्षा के लिए घेरे खड़े कर दिए और अब जब वे पर्याप्त रूप से बढ़ गए हैं उनके चारों ओर कँटीले पौदों की झाड़ियाँ रूँध दी गई हैं। सर्वदमन सिंह का अमरूद का भी एक बाग है जिसमें अनियोजित रीति से पाँच-छः वर्ष पूर्व वृक्ष लगा दिए गए थे।

सा. वि. यो. के आदेशानुसार जून १९५४ में जवाहर सिंह के एक बाग का भी नियोजन हुआ। परन्तु इस उद्योग में सा. वि. यो. ने बहुत कम दिलचस्पी दिखलाई। जब कार्य आरम्भ हुआ केवल ग्रामसेवक उपस्थित था। वही विधियाँ अपनाई गईं परन्तु कम्पोस्ट खाद प्रयुक्त हुई क्योंकि सा. वि. यो. ने रासायनिक खाद न दी। यहाँ भी सा. वि. यो. बेहन न दे सकी। परन्तु दुद्धी तहसील में चपरासी होने के कारण अधिकारियों पर जवाहर सिंह का कुछ प्रभाव है, फलतः राजकीय नर्सरी से उसने १२ बेहन उपलब्ध किए। उसके छोटे-से बाग में ये बेहन भलीभाँति बढ़ रहे हैं। उसके बाग में अमरूद के २३ वृक्ष, बड़हर के ३ वृक्ष, नीबू का एक वृक्ष, करौंदा का एक वृक्ष और बेल का एक वृक्ष भी हैं। अपने वृक्षों की सुरक्षा की आवश्यकताओं के लिए सा. वि. यो. से जवाहर सिंह ने भी कोई सहायता नहीं ली और इसलिए वह भी स्थानीय उपायों पर निर्भर है।

पशुपालन

पशुपालन के क्षेत्र में सा. वि. यो. के दो लक्ष्य हैं, पशुओं की नस्ल में उन्नति और कुक्कुटपालन को लोकप्रिय बनाना। अनेक ग्रामवासियों के पास पर्याप्त संख्या में गाय-बैल हैं जो सामान्यतः घटिया क़िस्म के हैं। इस क्षेत्र की यह एक विशेषता है कि पशुओं को चरनी में खिलाने की प्रथा यहाँ नहीं है। चारे की कोई फ़स्ल नहीं पैदा की जाती। अन्य फ़स्लों के डंठल भी खाद के लिए जला देते हैं। अत-एव पशु केवल घास पर और पास के वनों में जो कुछ मिल जाता है उस पर निर्भर रहते हैं। परन्तु ग्रीष्म के महीनों में घास सूख जाती है और जल का भी बहुत अभाव हो जाता है। इस प्रकार वर्ष के विशेष भाग में पशुओं को आहार का अभाव रहता है और यह उनकी घटिया क़िस्म का कारण है।

जब कृषि दुद्धी का मुख्य व्यवसाय नहीं था यह अपने उत्तरोत्तर वृद्धिशाली पशु-धन के लिए प्रसिद्ध था। उस समय चारों ओर भूमि वनाच्छादित थी तथा वर्षा

वहुतायत से होती थी। अब पर्याप्त क्षेत्रफल में वन कृषि के लिए साफ़ कर दिए गए हैं तथा वहुधा मानसून धोखा दे जाती है जिसके कारण पशुओं को बहुत कष्ट रहता है। इन अवस्थाओं में हाल में लाए गए श्रेष्ठतर नस्ल के पशु का भी ह्रास होने लगता है और वह ऐसी नस्ल उत्पन्न करता है जो स्थानीय नस्ल से बहुत भिन्न नहीं होती।

सा. वि. यो. ने स्थापना के समय से ही ग्रामवासियों का ध्यान पशुओं के लिए अच्छे चारे के महत्व तथा आवश्यकता की ओर आकर्षित किया है। चारा काटने की कुछ मशीनें बाँटी गई हैं और उनकी उपयोगिता दिखलाने के लिए प्रदर्शन किए गए हैं। कृत्रिम गर्भाधान योजना की सफलता बहुत सीमा तक अच्छे चारे की पूर्ति पर निर्भर है।

कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र

स्थानीय पशुओं की नस्ल को उन्नत करने के स्पष्ट उद्देश्य से १९५५ में कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र स्थापित हुआ था। दुद्धी में ज़िला परिषद के नियंत्रण में एक पशु अस्पताल था। सा. वि. यो. ने इस अस्पताल में एक कृत्रिम गर्भाधान प्रयोगशाला, साँड़ों* के लिए एक शेड और अस्पताल में भर्ती किए जाने वाले रोगी पशुओं के लिए एक वार्ड बढ़ाए। इस विस्तार कार्य का व्यय इस प्रकार था—

कृ. ग. प्रयोगशाला	५,००० रु.
साँड़ों के लिए शेड	४,००० रु.
भर्ती होने वाले रोगी पशुओं का वार्ड	४,००० रु.

यद्यपि केन्द्र का उद्घाटन जनवरी १९५५ में ही हो गया था अतिरिक्त भवन मई १९५५ के पूर्व नहीं तैयार हो सके। केन्द्र भलीभाँति साधनपूर्ण है और वहाँ एक कृ. ग. सेट, गर्भाशय फैलाने वाला एक यंत्र (vagina speculum) और एक रेफ़्रिजरेटर है। आरम्भ से ही हरियाना नस्ल का एक साँड़, गंगातीरी नस्ल का एक साँड़ और रोहतक नस्ल के दो साँड़ काम में लाए जाने के लिए तैयार थे। ये चार साँड़ यांत्रिक कृषि फ़ार्म, बनारस, में छः मास तक पाले गए थे। जून १९५५ में केन्द्र को एक अणुवीक्षणयंत्र और मार्च १९५६ में एक विश्लेषक तुला (analytical balance) मिले।

कर्मचारी—केन्द्र ने तत्कालीन सहायक वेटेरिनरी सर्जन श्री कुँवर और उनके दो सेवकों की अधीनता में कार्य आरम्भ किया। बाद में वेटेरिनरी अफ़सर का पद स्वीकृत हुआ और श्री के. आई. अलेक्ज़ेंडर प्रथम वेटेरिनरी अफ़सर बने। जुलाई १९५५ में मिर्ज़ापुर के वेटेरिनरी स्टॉकमैन श्री अब्दुल रशीद को संक्षिप्त

* साँड़ शब्द का जहाँ-जहाँ प्रयोग हुआ है वहाँ भैंसा भी अभिप्रेत है।

प्रशिक्षणार्थ गँजरिया फ़ार्म, लखनऊ, भेजा गया। प्रशिक्षणोपरान्त वह सितम्बर १९५५ में कृ. ग. केन्द्र, दुद्धी, में आ गए और तब से कृ. ग. कार्य उनके अधीन है।

मथुरा में १९५६ में १७ से १९ फ़रवरी तक कृ. ग. कार्य पर एक सेमिनार हुआ। वेटेरिनरी अफ़सरों और पशुपालन विभाग के अन्य अधिकारियों ने उसमें भाग लिया। दुद्धी केन्द्र के वेटरिनरी अफ़सर भी सम्मिलित हुए। सेमिनार में अन्य समस्याओं के अतिरिक्त प्रथम पंचवर्षीय योजना के काल में कृ. ग. कार्य की उपलब्धियों, सघनतर कार्य की सम्भावनाओं तथा रूस और स्वीडेन के कृ. ग. कार्य पर विचार-विमर्श हुआ।

कृ. ग. केन्द्र के कार्य की व्याप्ति—एक कृ. ग. केन्द्र २,००० गायों और १,५०० भैंसों के लिए पर्याप्त हो सकता है। दुद्धी केन्द्र ११ गाँवों—दुद्धी, रजखड़, बीडर, मलदेवा, बरईडाँड़, पिपरडीह, जाबर, खजुरी, चितौरा, डोमरडीहा और रामनगर—की सेवा करता है। कृ. ग. केन्द्र न केवल कृ. ग. कार्य करता है अपितु उसके पालन को लोकप्रिय बनाता है।

केन्द्र के अभिलेखों के अनुसार कृ. ग. केन्द्र में ले जाए गए पशुओं की संख्या और परिणाम निम्नलिखित तालिका में दिए गए हैं —

मास	केसों की संख्या	ग्राम	परिणाम
१९५४—५५			
जनवरी १९५५	२ गायें	दुद्धी	१ सफल १ असफल
फ़रवरी १९५५	१ गाय	रजखड़	सफल
	१ गाय	रामनगर	जाँचा नहीं गया
मार्च १९५५	१ गाय	विंढमगंज	सफल
	१ गाय १ भैंस	दुद्धी	असफल
१९५५—५६			
अप्रैल १९५५	४ गायें	दुद्धी	९ केस सफल और ६ केस असफल रहे। चितौरा का केस (गाँव का पहला केस) असफल रहा।
	३ गायें	रजखड़	
	२ गायें	बीडर	
	३ गायें	बरईडाँड़	
	२ गायें	चुटकाई बहरा	
	१ गाय	चितौरा	
	१ गाय	रामनगर	

मास	केसों की संख्या	ग्राम	परिणाम
मई १९५५	२ गायें	दुद्धी	१ सफल, १ असफल
	१ गाय	मलदेवा	असफल
	१ गाय	देहगुल	सफल
	१ गाय	बीडर	असफल
जून १९५५	१ गाय	दुद्धी	सफल
जुलाई १९५५	१ गाय	दुद्धी	सफल
अगस्त १९५५	–	——	——
सितम्बर १९५५	३ भैंसें	——	२ सफल, १ की जाँच न हो सकी
	१ गाय	——	
अक्तूबर १९५५	२	दुद्धी	केवल ५ की जाँच हो सकी, २ सफल और ३ असफल
	३ ७ गायें	डोमरडीहा	
	२ ३ भैंसें	रजखड़	
	२	बीडर	
	१	जाबर	
नवम्बर १९५५	८	दुद्धी	केवल ८ की जाँच हो सकी, ६ सफल और २ असफल
	२ १७ गायें	रजखड़	
	१ २ भैंसें	पीपरडीह	
	१	चुटकाई बहरा	
	२	गुलाल झरिया	
	३	बीडर	
	१	जाबर	
	१	विंढमगंज	
दिसम्बर १९५५	६ ७ गायें	दुद्धी	——
	१ २ भैंसें	फुलवार	
	१	गुलाल झरिया	
	१	विंढमगंज	
जनवरी १९५६	१ ४ गायें	दुद्धी	——
	१ १ भैंस	चुटकाई बहरा	
	१	बीडर	
	१	खजुरी	
	१	रजखड़	

मास		केसों की संख्या	ग्राम	परिणाम
फ़रवरी	१९५६	१	दुद्धी	—
		१ ४ गायें	बीडर	
		१ १ भैंस	गुलाल झरिया	
		१	खजुरी	
		१	विंढमगंज	
मार्च	१९५६	२ गायें	दुद्धी	—
अप्रैल	१९५६	४ गायें	दुद्धी	३ सफल, १ असफल
		१ गाय	मलदेवा	असफल
		१ गाय	बरईडाँड़	असफल
मई	१९५६	३ गायें	दुद्धी	२ सफल, १ असफल
		२ गायें	खजुरी	सफल
		१ गाय	बरईडाँड़	असफल
		१ गाय	बीडर	असफल
जून	१९५६	५ गायें १ भैंस	दुद्धी	दुद्धी की एक गाय, मलदेवा की गाय और बीडर की भैंस को गर्भ नहीं रहा। शेष केस सफल रहे।
		१ गाय	चितौरा	
		१ गाय	मलदेवा	
		१ भैंस	खजुरी	
		१ भैंस	बीडर	
जुलाई	१९५६	५ गायें १ भैंस	दुद्धी	६ गायों और २ भैंसों के केस सफल रहे।
		१ गाय २ भैंसें	जावर	
		१ गाय	खजुरी	
		१ गाय	बीडर	
अगस्त	१९५६	२० गायें	चितौरा	केवल ९ गायों और १ भैंस के केस में सफलता नहीं मिली। चितौरा के सभी २० केस सफल रहे।
		२ गायें २ भैंसें	जावर	
		४ गायें	देहगुल	
		६ गायें	दुद्धी	
		१ गाय १ भैंस	रजखड़	

मास	केसों की संख्या	ग्राम	परिणाम
	१ गाय	खजुरी	
	२ गायें	मलदेवा	
	१ गाय	डुमुहाँ	
	१ गाय	बीडर	
	१ गाय	रामनगर	
	१ भैंस	बहरा	
सितम्बर १९५६	१२ गायें	देहगुल	केवल ८ गायों और ३ भैंसों के केस सफल रहे।
	४ गायें	चितौरा	
	२ गायें	बहरा	
	२ गायें	मलदेवा	
	१ गाय	दुद्धी	
	१ गाय	मझौली	
	२ भैंसें	रजखड़	
	१ भैंस	रामनगर	
	१ भैंस	डोमरडीहा	
अक्तूबर १९५६	४ गायें	दुद्धी	केवल १ भैंस का केस असफल रहा।
	४ गायें	चितौरा	
	२ गायें	जावर	
	१ गाय	रामनगर	
	१ गाय	मझौली	
	१ गाय, २ भैंसें	बीडर	
	१ भैंस	बहरा	
नवम्बर १९५६	२२ गायें	—	१३ गायों और २ भैंसों के केस सफल रहे।
	४ भैंसें	—	
दिसम्बर १९५६	१३ गायें	—	७ गायों और तीनों भैंसों के केस सफल रहे।
	३ भैंसें	—	
जनवरी १९५७	१६ गायें	—	९ गायों और १ भैंस के केस सफल रहे।
	४ भैंसें	—	
फ़रवरी १९५७	९ गायें	—	—
	३ भैंसें	—	—
मार्च १९५७	८ गायें	—	—
	२ भैंसें	—	—

तीन वर्षों १९५४–५५ से १९५६–५७ तक कृत्रिम गर्भाधान का तुलनात्मक विवरण

मास	१९५४–५५ गर्भाधान कराए गए पशुओं की संख्या		१९५५–५६ गर्भाधान कराए गए पशुओं की संख्या		१९५६–५७ गर्भाधान कराए गए पशुओं की संख्या	
	गाय	भैंस	गाय	भैंस	गाय	भैंस
अप्रैल	..	..	१५	..	६	..
मई	..	..	५	..	६	..
जून	..	..	१	..	७	३
जुलाई	..	..	१	..	८	३
अगस्त	..	..	..	..	३९	४
सितम्बर	..	..	१	३	२२	४
अक्तूबर	..	..	७	३	१३	३
नवम्बर	..	..	१७	२	२२	४
दिसम्बर	..	..	७	२	१३	३
जनवरी	२	..	४	१	१६	४
फ़रवरी	२	..	४	१	९	३
मार्च	२	१	२	..	८	२
जोड़	६	१	६४	१२	१६९	३३

चितौरा में गर्भाधान कार्य—गर्भाधान के चितौरा के पहले केस की असफलता के कारण लोग अपने पशुओं को कृ. ग. केन्द्र में ले जाने के पक्ष में बिलकुल न रहे। परन्तु एक वर्ष बाद जून १९५६ में उनमें दुबारा दिलचस्पी पैदा हुई और अगस्त १९५६ में २० पशुओं की अभूतपूर्व संख्या को कृत्रिम रीति से गर्भाधान कराया गया।

असफल केस—पशु को उस समय जब उसमें यौन उष्णता आती है कृ. ग. केन्द्र में न ले जा पाने के कारण कई केस असफल रहे हैं। गायों में यौन उष्णता काल लगभग २४ घंटे और भैंसों में १२ घंटे रहता है। पशुओं को समय पर केन्द्र में न ले जाने के कई कारण हैं। चरनी में खिलाने की प्रथा न होने के कारण चराने के लिए ढोरों को वन में ले जाते हैं। साधारणतया एक चरवाहा ही सारे ढोरों की देखभाल करता है। प्रायः ऐसा होता है कि चरवाहा या तो जान नहीं पाता कि

कब किसी पशु में यौन उष्णता आ रही है या बहुत देर बाद जान पाता है। यदि वह किसी पशु में यौन उष्णता आती हुई देख भी ले तो वह उसे केन्द्र में नहीं ले जाता क्योंकि वह शेष पशुओं को बिना किसी को सौंपे छोड़ नहीं सकता। किसी चरवाहे के न रहने पर पशु पास के खेतों की फ़स्ल को नष्ट कर सकते हैं और फ़स्ल की क्षति के लिए चरवाहे को उत्तरदायी माना जा सकता है। फलतः पशु समय पर केन्द्र में नहीं ले लाए जाते और प्रायः गर्भाधान कराना असफल सिद्ध होता है।

कृ. ग. कार्यक्रम आहारजन्य वन्ध्यात्व के कारण भी असफल रहा है। चारे के अभाव के कारण ग्रीष्म में पशुओं को पर्याप्त आहार नहीं मिल पाता जिसका अर्थ है कि उस काल में किसी भी पशु में यौन उष्णता नहीं आती और इसलिए गर्भाधान कराना सम्भव नहीं है। अच्छे अभिप्राय वाली तथा प्राविधिक दृष्टि से निर्दोष होते हुए भी कृ. ग. योजना मानसून के प्रायः धोखा दे जाने के कारण अधिक आगे न बढ़ सकी। योजना के सफल संचालन के लिए औसत वार्षिक वर्षा ३०″ होनी चाहिए परन्तु यहाँ औसत वर्षा केवल १७″ से २०″ तक है। जब १९५५ के समान पर्याप्त वर्षा हो तो गर्भाधान कराने की असफलता आहारजन्य वन्ध्यात्व नहीं वरन् किसी अन्य कारण से होती है। कभी-कभी रोग जैसे 'पशुप्लेग' तथा पैरों और मुख की बीमारियाँ, पशु की सारी शक्ति नष्ट कर देते हैं। ऐसे पशुओं में गर्भाधान कराना साधारणतया असफल सिद्ध होता है।

प्रचार कार्य—ग्रामवासियों का दृष्टिकोण बदलना कठिन कार्य है। अतएव लोगों का इस बात पर विश्वास जमाने के लिए कि कृ. ग. द्वारा बेहतर बछड़े-बछिया उत्पन्न हो सकती हैं कृ. ग. केन्द्र को विभिन्न उपाय अपनाने पड़े। कृ. ग. के लाभ बतलाते हुए परचे बाँटे गए। ग्रामवासियों में अधिकतर अपने ग्रामनेताओं का अनुसरण करने की प्रवृत्ति होती है, अतः यदि ग्रामवासियों के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना हो तो पहले ग्रामनेताओं को पक्ष में करना चाहिए। यदि ग्रामनेता किसी योजना को आरम्भ करने के विरोधी हों तो ग्रामवासियों का सहयोग प्राप्त करना कठिन होता है। चितौरा के सरपंच ने कृ. ग. केन्द्र के लिए कठिनाई उपस्थित कर दी जब उसने आरम्भ में कृ. ग. के विचार को अस्वीकृत किया। अतएव योजना को ग्राह्य बनाने के हेतु कृ. ग. केन्द्र के कर्मचारी ग्रामनेताओं और पशुओं के मालिकों के पास गए और उन्होंने उनका विश्वास कार्यक्रम की उपादेयता पर जमाया।

कृ. ग. केन्द्र के कार्य को लोकप्रिय बनाने का एक अन्य उपाय है पशु प्रदर्शन संघटित करना जिनमें कृत्रिम रीति से गर्भाधान कराई गई गायों और इस प्रकार उत्पन्न बछड़े-बछियों का प्रदर्शन होता है। इन पशु प्रदर्शनों को देखने के बाद उन्हें विश्वास हो जाता है कि कृत्रिम रूप से बछड़े-बछिया पैदा की जा सकती हैं। सर्वोत्तम पशुओं

के स्वामियों को पुरस्कार दिए जाते है, इस प्रकार अपने पशुओं में कृत्रिम रीति से गर्भाधान कराने के लिए लोगों को और और भी प्रोत्साहित किया जाता है।

जनता का सहयोग तथा योगदान—आरम्भ में विशेष रूप से चितौरा में कृ. ग. कार्य में लोगों ने बिलकुल दिलचस्पी नहीं दिखाई। चरवाहा पशुओं को केन्द्र में ले जाने के लिए तैयार नहीं था। अनेक ग्रामवासी गाय के गर्भाशय में किसी यंत्र को घुसेड़ने के विरोधी थे। इसके स्थान पर उनकी माँग थी कि कृ. ग. केन्द्र का साँड़ उनके गाँव में लाया जाय। कृ. ग. केन्द्र ने अस्वीकार किया और इससे लोगों में कटुता उत्पन्न हुई। विभिन्न कारणों से कुछ पशुओं में गर्भाधान कराने के लिए केन्द्र की अस्वीकृति से वे और भी अप्रसन्न हुए। एक चितौरावासी एक बार अपनी गाय कृ. ग. केन्द्र में ले गया और उसके देर तक प्रतीक्षा करने के बाद डॉक्टर ने आ कर गाय की परीक्षा की। परीक्षा २ घंटों तक चलती रही। उसके बीच डॉक्टर को गाय के गर्भाशय में अपना हाथ डालना पड़ा। डॉक्टर को पता लगा कि गाय गर्भाधान कराने के अनुपयुक्त थी। जिस रीति से गाय की परीक्षा की गई थी ग्रामवासी ने उसका विरोध किया और अस्वीकृति पर कुपित हो कर उसने दुबारा केन्द्र में न जाने की शपथ खाई।

चितौरा के सरपंच ने धार्मिक कारणों से कृत्रिम गर्भाधान का विरोध किया और प्राकृतिक सम्भोग का समर्थन किया। उसके अनुसार यह एक क्रूर प्रथा थी कि पशुओं पर गर्भावस्था बलात् लादी जाय और उन्हें यौन अनुभव न करने दिया जाय। महत्वपूर्ण व्यक्ति होने के कारण वह लोगों को केवल भौतिक लाभ के लिए अपने पशुओं को केन्द्र में ले जाने से रोकने में सफल रहा।

कृ. ग. केन्द्र के अस्तित्व के प्रथम तीन मासों में चितौरा का एक भी केस नहीं लिया गया। परन्तु केन्द्र ने अपना प्रचार कार्य जारी रखा और अन्त में कृत्रिम गर्भाधान की सफलता का समाचार गाँव में पहुँचा और अप्रैल १९५५ में वहाँ का पहला केस केन्द्र में ले जाया गया। अभाग्यवश केस असफल सिद्ध हुआ क्योंकि पशु समय पर नहीं ले जाया गया था। परन्तु चितौरा के समीपवर्ती गाँव रामनगर का एक केस पूर्ण सफल सिद्ध हुआ। बहुत दिनों बाद जून १९५६ में चितौरा का एक अन्य केस ले जाया गया और सफल रहा। लोगों को कृ. ग. कार्य के विषय में अपने विचार बदलने पड़े। शीघ्र ही वहाँ लोगों की सुविधा के हेतु एक उपकेन्द्र खोल दिया गया। अब कृत्रिम गर्भाधान के बारे में कोई सन्देहशील नहीं है। इसके विपरीत लोग अब यह स्वीकार करते हैं कि कृत्रिम गर्भाधान प्राकृतिक सम्भोग से श्रेष्ठतर है क्योंकि वीर्य बिलकुल नष्ट नहीं होता। इसके अतिरिक्त ग्रामवासियों को यह भी विदित हो गया है कि कृ. ग. केन्द्र की नस्ल से + ५ वीर्य (सर्वोत्तम) मिलता है और इसे रोगमुक्त रखा जाता है।

अब हर कोई अच्छी नस्ल के पशु रखना चाहता है। सरपंच जो किसी समय कृ. ग. कार्य का विरोधी था, और चितौरा के दो अन्य निवासियों ने गंगातीरी गायों को मोल लेने के लिए तक़ावी के लिए आवेदनपत्र तक दिया है।

कृ. ग. योजना द्वारा लोकप्रियता अर्जित करने के कारण ये हैं कि इसकी सेवा निःशुल्क है तथा सभी को सभी समय उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त केन्द्र में रखी गई नस्ल को ग्रामवासी पसन्द करते हैं। गर्भाधान कराने तथा बछड़े-बछिया उत्पन्न करने में ये साँड़ स्थानीय पशुओं के उपयुक्त हैं। कोई असामान्य प्रसव नहीं हुआ है। स्थापना के समय कृ. ग. केन्द्र में सिंधी नस्ल का केवल एक लाल साँड़ था। इस लाल रंग ने लोगों को आर्कषित नहीं किया और वह कार्यक्रम असफल रहा। निदान, जनता की इच्छा ज्ञात होने के पश्चात् केन्द्र में ऐसी नस्लें रखी गई हैं जो काफ़ी लोकप्रिय हैं।

कृ. ग. कार्य का विस्तार—दुद्धी के वेटेरिनरी अफ़सर ने स्वतः चितौरावासियों की सक्रिय सहायता तथा सहयोग से वहाँ एक कृ. ग. सर्विस पोस्ट खोला। इस चौकी के लिए ताज़ा वीर्य सरलतापूर्वक समीपस्थ दुद्धी से साइकिल पर लाया जा सकता है। इस प्रयोग के फल उत्साहवर्धक रहे हैं और यह अच्छा होगा यदि इसी प्रकार के सब-पोस्ट अन्य गाँवों में भी खुल जायँ। इस प्रयोग को सफलता प्रदान करने वाला एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि पशुपालन विभाग ने स्थानीय नस्ल के साँड़ों को बधिया करना अपने हाथ में ले लिया है जिससे वे निकम्मे हो जाते हैं। उस दशा में लोग स्वभावतः कृ. ग. कैन्द्र पर निर्भर हो जाते हैं। कृ. ग. केन्द्र की अन्य प्रकार की सेवाओं से लाभ उठाने के लिए भी लोगों को प्रोत्साहित किया जाता है और कृत्रिम रीति से गर्भाधान कराई गई गायों के स्वामियों को उनके सहयोग के उपलक्ष्य में पुरस्कार दिए जाते हैं।

अगस्त १९५६ में गर्भाधान कार्य में चितौरा ने दुद्धी को पछाड़ दिया। इसके कारण के रूप में यह कहा जा सकता है कि चितौरा के पशु अधिकतर गाँव में ही रहते हैं और गर्भाधान कराने के लिए सदा उपलब्ध रहते हैं। इसके विपरीत दुद्धी के पशु प्रवासी प्रकृति के हैं। इसके अतिरिक्त चितौरावासी पशुधन की अधिक चिन्ता करते हैं और कृत्रिम गर्भाधान को अधिक पसन्द करते हैं।

चितौरा की कृ. ग. चौकी छोटी है, तथापि लोगों में अपनी सेवाओं के लाभों पर विश्वास जमाने के अपने लक्ष्य में वह सफल रही है।

कृ. ग. केन्द्र की त्रुटियाँ—अर्थाभाव के कारण केन्द्र के कार्यकलाप बहुत सीमा तक संकुचित हैं। वन्ध्यात्व के केस काफ़ी बड़ी संख्या में हैं और उनकी चिकित्सा में बहुत द्रव्य अपेक्षित होता है। यदि इस व्यय का एक छोटा-सा अंश भी देने के लिए निर्धन ग्रामवासियों को कहा गया तो योजना असफल हो जायगी।

अतिरिक्त कर्मचारी तथा अतिरिक्त साधन मिलने से अधिक काम हो सकता है। चितौरा के उपकेन्द्र की भाँति कई उपकेन्द्र खोले जा सकते हैं। एक सचल कृत्रिम गर्भाधान सेवा यूनिट एक निधि होगी। परन्तु इस सब के लिए और अधिक द्रव्य अपेक्षित है।

पशु चिकित्सा सहायता—सा. वि. यो. कोष से दुद्धी के पशु अस्पताल को भली-भाँति साधनपूर्ण कर दिया गया है। ग्रामसेवकों को वितरणार्थ औषधियाँ तथा पशुरोगों से रक्षा के लिए पशुओं को टीका लगाने के साधन दिए गए हैं।

सुल्तानपुर में कृ. ग. योजना—दुद्धी के कृ. ग. केन्द्र में आने के पूर्व वेटेरिनरी अफ़सर ने सुल्तानपुर केन्द्र में काम किया था जहाँ कृ. ग. कार्य का विरोध दुद्धी से अधिक था। सुल्तानपुर में कृ. ग. केन्द्र १९५२ में स्थापित हुआ था। परम्परागत दूध देने वाले घोसियों ने योजना का प्रबल विरोध किया। केवल दूध के व्यापार में दिलचस्पी के कारण उनके पास पंजाब की हरियाना और साहीवाल नस्लों जैसी दूध देने वाली गायों की नस्लें थीं। परन्तु अपने पशुओं की नस्लों की उन्नति से उन्हें कोई मतलब न था। इसके विपरीत वे बछड़ों-बछियों को दूध और चारे से वंचित रखते थे जिसके फलस्वरूप वे बहुधा कुपोषणजनित रोगों से मर जाती थीं। जब गायों का दूध देना घटने लगता तो वे उन्हें बदल कर नई गायें लाते। उनका एक-मात्र स्वार्थ दूध से था और इसके लिए उन्होंने अदूरदर्शी नीति का अनुसरण किया। उन्होंने एक सहकारी समिति संघटित की थी जो पशु मोल लेने में उनकी सहायता करती थी। अप्रत्यक्ष रूप से बनियों की गायें और भैंसें भी उनके अधीन थीं क्योंकि उन्हें बरदाने के लिए बनियों को घोसियों पर निर्भर रहना पड़ता था।

जब कृ. ग. केन्द्र ने कार्य आरम्भ किया घोसियों के प्राय: एकाधिकार पर संकट उपस्थित हुआ। उनका व्यापार प्रत्यक्ष रूप से मन्द पड़ने लगा और वे खुल्लम-खुल्ला बिगड़ खडे हुए। उन्होंने बनियों से भी कृ. ग. योजना का बहिष्कार करने को कहा। कृ. ग. कर्मचारियों को इन दोनों समूहों के कड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। जनता को अपने पक्ष में करने के निमित्त प्रचार तथा समझाने-बुझाने की सारी युक्तियाँ व्यर्थ गई। निदान, उनकी सहकारी समिति के संचालक से बात की गई। उसका विश्वास जम गया कि उनकी अदूरदर्शी नीति के कारण राष्ट्रीय क्षति हो रही थी और उसने सोसायटी के द्रव्य को अधिक अच्छे उपयोगों में लगाने पर सहमति प्रकट की। कृत्रिम गर्भाधान के लाभ दिखलाने के लिए संचालक की गाय पर प्रदर्शन किया गया और भाग्यवश यह सफल रहा। तत्पश्चात् संचालक ने योजना को सक्रिय सहायता देने का वचन दिया। उसने घोसियों से कहा कि अब केवल आर्थिक उद्देश्यों के निमित्त उपयोग में लाने के लिए ऋण दिए जायँगे और

उसने कृ. ग. योजना के कार्य में बाधा डालने के विरुद्ध चेतावनी दी। अन्त में घोसियों को झुकना पड़ा और तब कृ. ग. योजना ने अच्छी प्रगति की।

यद्यपि कृ. ग. योजना के मार्ग में अन्य कठिनाइयाँ थीं उसे दुद्धी में इस प्रकार के प्रतिरोध का सामना नहीं करना पड़ा। वहाँ काम की प्रगति अच्छी है और यदि चारे की अच्छी पूर्ति की व्यवस्था हो जाय तो चितौरा में शीघ्र ही पशुओं की उन्नत नस्ल देखने में आएगी।

कुक्कुट विकास योजना

सभी सुविधायें उपलब्ध होने पर भी इस क्षेत्र में कुक्कुट फ़ार्म अधिक ध्यान नहीं आकृष्ट कर सके हैं। १९५६ की पशुगणना से चितौरा में केवल १४६ कुक्कुटों का पता चला था। सा. वि. यो. कुक्कुटपालन की अभिवृद्धि के लिए बहुत कुछ कर सकती है। इस उद्योग में पूँजी अपेक्षित नहीं है, अतएव यह निर्धन क्षेत्र के उपयुक्त है। कुक्कुटपालन के प्रति किसी प्रकार का धार्मिक विरोध नहीं है। इसके अतिरिक्त बहुत सारी बंजर और खुली भूमि उपलब्ध है। अतः कुक्कुटों को खिलाने या उनके आवास की कोई समस्या नहीं है। कुक्कुटों की मृत्युदर निम्न है। इसलिए कुक्कुट फ़ार्म लाभकर सहायक व्यवसाय सिद्ध होने चाहिए।

सा. वि. यो. के कार्यकलापों के एक अंग के रूप में दिसम्बर १९५४ में दुद्धी में कुक्कुट विकास योजना की स्थापना हुई। इसके अन्तर्गत पाँच गाँव थे दुद्धी, मलदेवा, रामनगर, खजुरी और बीडर। रजिस्टर्ड कुक्कुटपालकों की संख्या केवल ४९ है। प्रॉजेक्ट ने उन्नत नस्ल के २२५ कुक्कुट और १,०५० सेये जाने वाले अंडे दिए हैं। देशी मुर्गों का अन्त करने के लिए प्रयत्न किए गए और जनवरी १९५६ तक ७० देशी मुर्गे समाप्त किए गए। बहुत से साधारण रोगों की चिकित्सा के लिए ओषधियों की सुविधायें उपलब्ध की गईं। रानीखेत रोग के विरुद्ध लगभग १,१०० कुक्कुटों को टीका लगाया गया।

७५० रु. के राजकीय उपदान से पाँच कुक्कुट फ़ार्म स्थापित किए गए हैं। उपदान कुक्कुटों के रूप में तथा तार की जाली मोल लेने के लिए द्रव्य के रूप में दिया गया। और कुक्कुट विकास योजना द्वारा किया गया सारा काम यही है।

अभी भी बहुत कुछ करना शेष है। अभी अंडा-उत्पादन में वृद्धि नहीं हो पाई है। विशुद्ध नस्ल के कुक्कुटों की पूर्ति नगण्य रही है और स्टॉक का अधिकांश देशी है। देशी मुर्गी महीने में ८-१० अंडे देती है जब कि विशुद्ध नस्ल की मुर्गी २० से ५० तक। आदर्श दरबों का कोई प्रदर्शन नहीं किया गया है। यह बात वस्तुतः आश्चर्यजनक है कि एक ऐसे क्षेत्र में जो कुक्कुटपालन के विकास के लिए प्रमुख

रूप मे उपयुक्त है प्रॉजेक्ट की उपलब्धि इतनी कम रही। इस क्षेत्र के उल्लेखनीय लाभों में ये बातें हैं—कुक्कुटपालन के महत्व को जनता का स्वीकार करना, अंडों की माँग, बहुत कम रोगों का पाया जाना और प्राविधिक संदर्शन का प्राप्य होना। रिहन्द बाँध के स्थल पर औपनिवेशीकरण से कुक्कुटों और अंडों की माँग बढ़ रही है।

इन सब लाभों के होते हुए भी यदि उद्योग उन्नति नहीं करता तो जिस रीति से यह योजना चलाई गई है उसे दोषी ठहराना संगत होगा। संभवतः कुक्कुट विकास योजना को सा. वि. यो. विभाग का समुचित ध्यान नहीं प्राप्त होता। उद्योग की वर्तमान स्थिति का कभी आकलन नहीं किया गया जिससे इसकी उन्नति के उपाय निकाले जाते। एक प्रारम्भिक अन्वेषण भी यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त होता कि इस क्षेत्र में कुक्कुटपालन के विकास के लिए विशाल सम्भावनायें हैं। रिहन्द बाँध के क्षेत्र में औपनिवेशीकरण से अंडों और कुक्कुटों की माँग का बढ़ना निश्चित है। प्रॉजेक्ट द्वारा किए जाने वाले कार्य केवल ये हैं—उन्नत कुक्कुटों की पूर्ति, अंडे सेना और रानीखेत रोग के विरुद्ध टीका लगाना।

आरम्भ से ही केन्द्र में साधनाभाव रहा। अंडे सेने का यंत्र (incubator) अधिकतर बेकार पड़ा रहा। प्रथम बार प्रयुक्त होने के तुरन्त बाद यह बिगड़ गया और जनवरी १९५७ के पहले इसकी मरम्मत न हो सकी। इससे अन्य कार्यों में भी बाधा पड़ी। कुक्कुट फ़ार्म चलाने वालों को चेंगने नहीं दिए जा सके, कुक्कुट प्रदर्शन नहीं आयोजित हो सके, देशी मुर्गों का उन्मूलन नहीं हो सका। संक्षेप में, सारा विकास कुंठित हो गया। कुक्कुट उत्पादनों की बिक्री के लिए कोई सहकारी एजेन्सी नहीं है।

जनसहयोग—आरम्भ से ही कुक्कुट विकास योजना के प्रति जनता की मनोधारणा बहुत अनुकूल थी। इस विषय में यह प्रॉजेक्ट क्र. ग. योजना की अपेक्षा निश्चय ही अधिक अच्छी स्थिति में था। एक उत्साही ग्रामवासी ने ४०० रु. के व्यय पर ५० उन्नत कुक्कुटों के स्टॉक से एक कुक्कुट फ़ार्म खोला था। उसका कुक्कुट फ़ार्म गाँव में सबसे बड़ा था। वह कुक्कुट पालन की एक अल्पकालीन शिक्षा प्राप्त करने के लिए उत्सुक था, अस्तु वह कुक्कुट प्रदर्शन यूनिटों में गया। परन्तु उसका उद्योग बहुत सीमा तक अलाभकर ही बना रहा और वह इसे अब केवल एक व्यसन के रूप में देखता है। उसके कुक्कुट कदाचित् ही रोग से मरते हैं क्योंकि रानीखेत से रक्षा के लिए उन्हें टीका लगा दिया गया है। वह उन्हें मिश्रित अन्न तथा परिवार की जूठन खिलाता है। वह आदर्श दरबे के निर्माण तथा सहकारी समिति की स्थापना के पक्ष में है। उसका विचार है कि परचे बाँट कर, प्रदर्शन, प्रतियोगितायें, प्रदर्शिनी, श्रव्यदृश्यात्मक कार्यक्रम तथा कुक्कुट पालन की विधियों

पर लघुकालीन कोर्स संघटित कर तथा अन्य फ़ार्म दिखला कर प्रॉजेक्ट को प्रचार कार्य करना चाहिए। इन चीज़ों को बहुत अधिक सफलता मिली है।

सारांश में, कुक्कुटपालन एक ऐसा व्यवसाय है जिसका अनुसरण निर्धन कृषक भी कर सकता है। दुद्धी जैसे स्थान में निर्धनतम व्यक्ति भी कुछ कुक्कुट रख सकता है जिनके लिए न तो विशेष आहार अपेक्षित है न अधिक व्यय। इसके विपरीत कुक्कुटपालन आय का साधन हो सकता है।

हरिजनों, मुसलमानों, ईसाइयों और कबायलियों सभी की मनोधारणा कुक्कुट-पालन के पक्ष में है। एक ईसाई के पास सबसे बड़ा कुक्कुट फ़ार्म है। उच्चवर्ण हिन्दू भी योजना के विरुद्ध कुछ नहीं कहते।

कार्याधिकारी के विचार—कार्याधिकारी का मत है कि कुक्कुट विकास योजना में पूरा समय देने वाला एक स्टॉकमैन होना चाहिए। इस समय कुक्कुट योजना और क्. ग. केन्द्र दोनों के लिए एक ही व्यक्ति है। इसके अतिरिक्त वह कुक्कुट पालन में प्रशिक्षित नहीं है। जनता की इच्छा तथा उत्सुकता के रहते हुए भी समुचित कर्मचारियों और साधनों के अभाव में प्रॉजेक्ट अच्छा कार्य करने में असमर्थ है।

यह विचित्र परन्तु सत्य है कि क्. ग. जो आरम्भ में अग्राह्य था आज लोकप्रिय तथा सफल है जब कि कुक्कुट विकास जिसे आरम्भ में जनता का समर्थन प्राप्त था प्रायः असफल है। इसका अर्थ यह है कि किसी योजना की सफलता या असफलता जिस रीति से वह चलाई जाती है उस पर उतनी ही निर्भर है जितनी जनसहयोग पर।

चिकित्सा तथा जनस्वास्थ्य

चिकित्सा तथा जनस्वास्थ्य के क्षेत्र में सा. वि. यो. का अधिक ध्यान मिडवाइफ़ के काम और यॉज़ के नियंत्रण पर केन्द्रित रहा है। प्रॉजेक्ट की स्थापना के समय से दुद्धी, विंढमगंज और महोली की एलोपैथिक और आयुर्वेदिक डिस्पेंसरियाँ भली-भाँति साधनसम्पन्न हो गई हैं। म्योरपुर की एलोपैथिक डिस्पेंसरी योजना खंड के बाहर है, तथापि वह प्रॉजेक्ट की आवश्यकताओं की आंशिक पूर्ति करती है।

यह पाया गया कि स्वच्छ पीने योग्य जल की अपर्याप्त पूर्ति बुरे स्वास्थ्य के लिए उत्तरदायी है। कुँओं के अभाव में लोगों को विवश हो कर नदियों और नालों के जल को पीना पड़ता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए वर्तमान कुँओं की मरम्मत तथा नए कुँओं के निर्माण के हेतु लगभग ८२ गाँवों को उपदान दिया गया।

यॉज़ के विरुद्ध संघर्ष करने के अतिरिक्त सा. वि. यो. ने मलेरिया, चेचक और विशूचिका के विरुद्ध विशेष कार्यवाहियाँ की हैं।

मिडवाइफ़ का काम—प्रति वर्ष दुद्धी, विंडमगंज, झारो और बभाड़ के मिड-वाइफ़री केन्द्रों में ग्राम स्त्रियों की सेवा के निमित्त तीन या चार स्त्रियों को प्रशिक्षित किया जाता है। इन राजकीय प्रशिक्षित मिडवाइफ़ों और चमारिनों तथा स्थानीय दाइयों के अतिरिक्त दुद्धी में एक अंग्रेज़ मिशनरी महिला मिडवाइफ़ का काम करती है।

स्थानीय विश्वास एवं प्रथायें—ग्रामवासियों में गर्भ को प्रच्छन्न रखने की प्रवृत्ति है क्योंकि उनका विश्वास है कि 'नज़र' लगने से गर्भ नष्ट हो जाता है। जन्म के पूर्व की निगरानी की ओर बिलकुल ध्यान नहीं दिया जाता। प्रसवपीड़ा आरम्भ होने पर देवगण मनाए और दुष्ट प्रेत भगाए जाते हैं। कभी-कभी बलि दी जाती है और इस संकटकाल में स्त्री को कुछ शारीरिक क्रियायें करनी पड़ती हैं। शिशुजन्म के अनेक आधुनिक सिद्धान्तों का यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पक्ष है। लोगों का विश्वास है कि यह सब न करने से अनिष्टकारक प्रेत सब को नष्ट कर देंगे।

शिशु खाट पर जन्म लेता है। नवजात शिशु का नार चमारिन काटती है और छः दिन तक प्रति दिन तीन बार शिशु और उसकी माँ की मालिश करती है। छठी के उत्सव के बाद माँ और छः दिन विश्राम करती है और तब उससे घर का काम-काज दुबारा सँभालने की आशा की जाती है।

किसी केस के गम्भीर होने पर चमारिनों और गाँव की स्त्रियों के पास जाते हैं जिनमें समुचित प्रशिक्षण का अभाव होता है। स्थानीय अप्रशिक्षित दाइयाँ प्रसव की सभी प्रकार की उलटी-सीधी विधियों का सहारा लेती हैं। मिशनरी मिडवाइफ़ को तभी बुलाया जाता है जब बहुत देर हो चुकती है।

मिशनरी मिडवाइफ़—उपर्युक्त ईसाई मिशनरी एक अत्यन्त कुशल मिडवाइफ़ है और उसके पास अच्छी मात्रा में आधुनिक ओषधियाँ और इंजेक्शन रहते हैं। इसके अतिरिक्त वह लोगों के प्रति बड़ी दयालु है। अनेक माताओं और शिशुओं की प्राणरक्षा में उसके भाग को ग्रामवासी स्वीकार करते हैं। परन्तु वह अकेली इतने अधिक गाँवों की सेवा नहीं कर सकती, अतः स्थानीय दाइयों की आवश्यकता पड़ती है। आशा है कि स्थानीय दाइयों का स्थान प्रशिक्षित दाइयाँ ग्रहण कर लेंगी।

मिडवाइफ़ और उसके कर्तव्य—दुद्धी में १९५४ में प्रसूति केन्द्र स्थापित हुआ और नवम्बर १९५४ में वहाँ पहली मिडवाइफ़ नियुक्त हुई। उसके कर्तव्यों में ये आते हैं—

(१) प्रसव कराना; इसमें शिशुजन्म के पूर्व तथा बाद की निगरानी भी शामिल है।

(२) प्रसूति के विषयों में ग्रामवासियों को शिक्षित करना।

(३) शिशुओं की देखभाल तथा माताओं और शिशुओं के साधारण रोगों की चिकित्सा।

(४) साधारण केसों में प्रसव कराने के लिए स्थानीय दाइयों को प्रशिक्षित करना।

१. प्रसव कराना—गर्भ को बहुत सतर्कता से प्रच्छन्न रखा जाता है, इसलिए मिडवाइफ़ को बिरले ही केस मिलते हैं। यदि मिडवाइफ़ किसी केस को हाथ में ले तो उसे स्थानीय दाइयों और प्रसविणी माँ के परिवार दोनों का सामना करना पड़ता है क्योंकि परिवार वाले अपने रूढ़िगत अन्धविश्वासों के कारण स्थानीय दाइयों को अधिक पसन्द करते हैं। परन्तु यदि तर्क, समझाने-बुझाने या धमकी से मिडवाइफ़ कोई केस पाने में सफल हो जाती है तो उसे अन्य कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उदाहरणार्थ, यदि माँ को भ्रामक पीड़ा हो जो एनिमा देने के बाद बन्द हो जाय तो शिशुजन्म का न होना ग्रामवासियों की समझ में नहीं आता और मिडवाइफ़ के लिए उनमें विश्वास जमाना कठिन हो जाता है। कभी-कभी वे बहुत क्रुद्ध हो जाते हैं। दूसरी ओर कुछ लोग मिशनरी मिडवाइफ़ को अधिक पसन्द करते हैं क्योंकि उन्हें उसकी क्षमता पर विश्वास है। इस प्रकार राजकीय मिडवाइफ़ को विरले ही कोई केस मिलता है।

परन्तु कभी-कभी मिडवाइफ़ कुछ केस पाने में सफल हो ही जाती है और मिशनरी मिडवाइफ़ से सहयोग ले कर कार्य करती है। वह शिशुजन्म के पूर्व और पश्चात् देखभाल और असामान्य केस होने पर चिकित्सा-सम्बन्धी सहायता प्राप्त करने की चेष्टा करती है। जन्मोत्तर देखभाल के अन्तर्गत जन्म के उपरान्त वह तीन सप्ताह तक माँ और शिशु की सेवा करती है।

राजकीय मिडवाइफ़ ने जनवरी १९५५ और अक्तूबर १९५६ के बीच १३५ केस हाथ में लिए। ये केस १८ भिन्न-भिन्न गाँवों के थे। लगभग ८ केस असामान्य थे। यदि स्थानीय दाइयाँ बीच में न पड़ी होतीं तो कुछ शिशुओं की प्राणरक्षा हो गई होती।

आठ असामान्य केसों की सूचना निम्नलिखित है—

१. यह केस जपला से जुलाई १९५५ में आया। यह 'प्रोलैप्स' (prolapse) का केस था (गर्भ का उचित स्थान से आगे या नीचे खिसक जाना) जिसे ठीक से सँभाला नहीं गया। इसे मेडिकल अफ़सर के पास भेजना पड़ा परन्तु किसी न किसी कारण से गर्भ में शिशु की मृत्यु हो गई। परन्तु माँ का जीवन बचा लिया गया।

२. यह केस दुद्धी से ही सितम्बर १९५५ में आया। शिशु मृतजात था। माँ रक्त की कमी के रोग से ग्रस्त थी और पहले भी मृत शिशुओं को जन्म दे चुकी थी।

३. यह केस जनवरी १९५६ में रजखड़ से आया। यह माँ का चौथा शिशु था और वह रक्त की कमी के रोग से बहुत अधिक ग्रस्त थी। उसका गर्भ निष्क्रिय (uterine inertia) हो गया था और उसका सिकुड़ना (contraction) बन्द हो गया था। शिशु गर्भ में ही मर गया।

४. मार्च १९५६ में रामनगर से सिकुड़ी हुई श्रोणी (contracted pelvis) का एक केस आया। चिकित्सा-सम्बन्धी सहायता मिलने के पूर्व ही शिशु मर गया।

५. अप्रैल १९५६ में फुलवर में एक केस को सँभालने के लिए ऐन मौक़े पर राजकीय मिडवाइफ़ बुलाई गई। जन्म के पूर्व माँ की कोई देखभाल नहीं की गई थी। जन्म के समय भी एक स्थानीय दाई ने काम चौपट किया और मिडवाइफ़ के पहुँचने के पूर्व ही वह वहाँ से चम्पत हो गई। शिशु मर गया। माँ रक्त की कमी के रोग से पीड़ित थी।

६. जम्पानी के एक केस को स्थानीय दाइयों ने इस बुरी तरह बिगाड़ दिया था कि म्योरपुर की मिडवाइफ़ ने उसे अपने हाथ में लेना अस्वीकार कर दिया। तब माँ को दुद्धी ले गए जहाँ राजकीय डिस्पेंसरी का कार्याधिकारी उपस्थित नहीं था। अन्त में केस को मिशनरी मिडवाइफ़ और सरजू के एक स्थानीय डॉक्टर ने सँभाला। शिशु मर चुका था और गर्भ में सड़ने लगा था। फ़ोर्सेपों (forceps) से आधे घंटे में शरीर बाहर निकाला गया। परन्तु विष फैल चुका था और माँ चल बसी। वह केवल १८ वर्ष की थी और यह उसका प्रथम शिशु था।

७. सितम्बर १९५६ में दुद्धी का एक केस था जिसमें नार असाधारण रूप से बड़ा और बाहर निकला हुआ था। शिशु गर्भ में मर गया। परन्तु मिशनरी मिडवाइफ़ ने माँ की प्राणरक्षा की।

८. कोन के एक केस में गर्भ में शिशु की मृत्यु हो गई थी। जब वह स्त्री दुद्धी डिस्पेंसरी लाई गई मेडिकल कार्याधिकारी वहाँ पर नहीं था और इसलिए केस को कम्पाउंडर ने अपने हाथ में लिया। इंजेक्शनों और यंत्रों के प्रयोग से माँ का जीवन बच गया।

२. जनता को शिक्षित करना—जहाँ परम्पराओं, विश्वासों तथा अंधविश्वासों ने गहरी जड़ें जमा रखी हों वहाँ लोगों को वैज्ञानिक ढंग से सोचने के योग्य बनाना दुष्कर कार्य है। तथापि मिडवाइफ़ उस कार्य को कर रही है। वह शिशु कल्याण तथा प्रसूति-सम्बन्धी अन्य विषयों पर भाषण देती है।

३. साधारण रोगों तथा शिशु की देखभाल के लिए प्रशिक्षण—मिडवाइफ़ डॉक्टर नहीं है और उसका काम वास्तव में रोगों की चिकित्सा करना नहीं है। मिडवाइफ़ में सामान्य प्रसव कराने तथा माँ और शिशु की देखरेख की योग्यता होनी

चाहिए। इसके लिए उसे आवश्यक साधन दिए जाते हैं। मिडवाइफ़ के काम के उद्देश्यों में एक है शिशुओं के मृत्युदर को कम करना। लोगों को स्वच्छता की आदतों, उचित यौन-सम्बन्धी तथा आहार-सम्बन्धी आदतों, आदि की शिक्षा देना आवश्यक है।

४. दाइयों का प्रशिक्षण—मिडवाइफ़ को तीन या चार दाइयों को छः से नौ महीनों तक प्रशिक्षित करना होता है जिससे वे वैज्ञानिक रीति से और स्वच्छता के साथ प्रसव कराने की प्रक्रिया सीख लें। कोर्स में सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक दोनों प्रकार का प्रशिक्षण है। मिडवाइफ़ उन्हें सप्ताह में दो बार भाषण देती है। प्रशिक्षण कोर्स के समाप्त होने पर परीक्षा ली जाती है और हर सफल प्रशिक्षणार्थी को इस काम को चलाने के लिए ओषधियों का एक बक्स और दाई की एक 'किट' दी जाती है।

प्रशिक्षणार्थ केवल गाँव की स्त्रियाँ भर्ती की जाती हैं और यथासम्भव वे स्त्रियाँ ही जो परम्परा से प्रसविणी माताओं की सेवा करती आई हैं। इससे नगरों से भर्ती की गई प्रशिक्षणार्थियों को देने के लिए अपेक्षित द्रव्य की बचत होती है। इसके अतिरिक्त गाँव में आने पर नागरिक लड़कियों को निज को गाँव के अनुरूप बनाने की जिस समस्या का सामना करना पड़ता है वह भी उत्पन्न नहीं होती।

सराहनीय होते हुए भी यह नीति दोषरहित नहीं है। गाँव की दाई के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना कठिन होता है। वह साधारणतया प्राचीन विश्वासों एवं अन्ध-विश्वासों में डूबी होती है। सामान्यतः ऐसी स्त्रियों पर प्रशिक्षण का प्रभाव नहीं पड़ता और वे पुरानी रीतियाँ दुबारा अपना लेती हैं। गाँव की दाइयों के साथ सबसे बड़ी कठिनाई होती है ऐसी प्रविधियों को ग्रहण करने के लिए उन्हें समझा-बुझा कर तैयार करना जिनमें सेप्टिक होने की आशंका न रहे। उनका अकुशल ढंग से काम करना और सेप्टिक-विरोधी उपायों का अभाव बहुधा प्राणघातक सिद्ध होता है। वे गन्दे चीथड़ों या घास की जड़ों से रक्तस्राव रोकती हैं। मिडवाइफ़ प्रशिक्षण का उद्देश्य स्थानीय दाइयों के इस प्रकार के अज्ञान को दूर करना है जिससे वे अन्य स्त्रियों में ज्ञान का प्रसार कर सकें। यह एक कठिन कार्य है जिसमें अथक धैर्य तथा अध्यवसाय अपेक्षित हैं।

प्रशिक्षण केन्द्र के सम्बन्ध में मिडवाइफ़ का मत—मिडवाइफ़ के अनुसार प्रशिक्षण काल अत्यल्प ह, विशेषतया यदि उम्मीदवारों के लिए यह काम सर्वथा नया हो। उसका विचार है कि समुचित प्रशिक्षणार्थ कम से कम दो वर्ष अपेक्षित हैं। मिड-वाइफ़ को केस मिलने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है और यह कठिनाई इसलिए और भी बढ़ जाती है कि उसे तीन या चार स्त्रियों को प्रशिक्षण देना होता है। गर्भवती स्त्रियाँ उनमें किसी से निदान कराना अस्वीकार करती हैं जिसके फलस्वरूप प्रशिक्षणार्थियों को अधिक व्यावहारिक अनुभव नहीं मिल पाता।

प्रशिक्षणार्थियों के विचार—दुर्भाग्य से कुछ प्रशिक्षणार्थियों में स्वप्रेरित कार्य-क्षमता का अभाव है। उनमें कुछ ने प्रशिक्षण केन्द्रों में इसलिए प्रवेश लिया था कि उन्हें मासिक वृत्ति मिलती थी और प्रशिक्षण के बाद सरकारी नौकरी पाने की सम्भावना थी। कुछ प्रशिक्षणार्थी यह असन्तोष व्यक्त करती हैं कि प्रशिक्षण व्याव-हारिक न होकर सैद्धांतिक है। केसों का काम अपर्याप्त है। अधिक व्यावहारिक प्रशिक्षण अपेक्षित है। इसके अतिरिक्त दूसरों का विश्वास है कि प्रशिक्षण व्यय-साध्य है। कुछ का विचार है कि सभी केसों की आवश्यकतायें पूरी करने के लिए साधन यथेष्ट नहीं हैं। ऐसे उदाहरण भी हैं जिनमें ग्रामवासी नई विधियों को अस्वीकृत करते हैं जिससे दाइयाँ बलात् परम्परागत विधियों को दुबारा अपनाती हैं।

यदि प्रशिक्षित दाई को सरकारी नौकरी न मिले और वह स्वतंत्र रूप से काम करे तो उसे चमारिन के बरावर ही मानते हैं। यदि दाई उच्चवर्ण की हुई तो इससे उस प्रशिक्षित दाई की भावनाओं को ठेस लगती है। वह इस व्यवसाय को त्याग देने तक का निश्चय कर डालती है और उसके प्रशिक्षण पर व्यय किया गया द्रव्य व्यर्थ जाता है।

मिडवाइफ़ों के काम के विषय में जनता की मनोधारणा—साधारणतया लोग किसी भी नई वस्तु को संदेह की दृष्टि से देखते हैं। कभी-कभी मिडवाइफ़ के काम की नई और पुरानी विधियों में प्रत्यक्ष विरोध रहता है। कुछ ग्रामवासियों का विचार है कि सरकार इस काम पर व्यर्थ रुपया बहा रही है क्योंकि प्रशिक्षणार्थी दुर्विनीत हो जाती हैं। प्रशिक्षित दाइयाँ गाँव की दाइयों के बराबर काम नहीं करतीं। कभी-कभी जाति का प्रश्न उठ खड़ा होता है। उच्चवर्ण की प्रशिक्षित दाई निम्नवर्ण की स्त्रियों की सेवा नहीं करती। इसके विपरीत ऐसे विषयों में चमारिन भेदभाव नहीं करती। फलतः निम्नवर्ण के लोग सोचते हैं कि उच्चवर्ण की लड़की को प्रशिक्षण देने में द्रव्य का अपव्यय होता है। ग्रामवासियों की यह शिकायत है कि दाइयों को यंत्रों के पूरे सेट नहीं दिए जाते। कभी-कभी यंत्र मुरचा लगे होते हैं और ग्रामवासियों का कहना है कि किसी सरकारी अधिकारी को इन यंत्रों की परीक्षा करनी चाहिए।

अधिकांश ग्रामवासी गाँव की दाइयों को अधिक पसन्द करते हैं यद्यपि वे प्रशिक्षित मिडवाइफ़ की नवीन विधियों की श्रेष्ठता एवं अधिक कार्यक्षमता स्वीकार करते हैं। परन्तु उनका दृढ़ विश्वास है कि जीवन और मरण नए औज़ारों या पुरानी विधियों द्वारा संचालित नहीं होते वरन् ईश्वरेच्छा पर निर्भर हैं। इस प्रकार ये द्विविध बाधायें हैं। एक ओर चुनी गई कार्यकर्त्रियाँ अपने कर्तव्यों के प्रति उदासीन है और दूसरी ओर ग्रामवासी अपने पुराने विश्वासों को त्यागने को प्रस्तुत नहीं हैं। इससे काम की प्रगति में बाधा होती है।

कार्यकर्त्रियों का चुनाव—बहुत कुछ कार्यकर्ता के उत्साह तथा अभिरुचि पर निर्भर है। अतएव प्रशिक्षणार्थियों के चुनाव में बहुत सतर्कता अभीष्ट है। कार्यकर्त्रियों की कार्यक्षमता तथा जिस भावना से वे अपना काम करती हैं वह ही जनता द्वारा नई वैज्ञानिक विधियों को स्वीकार करा सकती है। चमारिनों में से ही प्रशिक्षणार्थियों को चुनने से जाति की समस्या आगे नहीं आएगी। जब तक मिडवाइफ़ के काम के पक्ष में ग्रामवासी न हो जायें तब तक यही किया जाना चाहिए।

यॉज़ नियंत्रण की कार्यवाहियाँ

विभिन्न स्थानों में यॉज़ विभिन्न नामों से ज्ञात है। बहुत दिनों से प्रचलित होने पर भी इसे यॉज़ के रूप में नहीं जानते थे न तो सा. वि. यो. की स्थापना के पूर्व इसका ठीक से सामना किया गया। यह बीमारी कबायली समूहों में पाई जाती है। विभिन्न राज्यों में यॉज़ से प्रभावित क्षेत्रों की एक लगातार 'यॉज़ पट्टी' ही है।

दुद्धी में यॉज़ का स्थानीय नाम स्वैया या धरवनियाँ है। १९५३ तक इसे एक प्रकार का रतिज रोग मानते थे और तदनुसार स्थानीय प्राविधिक कर्मचारीगण इसकी चिकित्सा करते थे। सा. वि. यो. के आरम्भ होने पर यह निश्चित करने के लिए अन्वेषण किए गए कि यह रोग यॉज़ था या नहीं। इसे पहचान कर यॉज़ ही बताया गया और चिकित्सा अधिकारियों के ध्यान में लाया गया। सा. वि. यो. ने यॉज़-विरोधी आन्दोलन चलाया।

रोग की पहचान के बाद वर्तमान वी. डी. क्लिनिक (रतिज रोग चिकित्सालय) के कार्यकलापों की परिधि को व्यापक बनाया गया और क्लिनिक ने यॉज़ की चिकित्सा तथा नियंत्रण के उत्तरदायित्व को अपने हाथ में लिया। १९५४ में क्लिनिक का पुनर्नामकरण वी. डी. तथा यॉज़ क्लिनिक हुआ। यह बात ध्यान देने योग्य और दिलचस्प है कि दुद्धी क्षेत्र में रोग की पहचान के पूर्व अन्य राज्यों में इसकी पहचान हो चुकी थी। केन्द्रीय सरकार की प्रेरणा से संयुक्त राष्ट्र के विश्व स्वास्थ्य संघटन के विशेषज्ञ परामर्श तथा आर्थिक सहायता से अन्तर-राज्य यॉज़ नियंत्रण कार्यक्रम संघटित हुआ। दुद्धी में रोग की पहचान के बाद उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से चिकित्सा अधिकारी मध्य प्रदेश के बस्तर ज़िले में, जहाँ विश्व स्वास्थ्य संघटन के विशेषज्ञ कुछ उपयोगी कार्य कर रहे थे, यॉज़ के नियंत्रण तथा चिकित्सा की नवीनतम विधियों का अध्ययन करने के लिए भेजे गए। प्राविधिक कर्मचारियों के प्रशिक्षण तथा कोष की व्यवस्था करने के उपरान्त सोचा गया था कि सा. वि. यो. के कार्यकलाप निर्बाध रूप से यॉज़ का सामना कर सकेंगे।

जनसहयोग—यह दुःख की बात है कि यॉज़-विरोधी आन्दोलन अधिक प्रगति न कर सका क्योंकि जनसहयोग निराशाजनक था। एक कारण तो यह था कि सर्वाधिक पीड़ित रोगी कबायलियों का क्लिनिक तक पहुँच पाना बहुत कठिन था। दूसरे, लोगों को चिकित्सा ही के विरुद्ध पूर्वाग्रह था और वे यॉज़नाशक सुइयाँ लगवाने को तैयार न थे। अंधविश्वासों में डूबे होने के कारण कबायलियों का आधुनिक ओषधियों में तनिक भी विश्वास न था। इन अड़चनों के अतिरिक्त कुछ असत्य सूचना फैला दी गई थी कि सरकार किसी अन्य उद्देश्य के हेतु युवा तथा स्वस्थ पुरुषों का रक्त ले रही है और स्त्रियों को छेड़ा तथा उनके गुप्तांगों में इंजेक्शन लगाया जाता है। इस प्रकार काम ठप पड़ गया।

तब यह निश्चय किया गया कि एक सचल यूनिट स्थापित करनी चाहिए जिसमें चिकित्सा-सम्बन्धी सहायता सरलता के साथ रोगियों को पहुँचाई जा सके। तद-नुसार तीन-तीन व्यक्तियों के चार दल विभिन्न क्षेत्रों में काम करने के लिए बनाए गए। इन सचल यूनिटों के अलावा विंढमगंज, म्योरपुर और दुद्धी में डिस्पेंसरियाँ खोली गईं। ये अचल डिस्पेंसरियाँ सचल यूनिटों के सहयोग को ले कर काम करती थीं।

नई चिकित्सा के विरुद्ध पूर्वाग्रह को नष्ट करने के लिए बहुत अधिक सूचना तथा प्रचार कार्य भी हुआ। तब सघनतर तथा अधिक प्रभावजनक कार्य सम्भव हो सके। अब इस क्षेत्र में यह रोग नियंत्रित हो गया है।

चितौरा गाँव और बीमारियाँ

पहले कह चुके हैं कि मिर्ज़ापुर ज़िले की दुद्धी तहसील के मुख्य कार्यालय से लगभग एक मील की दूरी पर यह गाँव स्थित है। इसमें लगभग ८३६ व्यक्ति हैं जिनमें ब्राह्मण, ठाकुर, बनिया, हरिजन और कुछ कबायली हैं। ब्राह्मणों और ठाकुरों का अपेक्षाकृत धनी तथा भूस्वामी वर्ग है जब कि शेष अधिकतर भूमिहीन श्रमिक हैं।

रोगों का सही-सही चित्र प्रस्तुत करना कठिन है क्योंकि गाँव में कोई चिकित्सा केन्द्र नहीं है जहाँ से सूचना प्राप्त की जा सके। निकटतम अस्पताल दुद्धी में है। अस्पताल में कोई महिला चिकित्सा अधिकारी नहीं है, अतः स्त्रियाँ बहुत कम आती हैं।

सभी वयस्-समूहों के लगभग ६०० व्यक्तियों की परीक्षा हुई। उनमें ७८ लोग किसी न किसी सक्रिय रोग से पीड़ित पाए गए। ७८ रोगियों में ४९ पुरुष और २९ स्त्रियाँ थीं। सामान्यतः रोगी उच्चतर वयस्-समूहों, १५ से ६० वर्ष के थे। निम्न-तर वयस्-समूहों में कम ही रोगी पाए गए और १-५ वयस्-समूह में केवल कुछ ही

केसों का पता चला जैसे 'एक्सटर्नल ओटाइटिस' (external otitis) का एक केस, पेचिश और बढ़े यकृत के ५ केस और 'मेरेस्मस' (merasmus) के २ केस।

इस क्षेत्र में उच्चतर वयस्-समूहों में सर्वसाधारण प्रचलित रोग रतिज रोग हैं। वे उपदंश, गोनोरिया और यॉज़ के रूप में पाए जाते हैं। प्रायः ५० प्रति शत रोगियों ने पूछे जाने पर या तो गोनोरिया या उपदंश का पुराना इतिहास बतलाया परन्तु उनमें केवल ७ सक्रिय केस थे और ४ को केवल गोनोरिया था। निरक्षर तथा निर्धन लोगों में रोगों की जाँच करने में कुछ व्यावहारिक कठिनाइयाँ भी होती हैं। यह बात विशेष रूप से लागू तब होती है जब रतिज रोगों की जाँच करनी हो। अधिकांश लोग तथ्यों को छिपाते हैं और कदाचित् ही किसी केस का पूर्ण इतिहास अन्वेषक को बतलाया जाता है। रक्त परीक्षण तथा अन्य अणुवीक्षणीय परीक्षाओं के निमित्त आवश्यक साधनों के पूर्णाभाव में बिलकुल ठीक-ठीक चिकित्सा-सम्बन्धी विवरण अप्राप्य हैं।

गोनोरिया भी गोनोरियल आर्थ्राइटिस (Gonorrhoeal arthritis) के प्रकट रूप में देखा गया। शरीर तथा जोड़ों में पीड़ा भी, जिसकी आम शिकायत है, इसी रोग के कारण बतलाई जाती है।

स्त्रियों में श्वेत प्रदर, मासिक विकार तथा वन्ध्यात्व अति साधारण हैं। प्रायः हर दो स्त्रियों में एक को इनमें से कोई एक कष्ट है और विस्तृत पूछताछ से निश्चित किया गया कि इनमें अधिकांश केस या तो उपदंश या गोनोरिया की माध्यमिक अभिव्यक्तियाँ थीं।

यॉज़ भी, जो बहुत भयंकर रोग ह, अत्यन्त व्यापक रूप से प्रचलित था। परीक्षा किए गए व्यक्तियों में कतिपय ने अपने रोग का पुराना इतिहास बतलाया। परन्तु सरकार द्वारा यॉज़निर्मूलक कार्यवाहियाँ करने तथा दुद्धी में एक यॉज़निर्मूलक केन्द्र खुलने के बाद इसकी गति ह्रास पर है।

इस क्षेत्र में मलेरिया भी एक भयंकर रोग था परन्तु सरकार द्वारा मलेरिया-नाशक कार्यवाहियाँ करने के बाद यह पर्याप्त रूप से नियंत्रित है और मलेरिया के आक्रमणों से पीड़ित केवल ८ रोगियों का पता चल सका।

बहुत पुराने ब्रांकाइटिस (bronchitis) और दमे के रूप में पर्याप्त संख्या में श्वास रोगों के केस भी देखे गए। उनका एकमात्र कारण जलवायु को बतलाया जा सकता है। अन्य केस चर्मरोगों, कुष्ट, मोतियाबिन्द और पेट और अँतड़ियों के रोगों के पाए गए।

रोगों का एक सम्पूर्ण चित्र नीचे दिया जा रहा है—

रोग	पुरुष	स्त्री
नेत्र-मोतियाबिन्द के ६ केस और बेंत (refractory error) के २ केस	४	४
कान (Ext. otitis)	२	—
श्वास प्रणाली (मुख्यतः पुराना ब्रांकाइटिस)	३	२
पेट और अँतड़ियाँ (मुख्यतः गैस्ट्रिक अल्सर, पेचिश)	५	—
आर्थ्राइटिस	६	४
शरीर में पीड़ा	१३	२
चर्म (उकवत)	३	—
कुष्ट	१	—
मलेरिया (पुराना)	३	५
सक्रिय रतिज रोग (गोनोरिया के ४ केस)	७	—
मेरेस्मस	२	—
स्त्रियों के रोग	—	१२
	४९	२९

परिशिष्ट

जैसा उल्लेख किया जा चुका है चितौरा में अस्पताल नहीं है। परन्तु चितौरा से एक मील से कम पर स्थित दुद्धी में एक राजकीय अस्पताल है। चितौरा के रोगी अधिकतर चिकित्सार्थ दुद्धी अस्पताल में जाते हैं। अतएव दुद्धी अस्पताल के अभिलेखों से चितौरा के रोग-सम्बन्धी आँकड़े गिनना काफ़ी आसान होता यदि अस्पताल के रजिस्टर में ग्राम न्यास लिखे गए होते। परन्तु अस्पताल में ऐसा कोई अभिलेख नहीं है, इसलिए चितौरा के रोग-सम्बन्धी आँकड़े ठीक-ठीक देना कठिन है।

परन्तु हमने दुद्धी अस्पताल से पूरे एक वर्ष के रोग-सम्बन्धी आँकड़े संग्रहीत किए हैं जिनकी तालिका निम्नलिखित है। ऐसा देखा जायगा कि चितौरा में प्रचलित रोग वस्तुतः उस पूरे क्षेत्र में व्यापक रूप से फैले हुए हैं.जहाँ से रोगी दुद्धी अस्पताल में आते हैं।

दुद्धी डिस्पेंसरी में १९५८ में चिकित्सा किए गए साधारण रोग

रोग	संख्या
क्षय	७९
टाइफ़्वाएड	२५
पेचिश	१,४००
गला	१८०
इरिसिपेलस (Erysipelas)	३
सेप्टिकेमिया (Septicaemia)	२
डिफ़्थीरिया (Diphtheria)	४
काली खाँसी	४१०
मेनिंजाइटिस (Manengitis)	३
कुष्ट	११
टेटेनस (Tetanus)	३
ऐंथ्रैक्स (Anthrax)	५१
पोलियोमाइलाइटिस (Policmyelitis)	२
चेचक और मीज़िल्स (Measles)	१३
मलेरिया	७८१
रैबीज़ (Rabies)	११
हेपेटाइटिस (Hepatitis)	५
फ़ाइलेरिया	१९
ऐंकिलोस्टोन्सोर्स (Ankylostonsors)	१५
पैरासाइट इन्फ़ेक्शन (Parasite infection)	२६
थाइरोटॉक्सिकोसिस (Thyrotoxicosis)	७
रिकेट्स और हड्डियों के रोग (Rickets and osteomalais)	२४०
वात (Gout)	६०
रक्तक्षीणता (Anaemia)	८७६
नेत्ररोग	१,७४८
श्वास के इन्फ़ेक्शन	३,०१२
दाँत और मसूड़े	१,१०४
पेट और अँतड़ियों की प्रणाली	२९०
लिंग-मूत्रीय	३७

चर्म	७२२
आर्थ्राइटिस–स्त्रीरोग	१९

रतिज रोग अस्पताल, दुद्धी, में १९५८ में रतिज रोगों के लिए चिकित्सा किए गए रोगियों की संख्या

	पुरुष	स्त्री
प्रारम्भिक उपदंश	४०	३२
प्रच्छन्न उपदंश	४४	—
लिंग-मूत्रीय (गम्भीर केस)	१०७	१००
लिंग-मूत्रीय (पुराने)	३०	१२

द्वादश अध्याय

सुधार आन्दोलन

ग्रामवासियों के जीवन को आध्यात्मिक, मानसिक एवं शारीरिक स्तर पर उन्नत बनाने की चेष्टा में सरकार के अतिरिक्त अन्य एजेन्सियाँ भी गाँव में काम करती रही हैं और अब भी कर रही हैं। एक गोंड महिला के, जो स्थानीय रूप से देवी के नाम से विख्यात है, सुधार आन्दोलन ने मानों चितौरा और दुद्धी में एक मूक क्रांति कर डाली थी परन्तु देवी का प्रभाव समाप्त हो जाने और उसके अभिप्राय में सन्देह उत्पन्न हो जाने से आन्दोलन की गति धीमी पड़ गई। दुद्धी में एक ईसाई मिशन है जिसे एक आयरिश पादरी और एक अंग्रेज़ मिडवाइफ़ अभी भी चला रही हैं। वे सारे ग्रामवासियों और विशेषकर इस क्षेत्र के ईसाइयों की आवश्यकताओं को पूरी करते हैं।

देवी का कार्य

देवी लगभग ५० वर्ष की विवाहिता स्त्री है। भूतपूर्व सरगूजा राज्य के एक दूरस्थ गाँव की वह निवासिनी है और माझी कबीले की है। उसका पति जीवित है और उसकी कई सन्तानें हैं। उसके परिवार में उसकी सास भी है। कहा जाता है कि वह पतिव्रता तथा एक स्नेहमयी माँ है। किसी अन्य गोंड स्त्री के समान ही उसका जीवन सरल है। वह अशिक्षिता है तथा बघेलिया हिन्दी के अतिरिक्त अन्य कोई भाषा नहीं बोल सकती। वह कट्टर विचारों की भक्त हिन्दू है। वह चाहती है कि हिन्दू सच्चे धर्म तथा सम्यक् जीवन के मार्ग को दुबारा अपनायें जिसे वे भूले हुए प्रतीत होते हैं। उसे वेदों-उपनिषदों का ज्ञान नाममात्र को भी नहीं है। उसकी सुधारधारा पूर्णतः कट्टर पौराणिक धार्मिक विचारों तथा कबीर और मीराबाई सदृश विभिन्न मध्ययुगीन सन्तों के प्रभाव पर आधारित है। वह सादे वस्त्र पहनती तथा स्वच्छता पर आग्रह करती है।

निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि कैसे और क्यों देवी ने सुधारिका बनना पसन्द किया। सम्भवतः उसकी प्रेरणा इतनी बलवती थी कि उसे तब तक शांति नहीं मिलती जब तक वह इस क्षेत्र के कबायलियों और सवर्ण हिन्दुओं दोनों को सुधारने के लिए यथासम्भव काम न कर डालती। एक किंवदन्ती के अनुसार जिसमें जनविश्वास है १९५१ में जब अकाल की स्थिति व्याप्त थी, एक दिन कुछ स्त्रियों के साथ खाद्य जड़ों, पत्तियों और खुखुड़ियों (कुकुरमुत्तों) के संचय के लिए देवी वन में

गई। ज्ञात नहीं कि अन्य स्त्रियों के हाथ क्या लगा किन्तु देवी को केवल कुछ पत्तियाँ और तीन खुखुड़ियाँ मिलीं जो उसके बड़े परिवार के लिए अपर्याप्त थीं। दुःख, भूख और थकान के आगे उसने घुटने टेक दिए और रोती हुई वह एक चट्टान पर (कुछ लोगों के कथनानुसार रजमीबन नदी की धारा के समीप) लेट गई। पूर्णतया क्लान्त होने के कारण वह निद्रा की गोद में चली गई और उसने एक ज्योनि देखी। कुछ ऋषिगण उसके समक्ष प्रकट हुए। उन्होंने उससे क्रन्दन वन्द करने को कहा और उसे एक मुट्ठी अन्न दिया जिसे घर की भीतरी कोठरी में रखने का उसे आदेश दिया गया। कुछ लोगों के अनुसार उसे कोई उपहार नहीं मिला था। ऋषियों ने उसे आदेश दिया कि तुम आगे आओ और लोगों का सुधार आरम्भ करो। एक अन्य किंवदन्ती के अनुसार जब वह वन में जड़ी-बूटियों का संचय कर रही थी उसकी भेंट एक साधु से हुई जिसने उसे मुट्ठी भर अन्न दिया जो किसी भांड में रखने पर उसे सदा पूर्ण रखता। इसके अतिरिक्त साधु ने कबायली लोगों को और विशेपकर माझी कबीले को स्वच्छ जीवन तथा अशुचिता से बचने की शिक्षा देने के लिए उसे आज्ञा दी।

वन से लौटने पर देवी ने ऋषियों की शिक्षाओं का पालन आरम्भ किया। वह नियमित रूप से स्नान करती, प्रातः-सायं कुछ समय पूजा में लगाती, उसने मांस-मदिरा का त्याग कर दिया और शुद्ध तथा सम्यक् जीवन के गुणों पर अपने परिवार वालों का विश्वास जमा दिया। उसने अपने पुराने और गन्दे बर्तन फोड़ डाले और फेंक दिए और वह नए बर्तन ले आई। प्रतिदिन वह रसोई और घर की सफ़ाई करती। उसकी नई जीवनविधि ने तत्काल उसके निकटवर्ती कबायली लोगों का ध्यान आकर्षित किया और वे यह जानने को उत्सुक थे कि उसने क्यों और कैसे अपना यह नूतन कर्तृत्व धारण किया था। पर्याप्त लोग उसकी प्रार्थनाओं में सम्मिलित हो गए और अन्य जन उसके अनुयायी बन गए। बहुधा वह कीर्तन कराती जिनमें विशाल जनसमूह एकत्रित होता। इस प्रकार महत्वहीन देवी आध्यात्मिक नेत्री तथा ओजस्विनी समाज सुधारिका के रूप में परिवर्तित हो गई।

देवी की महानता चितौरा में यथेष्ट पूर्व १९५१ में ही विदित हो गई थी। उस वर्ष गोविन्दपुर में एक मेला लगा जिसमें दूर-दूर से सहस्रों लोग आए। चितौरा का मंगल माझी इस मेले में गया और उसने देवी के दर्शन की कामना की। उसने उससे भेंट की और उसे कबायलियों और अकबायलियों दोनों के द्वारा पूजी जाते देखा। मंगल माझी ने उसका शिष्य बनने की अन्तःप्रेरणा अनुभव की और शिष्य हो भी गया। देवी अपने अनुयायियों के साथ गाँव-गाँव घूमती और हर गाँव में प्रार्थना सभायें और कीर्तन कराती। उसकी ख्याति सभी समीपवर्ती परगनों यथा

सरगूजा, बड़हर, विंढमगंज, सिंगरौली, म्योरपुर, राबर्ट्सगंज, अगोरी, पलामू, इत्यादि तथा समग्र दुद्धी तहसील में फैल गई। अपने प्रतिभासम्पन्न व्यक्तित्व के कारण वह जनता के मस्तिष्क पर अधिकार जमा सकी। लोगों का विचार था कि उसने जो आध्यात्मिक ऊँचाई प्राप्त कर ली थी उससे ही यह शक्ति उद्भूत है। वहुधा देवी अभियान करती है और ऐसे अवसरों पर विशाल संख्या में नर-नारी कीर्तन करते हुए उसका अनुगमन करते हैं। जिन गाँवों में उसकी ख्याति सुप्रतिष्ठित है उसके सम्मान में एक-एक 'चबूतरा' बन गया है। चितौरा में उसका चबूतरा एक बाग में है और हर वृहस्पतिवार को उसके सम्मान में कीर्तन होता तथा दीया जलाया जाता है।

उसके जीवन के कुछ निश्चित नियम हैं और वह हिन्दुओं और कबायलियों में उनका प्रचार करना चाहती है। उसकी शिक्षायें हैं — सब के प्रति दयालु तथा स्नेहपूर्ण रहो। ईमानदार बनो। प्रातः-सायं पूजा-भक्ति में कुछ समय लगाओ। केवल निरामिष आहार ग्रहण करो। किसी प्राणी, विशेषकर अहानिकर प्राणियों को हानि मत पहुँचाओ न मारो। मदिरा या अन्य किसी मादक पदार्थ का सेवन मत करो। धार्मिक जीवन बिताओ। एक बार एक पुरुष को साँप मारते देख कर वह उसके पास गई और उसने उससे ईश्वर के प्राणियों को नष्ट न करने का अनुरोध किया। उसकी विनती तथा विनम्रता से उस पुरुष की आँखों में आँसू आ गए और उसने फिर कभी किसी प्राणी को हानि न पहुँचाने का वचन दिया।

अपनी शिक्षाओं में उसने मदिरासेवन की बुराइयों पर बल दिया। इस सम्बन्ध में दिसम्बर १९५३ में एक रोचक घटना घटी जब दुद्धी में एक राज्य मंत्री आए हुए थे। उस समय देवी चितौरा में उसके निवासियों को सुधारने के हेतु अपना आन्दोलन चला रही थी। उसके कुछ अनुयायियों तथा प्रशंसकों ने उससे कहा कि उसे मंत्री से मिलने के लिए नहीं जाना चाहिए वरन् मंत्री को उसके पास आना चाहिए। उसने उत्तर दिया, "इसमें प्रतिष्ठा की कोई बात नहीं है। मैं उनसे कोई कृपा नहीं चाहती। यदि वह यहाँ नहीं आते तो मुझे उनके पास अवश्य जाना चाहिए।" परन्तु मंत्री महोदय उससे मिलने आए। कुछ देर बाद देवी ने उनसे कहा, "दाऊ, भट्ठी तोड़ दे।" इस पर मंत्री ने उत्तर दिया, "देवीजी, आप मद्य के विरुद्ध अपना आन्दोलन चलाती रहें तब भट्ठी स्वतः बन्द हो जायगी।" इस निराशाजनक उत्तर को सुन कर उसने कहा, "आप चाहते हैं कि मैं आजीवन मद्य के विरुद्ध लड़ती रहूँ। मैं वैसा ही करूँगी।" अपने शब्दों के अनुसार उसने वस्तुतः मद्यपान के विरुद्ध कम से कम अस्थायी रूप से सफल संघर्ष चलाया।

देवी पारिवारिक जीवन का बहुत आदर करती है। इस विषय पर बोलते हुए उसने उद्‌बोधित किया कि वे अपने पतियों का आदर और पूजा करें क्योंकि स्त्री के लिए पति पृथ्वी पर ईश्वर का 'रूप' या प्रतीक है। पतियों को अपनी ओर से पत्नियों को देवियाँ समझना चाहिए और उनके साथ रुखाई या अन्याय का व्यवहार नहीं करना चाहिए। पत्नी गृहलक्ष्मी है और गृहलक्ष्मी के अभाव में मनुष्य का जीवन न केवल अपूर्ण वरन् रिक्त भी है और पुरुष पत्नी के समर्थन तथा प्रोत्साहन के बिना वस्तुतः धार्मिक तथा भक्तिपूर्ण जीवन नहीं व्यतीत कर सकता। पुरुष और उसकी पत्नी में मानसिक एकता अनिवार्य है क्योंकि मोक्षप्राप्ति के हेतु घर में सामंजस्य अत्यन्त आवश्यक है।

उसकी बातें सरल और प्रत्यक्ष होती थीं और वह सरल ग्रामीणों के हृदयों को स्पर्श करने वाले दृष्टांतों का प्रयोग करती थी। उदाहरणार्थ, वह सूर्य की ओर संकेत कर के कहती, "सूर्य तुम्हारा किसी प्रकार ऋणी नहीं है, तथापि संसार में इतने सारे जीवन और आनन्द का हेतु है। तुम क्यों नहीं प्रति दिन भोर में उठ कर ऐसी अलौकिक वस्तु के रचयिता की स्तुति करो? तुम क्यों ऐसा नहीं करते? इसका कारण मात्र कृतघ्नता नहीं है? यदि तुम ईश्वर को उसके उपहारों के उपलक्ष्य में धन्यवाद तक नहीं दे सकते तो तुम्हारे जीवन कैसे शुद्ध एवं सुखी होंगे?" ऐसी बातों का श्रोताओं पर अच्छा प्रभाव पड़ता था।

प्रार्थना सभायें

जब वह चितौरा में थी तो अन्य गाँवों के समान यहाँ अपने चबूतरे पर प्रार्थना सभायें करती थी। प्रार्थना सभाओं में चबूतरे पर राम, कृष्ण और गाँधी के चित्र रखे जाते थे। जब प्रार्थना होती थी तो काषाय वस्त्र धारण किए देवी सूत कातती बैठी रहती थी। उसका पुरोहित हवन करता था। कभी-कभी श्रोतागण ढोलक, मृदंग, मँजीरा और करतलध्वनि के साथ गाँधी और कृष्ण के सम्बन्ध में गीत गाते थे। प्रार्थना सभाओं में देवी कभी प्रवचन नहीं करती थी वरन् गिने-चुने शब्दों में आदेश मात्र देती थी यथा 'झूठ मत बोलो' या 'मद्यपान मत करो'। कीर्तन मंडलियाँ कभी-कभी ३–४ घंटों तक जमतीं और ग्रामवासी उनमें उत्साहपूर्वक भाग लेते। रात्रि की नीरवता में गीत २–३ मील दूर तक सुनाई देते थे।

शिविर

देवी ने विस्तृत रूप से भ्रमण किया और दुद्धी क्षेत्र में कई स्थानों पर शिविर लगाए। दुद्धी में पहली बार वह १९५१ में आई जब उसने बरडीहाँड़ में शिविर लगाया। वहाँ वह केवल एक रात रही। विशाल जनसमूह उपस्थित था।

१९५२ में लकड़ा बाँध पर शिविर लगा और एक सप्ताह तक चला। दैनिक कार्य-क्रम के प्रमुख अंग थे कताई, प्रार्थना, कीर्तन, हवन, सूतदान और खद्दरदान। इस क्षेत्र में तीसरा और अंतिम शिविर भी लकड़ा पर ही लगा और लगभग चार दिन चला। इस शिविर का मुख्य उद्देश्य मद्य के विरुद्ध आन्दोलन करना था। भट्ठियाँ बन्द करने की माँग थी। इसने दस सहस्र से अधिक जनसमूह को आकृष्ट किया। अधिकारी डरे कि स्थिति नियंत्रण के बाहर जा सकती है और आवश्यक होने पर आन्दोलन के नेताओं को बन्दी बनाने की आज्ञा निकाली गई। आन्दोलनकारियों ने भट्ठियों तक अभियान किया और उन्हें बन्द करने की माँग करते हुए नारे लगाए। पुलीस स्थान का पहरा कर रही थी। परन्तु कोई दुःखद घटना न घटी।

देवी

निस्सन्देह अपने सुधार कार्य के प्रति देवी बहुत सच्ची थी। अनेक लोगों का कहना है कि "उसका मुख दैवी ज्योति से चमकता रहता था"। वह प्रशांत आत्म-विश्वास के साथ हलके स्वर में बोलती थी। अपने उपदेशों में भी वह सदा नपे-तुले शब्दों में बोलती। उसके प्रवचन संक्षिप्त होते थे और उसके उत्साही अनुयायी ही देर तक बोलते। उसके प्रति प्रत्येक कबायली हृदय में आस्था एवं विश्वास की मात्रा इतनी बढ़ी कि लोग अपने सभी कष्टों को उसके सामने रखने लगे। हर कोई उसके दर्शन तथा उसे सुनने के लिए उत्कंठित रहता था।

ग्रामवासी उसका इतना अधिक आदर करते थे कि उसके अनुयायी, जो उसके विश्वासों के प्रचार के हेतु उसके साथ काम करते थे, लोगों के अज्ञान का अनुचित लाभ उठाने लगे और उन्होंने देवी को वास्तव में देवी बना दिया। यह दिखाने के लिए उसके विषय में किंवदन्तियाँ गढ़ी गईं कि उसमें दैवी गुण तथा अलौकिक शक्ति है। जिन किंवदन्तियों का प्रचार हुआ उनमें कुछ ये थीं कि वह बाघ की माँद में जा कर अक्षत लौट सकती थी, बाढ़ आई हुई नदी बिना किसी सहायता के पार कर सकती थी और किसी भी रोग को अच्छा कर सकती थी। उसके अनुयायियों ने यहाँ तक प्रचार किया कि वह मृतक को जीवन प्रदान कर सकती थी। कुछ ने उड़ाया कि उसके नामजप से ही परिवार को सुख-समृद्धि प्राप्त हो सकती है। एक बार चल पड़ने पर ये किंवदन्तियाँ शीघ्र ही अग्निशिखा की भाँति व्याप्त हो गईं। दर्शकों और इन सभाओं में भाग लेने वाले अन्य लोगों को ऐसी अविश्वसनीय कहानियाँ सुनाई गईं कि वे उसकी आध्यात्मिक शक्ति पर विस्मय करने लगे। यह कहा गया कि एक गोंड के पास शराब की एक बोतल थी। वह शराब पीनी चाहता था किन्तु उसने ज्यों ही बोतल खोली उसके अन्दर का पदार्थ रक्त में

परिवर्तित हो गया। एक अन्य कबायली, ऐसी सूचना दी गई, प्रार्थना सभा में मछली खा कर आया था। प्रार्थना के समय उसने जीवित मछली उगल दी। इन सब कहानियों पर लोग विश्वास करने लगे और शीघ्र ही देवी को वस्तुतः देवी मान कर लोग उसकी पूजा करने लगे। चितौरा में और अन्य गाँवों में भी उसके चबूतरे अभी भी विद्यमान हैं।

देवी जहाँ भी गई वहाँ ग्रामीण जनता पर उसका महान प्रभाव पड़ा। हर स्थान पर उसे धार्मिक नेत्री तथा सन्त स्त्री के उपयुक्त भव्य स्वागत मिला। पुरुषवर्ग की अपेक्षा स्त्री समुदाय पर अधिक प्रभाव पड़ा। उसके अनुयायियों में सर्वाधिक गोंड थे। अनजाने ही वह गोंड समुदाय की सामाजिक नेत्री के रूप में प्रतिष्ठित हो गई। अन्य कबीले भी उससे प्रभावित हुए और उसके आदर्शों एवं शक्ति में सवर्ण हिन्दुओं तक की आस्था थी। उसकी मधुर प्रकृति, उसकी दयालुता तथा सचाई, उसकी सरलता इन सब ने उसके आन्दोलन को सफलता प्रदान करने में सहायता की।

उसकी शिक्षाओं के फलस्वरूप अनेक लोगों ने मांस-मदिरा को त्याग दिया। भट्ठियाँ सूनी हो गईं। दुद्धी परगने में झारो, कुदरी और भवर तथा सिंगरौली परगने में धरतीडाँड़, मेरारडी और गैहरवारगाँव की भट्ठियाँ बन्द कर दी गईं। निश्चय ही लाभप्रद परिवर्तन हुआ, विशेषकर कबायली लोगों में। नैतिक स्तर ऊँचा उठा और स्वच्छ जीवन की इच्छा जाग्रत हुई। अनेक कबायलियों ने अपने देवों और पूजा के रूपों को त्याग कर हिन्दू धार्मिक प्रथाओं को अपना लिया।

समय बीतने के साथ-साथ जनउत्साह घटता गया और शीघ्र ही ग्रामवासियों पर देवी अपना आधिपत्य खो बैठी। वह अब न तो वास्तविक देवी मानी जाती है न अलौकिक शक्तिसम्पन्न सन्त स्त्री तक। उसे अब लोग साधारण स्त्री मात्र मानते हैं जो कोई दूसरा अच्छा काम न होने पर अपने आदर्शों की शिक्षा देते हुए घूमा करती थी। देवी के प्रभाव के पतन के कई कारण हैं। एक बात तो निश्चित ही है कि वे नेतागण, जिन्होंने उसकी शिक्षाओं के प्रचार को अपने हाथों में लिया, स्वार्थ से प्रेरित थे। उसमें लोगों की आस्था जैसे-जैसे बढ़ती गई चालाक प्रचारकों को विभिन्न प्रकार से सरल और मूढ़ जनता का शोषण करने का सुअवसर मिला। देवी के नाम पर पैसे ऐंठने की नई योजनायें तैयार हुईं। चन्द्रिका प्रसाद ने, जो उसकी शिक्षाओं के मुख्य प्रचारकों में था और जो अब इस संघटन से लड़ बैठा है, अनेक पुस्तिकायें प्रकाशित कीं जिनमें भजन, किंवदन्तियाँ और देवी के जीवन के विवरण देने वाली घटनायें रहती थीं और हाट के दिन वह इन्हें बेचता था। बभाड़ू का निरंजन प्रसाद और अन्य लोग पुरोहित के रूप में देवी के साथ लग गए थे परन्तु उनका एकमात्र स्वार्थ

अक्षत और द्रव्य के चढ़ावों के संचय में था। जनता में लोकप्रियता प्राप्त करने के लिए कुछ कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने भी इस संघटन से सम्बन्ध जोड़ लिया था और उनके प्रयत्नों से उसकी अनुसूची में कुछ कांग्रेस आयोजित कार्यक्रम और कार्यकलाप सम्मिलित कर लिए गए। ऐसे अवसरों पर तिरंगा राष्ट्रीय झंडा प्रयुक्त होता और देवी स्वयं नियमित रूप से सूत कातती। कांग्रेस की ओर उसका झुकाव सम्भवतः इसलिए था कि उसे कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने अपने पक्ष में कर लिया, या इसलिए कि वह स्वयं महात्मा गाँधी के आदर्शों का प्रचार करना चाहती थी, या यह भी सम्भव है कि वह स्वयं राजनीतिक कार्यकर्त्री थी। कारण जो भी हों उसने अपने एक शिविर भाषण में अपने राजनीतिक झुकाव को इन शब्दों में स्पष्ट कर दिया, "यदि हम अपनी अर्थव्यवस्था को पुनरुज्जीवित करना चाहते हैं तो गाय की सर्वाधिक सेवा अभीष्ट है। बैल सुखसमृद्धि के प्रतीक हैं और हल हम कृषकों का सबसे बड़ा मित्र है। हमें हल और बैलों के इस महान प्रतीक को कभी नहीं भूलना चाहिए। उनके बिना हम जी नहीं सकते।" अपने शिविरों में सभाओं में भाषण करने के बाद वह अन्त में 'जय हिन्द' कहती। जब राजनीति की ओर उसका झुकाव हुआ तब उसके अनुयायियों में जो राजनीतिक कार्यकर्ता थे उन्होंने अपने विचारों के प्रचार के लिए अवसर का लाभ उठाया। देवी का एक अनुयायी बघाड़ू का खुशी-राम था जिसके विशुद्ध राजनीतिक उद्देश्य थे। उसका एक अन्य भक्त सर्वेण्ट्स ऑव इंडिया सोसायटी का कार्यकर्ता था जो अपने राजनीतिक सम्बन्धों के कारण सोसायटी से निष्कासित होने पर देवी के दल में सम्मिलित हो गया था। यहाँ भी उसका उद्देश्य सस्ती लोकप्रियता पाना था और जब तक बन पड़ा तब तक उसने पैसे भी बनाए। जब उसने देखा कि देवी का प्रभाव क्षीण होने लगा है और सक्रिय रूप से भाग लेने में अब उसकी स्वार्थसिद्धि सम्भव नहीं है तब उसने देवी का साथ छोड़ दिया। अब वह गोविन्दपुर आश्रम से सम्बद्ध है और उसने भूदान कार्य के लिए अपनी सेवायें स्वतः अर्पित की हैं। इस प्रकार देवी के विचारों का प्रचार करने का उत्तरदायित्व जिन नेताओं ने अपने कन्धों पर लिया था वे अधिकांशतः किसी न किसी रूप में अवसरवादी थे और किसी एक भी लक्ष्य में उनकी आस्था नहीं थी। धर्म अथवा देवी द्वारा प्रतिपादित आदर्शों के प्रचार के हेतु अनन्यभाव वाले कार्य-कर्ताओं का यह ठोस मोर्चा नहीं था अपितु विभिन्न तथा वैयक्तिक स्वार्थों एवं निजी उद्देश्यों की पूर्ति करने वाले जनों का समूह था। देवी के लिए यह अभाग्य की बात थी कि उन्होंने देवी के नाम की ओट में अपनी स्वार्थसिद्धि की। नेताओं के चुनने में देवी के सामने कोई चारा नहीं था। वह माझी कबीले की थी जिसमें उसे एक भी

कुशल नेता न मिला। साझी अधिक से अधिक केवल सच्चे अनुयायी हो सकते थे। फलतः उसके आदर्शों के प्रचार का कार्य उनके हाथों में पड़ा जिन्हें अपने निजी स्वार्थ भी सिद्ध करने थे।

जब देवी का प्रभाव पराकाष्ठा पर था कबायलियों ने अपने देवी-देवताओं को ताक पर रख दिया और वे अपनी देवी के रूप में उसकी उपासना करने लगे। देवी ने स्वयं हिन्दू धर्म अपना लिया था और वह हिन्दू पूजापद्धति की शिक्षा देती थी। वह ओझाई के विरुद्ध शिक्षा देती थी और वैदिक संस्कारों के अनुसार ब्राह्मण पुरोहितों द्वारा उत्सव सम्पन्न कराने के लिए कबायलियों को परामर्श देती थी। इससे पठरी और ओझा लोगों के व्यवसायगत स्वार्थों पर गहरा धक्का लगा और हिन्दू संस्कृति से हाल में ग्रहण किए गए और देवी द्वारा उपदिष्ट सामाजिक-धार्मिक प्रथाओं और पठरी और ओझा लोगों के जादू-धर्म विषयक संस्कारों में संघर्ष छिड़ा। कबायली पुरोहितों ने अनुभव किया कि वे अपने व्यवसायों से उखाड़ दिए गए हैं। कबायली समाज में अपने स्थान और प्रतिष्ठा को खोने के अतिरिक्त वे अब अपनी आजीविका के साधनों से वंचित हो गए थे। स्थिति गम्भीर थी। देवी के कार्यकलापों को उन्होंने अपनी मर्यादा और अधिकार के प्रति चुनौती के रूप में देखा। अतएव उन सब ने एक विरोधी मोर्चा बना कर पुरानी कबायली प्रथाओं को पुनः स्थापित करने का बीड़ा उठाया। उन्होंने देवी के प्रभाव को नष्ट करने के लिए हर प्रकार की चेष्टा की। उनके भाग्य से इस क्षेत्र की जनता पर कई विपत्तियाँ टूट पड़ीं। रोग व्यापक रूप से फैले। कबायली लोगों ने उन्हें भगाने के लिए देवी की पूजा की किन्तु जब कोई गोचर परिणाम नहीं निकले और कष्ट बढ़ते गए तब देवी में उनकी आस्था डाँवाडोल हो गई। पर्याप्त संख्या में उन्होंने अपने पुराने देवी-देवताओं की शरण ली। पठरी और ओझा लोगों के लिए जनता की भावनाओं से लाभ उठाने का यह अच्छा अवसर था और उन्होंने उनके कष्टों का मूल कारण यह बतलाया कि उन्होंने इस देवी की पूजा कर कबायली देवी-देवताओं का अपमान किया था। न केवल विभिन्न प्रकार के रोग फैले अपितु अनावृष्टि के कारण आर्थिक संकट भी उपस्थित हो गया था। प्रायः अकाल की अवस्था व्याप्त थी। कष्ट बढ़ते रहे। देवी की पूजा से कोई समाधान या उपाय दृष्टिगोचर नहीं होता था। ओझों ने नए देवी-देवताओं का आविष्कार कर नई समस्याओं के लिए नए उपाय ला खड़े किए जिससे कबायली मस्तिष्क कम से कम तात्कालिक रूप से सन्तुष्ट हो गया। ऐसे अवसरों पर देवी के आदर्शों का सरल नुस्खा पूर्ण रूप से असफल रहा। कबायली लोगों ने सोचा कि एक मुर्गे का बलि देना, एक बकरा मारना, आखेट पर जाना और

सर्वोपरि 'चिन्ता को डुबा देने के लिए' मद्यपान करना अनिवार्य है। यह देवी के आदर्शों के विपरीत था और इस प्रकार जनमस्तिष्क से उसकी शिक्षाओं का प्रभाव जाता रहा।

एक बार आस्था के हिल जाने पर सामूहिक प्रभाव के कारण देवी का प्रभाव छिन्न-भिन्न होने लगा। हर किसी ने उसके अधिकार को चुनौती दी। उसके आदर्शों पर सन्देह और आलोचना होने लगी। भाग्य ने पलटा खाया तथा इस मांसाहारी और मद्यपी समाज पर उसकी शिक्षाओं का प्रभाव मिट गया। अब मद्यपान बढ़ रहा है। मद्य के व्यसन के औचित्य में लचर दलीलें दी जाती हैं। कुछ लोगों के अनुसार दिन भर के कठिन श्रम के बाद थोड़ा-सा मद्यपान अत्यन्त आवश्यक है। कुछ यह तर्क देते हैं कि उन्हें पर्याप्त आहार नहीं मिलता, अतः मद्य आहार का पूरक है। अन्य केवल जलवायु के कारणों से मद्यपान करते हैं और कुछ-एक मद्य से मांस को पचाना चाहते हैं। प्राचीन परिपाटी से चले आ रहे दुर्व्यसन तथा नूतनोपार्जित धार्मिक भावना के संघर्ष में दुर्व्यसन की ही विजय रही।

यह स्पष्ट है कि देवी के अनुयायी और भक्त भौतिक लाभ की खोज में थे न कि किसी आध्यात्मिक उपलब्धि की। यह पूछने पर कि नई सम्माननीय रीतियाँ क्यों त्याग दी गईं, एक चितौरावासी ने उत्तर दिया, "व्यर्थ ही मैंने उसमें इतना विश्वास और उसके आदेशों का पालन किया क्योंकि मेरे खेतों में उपज अधिक नहीं हुई। व्यर्थ ही मैंने मांस और मछली छोड़ी क्योंकि मेरा परिवार अभी भी रोगमुक्त नहीं है।" निस्सन्देह उसके समान अनेक लोग हैं जिन्होंने राजमोहिनी की शिक्षाओं का पालन करने से कोई भौतिक लाभ न प्राप्त करने पर पुरानी रीतियों की दुबारा शरण ली।

स्थायी परिणाम

देवी का सुधार आन्दोलन मुख्यतः असफल रहा है किन्तु इसका एक स्थायी प्रभाव शेष है। कबायलियों पर सवर्ण हिन्दू संस्कृति के आघात ने आसंस्करण की प्रक्रिया को जन्म दिया और भासित होता है मानों देवी ने इस प्रक्रिया में विद्युत्-जैसा संचार किया हो। गोंड कबीले की होने पर भी उसने हिन्दू जीवनविधि की शिक्षा दी है तथा उसका अभ्यास किया है। इससे प्रोत्साहित हो कर अन्य अनेक कबायलिया ने हिन्दू प्रथाओं और जीवनविधि को अपना लिया है। इस प्रकार कबायलियों के सांस्कृतिक जीवन का अनुस्थापन हो रहा है जिसके फलस्वरूप प्रचलित हिन्दू धर्म की संस्कृति तथा जादू-धर्म से ओतप्रोत कबायली संस्कृति का सम्मिश्रण हो रहा है। परन्तु प्रचलित हिन्दू धर्म ने अपने प्रभाव को अक्षुण्ण रखा है और प्रतीत होता है कि उसने कबायली साँचे पर अपनी छाप जमा दी है।

ईसाई मिशन का कार्य

दुद्धी का ईसाई मिशन सभी निकटवर्ती गाँवों की सेवा करता है। इस संघटन द्वारा किया जाने वाला कार्य देवी के सुधार आन्दोलन से कई प्रकार से भिन्न है। यहाँ दो व्यक्तियों का दल काम करता है। वे हैं मिस रिगिल्सवर्थ (Miss Wrigglesworth) जो मिडवाइफ़ के काम का डिप्लोमाप्राप्त अंग्रेज़ प्रशिक्षित मिशनरी महिला हैं, और मि. लुइस (Mr. Lewis) जो आयरिश राष्ट्रीय और पादरी हैं। परन्तु कभी भी ईसाई मिशन का काम देवी के आन्दोलन के समान सफलता के शिखर पर नहीं पहुँचा। न तो देवी के आन्दोलन की भाँति यह लुप्त हुआ। दोनों में एक अन्य अन्तर यह था कि ईसाई मिशन के पास सेवा तथा समाज कार्य का एक कार्यक्रम था किन्तु देवी केवल अपने विचारों का प्रचार करती थी।

मिस रिगिल्सवर्थ सुयोग्य तथा कुशल मिडवाइफ़ हैं। वह अपने काम में भली-भाँति दक्ष हैं और ग्रामवासियों के प्रति उनकी मनोधारणा सहानुभूतिपूर्ण रहती है। प्रति दिन ग्रामवासी उनके पास प्रसव के केस सँभालने के लिए बुलाने आते हैं और वह निस्संकोच हर आमंत्रण को स्वीकार करती हैं। दूरी उन्हें नहीं थकाती, ग्रामवासियों का अज्ञान उन्हें निरुत्साहित नहीं करता वरन् वह अपने काम में निरन्तर लगी रहती हैं। अतएव यह विस्मय की बात नहीं है कि ग्रामवासी, विशेषकर स्त्रियाँ उनकी भूरि-भूरि सराहना करती हैं। उनका उल्लेख सदा 'जनता की मित्र' कह कर किया जाता है। प्रसविणी मातायें मुक्त रूप से उन्हें अपने को दिखलाती और उनके परामर्श तथा सहायता से बहुत अधिक लाभ उठाती हैं। वे उन्हें इसलिए और भी चाहती हैं कि उनकी सेवाओं के उपलक्ष्य में उन्हें कुछ देना नहीं होता। उनके पास आधुनिकतम ओषधियाँ रहती हैं जिन्हें वह सीधे इंग्लैंड से मँगाती हैं। इसके लिए भारत सरकार ने उन्हें परमिट दे रखा है। ओषधियाँ कभी कम नहीं पड़तीं। बहुत बार स्त्रियाँ मिस रिगिल्सवर्थ की देखरेख में रहना अधिक पसन्द करती हैं और नहीं चाहतीं कि उनके केस सरकारी मिडवाइफ़ या दाइयाँ लें। ऐसा अंशतः मिशनरी मिडवाइफ़ में उनकी आस्था के कारण है और अंशतः इसलिए कि सरकारी मिडवाइफ़ और दाइयाँ सदा अपने पेशे के योग्य नहीं सिद्ध होतीं। इसके विपरीत मिशनरी मिडवाइफ़ निःस्वार्थ हैं तथा अपना काम सचाई के साथ करती हैं और इसलिए ग्रामवासी स्वभावतः उनकी सहायता लेना अधिक अच्छा समझते हैं।

मि. लुइस एक अन्य प्रकार के कार्य में रत रहते हैं। वह विभिन्न गाँवों में घूमते और ईसाई धर्म के सिद्धान्तों तथा सत्य, सार्वभौमिक प्रेम एवं त्याग के सन्देश को पहुँचाते हैं। हाट के दिन या पर्वों पर जब अधिक संख्या में ग्रामवासियों के एकत्रित

होने की आशा की जाती है वह एक भारतीय ईसाई की सहायता से एक छोटी-सी दूकान खोलते हैं जिसमें वह प्रभु ईसा के शूली पर चढ़ने, ईडेन की वाटिका, विश्व की आशा सदृश बाइबिल-विषयक चित्रों के कैलेंडर रखते हैं। उनके पास हिन्दी की कई पुस्तकें भी रहती हैं यथा 'विश्व का उद्धारक', 'सच्चे शब्द', 'प्रभु यीशु के वचन', 'दैनिक जीवन', 'पर्वत पर उपदेश' तथा 'मुक्ति का मार्ग'। इसके अतिरिक्त वह अपने साथ ग्रामोफ़ोन और हिन्दी में ईसाई गीतों के रेकॉर्ड ले जाते हैं। संगीत का अपना ही आकर्षण होता है और तुरत ही उनके चारों ओर भीड़ जमा हो जाती है। तब वह अपने उपदेशों का प्रचार करते और ईसाई धर्म के मूलभूत लक्ष्यों को समझाते हैं। उनके उपदेश सरल तथा सुस्पष्ट होते हैं। निरक्षर ग्रामवासी उनके शब्दों को कितनी गम्भीरता से ग्रहण करते हैं एक दूसरी बात है परन्तु यह स्पष्ट है कि वह जो कुछ बोलते हैं उसे वे समझते हैं। यह मिशनरी जिन पुस्तकों का विक्रय करते हैं उनके मूल्य बहुत कम होते हैं, परन्तु बहुत कम लोग उन पुस्तकों को मोल लेते हैं क्योंकि निरक्षर पढ़ नहीं सकते और शिक्षित उन पुस्तकों को पढ़ना नहीं चाहते। विशेषकर दुद्धी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के छात्र मिशनरी के प्रचार कार्य के विरुद्ध हैं। उनकी शिक्षाओं के प्रति उनकी मनोधारणायें मात्र उदासीनता से ले कर वैर तक हैं। परन्तु कुछ ग्रामवासी, विशेष रूप से निम्नवर्ण हिन्दू और कबा-यली लोग, सहानुभूतिपूर्वक मिशनरियों की बातें सुनते हैं। दुद्धी के पास-पड़ोस में मलदेवा और बरईडाँड़ ये दो गाँव ईसाई धर्म के गढ़ हैं। अन्य गाँवों में भी कतिपय ईसाई परिवार हैं किन्तु धर्म-परिवर्तन दो-तीन दशाब्दियों पूर्व हुआ था। इस क्षेत्र में बलात् धर्म-परिवर्तन का एक भी उदाहरण नहीं मिलता।

त्रयोदश अध्याय

सा. वि. यो. के कार्यकलापों का सामान्य आकलन

पिछले हर अध्याय में किसी न किसी विशिष्ट योजना पर विस्तार से, विशेष रूप से उसके सम्बन्ध में जनता के विचारों को ध्यान में रख कर, विचार-विमर्श किया गया है। इस अंतिम अध्याय में समग्र सा. वि. यो. के प्रति ग्रामवासियों की मनोधारणाओं तथा सा. वि. यो. के काम और उसके कर्मचारियों के सम्बन्ध में ग्रामवासियों के सुझावों को प्रस्तुत करने का विचार है।

साक्षात्कार किए गए अनेक ग्रामवासियों के उत्तरों से सा. वि. यो. के प्रति असन्तोष तथा अप्रसन्नता की भावना की अभिव्यक्ति होती है। उन्होंने अच्छी वस्तुओं की आशा की थी परन्तु प्रतीत होता है उनके बहुत बड़े भ्रम दूर हो गए हैं जैसा साक्षात्कार किए गए चार व्यक्तियों के निम्नलिखित विचारों से पता चलता है—"अक्तूबर १९५३ के पूर्व के दिन थे। यह सुसंवाद फैला कि शीघ्र ही सामुदायिक विकास खंड आरम्भ होने वाला है। हमने सन्तोष के साथ यह देखा कि सरकार का ध्यान दुद्धी की ओर आकर्षित हो रहा है। हमने अब सोचा कि हम शीघ्र ही धनी और सुखी हो जायँगे। हम उल्लासमय थे और उत्कंठा के साथ विकास योजना के आरम्भ होने की बाट जोह रहे थे। परन्तु सा. वि. यो. का काम जब एक बार आरम्भ हुआ हमारी आशाओं पर पानी फिर गया। हमने इसकी स्थापना की पूजा की थी परन्तु हम अब इसके अस्तित्व की निन्दा करने लगे हैं।" कभी-कभी सा. वि. यो. की भर्त्सना इससे कड़ी भाषा में की जाती है।

प्रॉजेक्ट की अलोकप्रियता के कतिपय कारण हैं जिनमें एक प्रमुख कारण उसके काम की प्रकृति के विषय में त्रुटिपूर्ण धारणा है। और इस भ्रांत धारणा का मूल उन लम्बे-चौड़े वादों में हो सकता है जो प्रॉजेक्ट को ग्राह्य बनाने के लिए किए गए। लोगों ने सोचा था कि सा. वि. यो. जादू की छड़ी से उनके गाँव को 'दूध और शहद बहते हुए देश' में बदल देगी। परन्तु जब उन्होंने देखा कि पुरानी समस्यायें अभी भी बनी हुई हैं और सा. वि. यो. के अस्तित्व के बावजूद उनके पेट अधभरे रहते हैं तब उसकी उपादेयता में उनकी आस्था हिल उठी। ग्रामवासी सा. वि. यो. के उद्देश्यों और लक्ष्यों को समुचित रूप से नहीं समझ पाते और वे अभी भी पूरे हृदय से प्रॉजेक्ट को अंगीकार करने तथा उसे अपनी ही वस्तु समझने में, जो उसकी सफलता के लिए अत्यावश्यक है, अपने को असमर्थ पाते हैं।

परन्तु ग्रामवासियों के अज्ञान पर ही सारा दोष नहीं डाला जा सकता। प्रतिकूल परिस्थितियों में अच्छा काम करने पर जैसी बधाई दी जाती है वैसी बधाई सा. वि.यो. के कार्यकर्ताओं को नहीं दी जा सकती। ग्रामवासी प्रॉजेक्ट के कार्यकर्ताओं पर कतिपय आरोप लगाते हैं। इनमें से एक यह है कि क्षेत्रीय ग्रामसेवक, जिनमें चितौरा का ग्रामसेवक भी सम्मिलित है, महीनों तक अपने-अपने गाँवों में नहीं जाते। सामान्यत: ऐसा होता है कि हाट के दिन जब बड़ी संख्या में ग्रामवासी जुटते हैं, ग्रामसेवक ग्रामवासियों को विवश कर अपने दैनिक रजिस्टरों पर उनके हस्ताक्षर प्राप्त कर लेते हैं जिससे यह प्रमाणित कर सकें कि जो गाँव उन्हें सौंपे गए हैं वे वहाँ गए थे और जो काम उन्हें सुपुर्द थे उन्हें पूरा कर लिया है। प्रौढ़ पाठशाला के अध्यापक ने भी शिकायत के स्वर में नहीं अपितु बातचीत के बीच में कहा कि ग्रामसेवक काम के घंटों में एक बार भी पाठशाला में नहीं आया यद्यपि अन्य समयों पर कार्य की प्रगति के विषय में वह बहुधा अध्यापक से प्रश्न किया करता था। ग्रामसेवक अक्सर अपना समय नष्ट करते रहते हैं या निजी कामों में व्यतीत करते हैं जिसके फलस्वरूप सा. वि. यो. के काम में हर्ज होता है। यह सर्वथा सत्य है कि प्रॉजेक्ट के कुछ कर्मचारियों में सेवादर्श का पूर्ण अभाव है। उनमें कई ऐसे हैं जिनको समय काटना भी कठिन प्रतीत होता है। वे बैठकबाज़ी करते और ताश खेलते हैं, हँसी-दिल्लगी करते हैं और ग्रामवासियों के कल्याण के विषय में तनिक भी चिन्ता नहीं करते। वे श्रम के गौरव की बात अवश्य करते हैं परन्तु जब शारीरिक श्रम करने की नौबत आती है वे तटस्थ हो जाते हैं। कुछ प्रॉजेक्ट कार्यकर्ता अपने को बहुत महत्वपूर्ण व्यक्ति के रूप में प्रदर्शित करते हैं और ग्रामवासियों पर यह धाक जमाने की चेष्टा करते हैं कि वे तहसीलदार जैसे तहसील अधिकारियों के समान हैं। विंढमगंज के चिकित्सा अधिकारी का भी विचार है कि यद्यपि उप योजना कार्यकारी अधिकारी (प्रॉजेक्ट का कार्याधिकारी) एक योग्य परिश्रमी और सच्चा कार्यकर्ता है और प्रॉजेक्ट के प्रशासन की अनियमितताओं को ठीक करने का प्रयास करता है, उसके प्रयत्न प्रॉजेक्ट के अन्य कार्यकर्ताओं द्वारा, जो काहिल हैं तथा जिनका एकमात्र स्वार्थ अपनी ही उन्नत्ति में है, विफल कर दिए जाते हैं।

ग्रामवासी भी उप योजना कार्यकारी अधिकारी की सराहना करते प्रतीत नहीं होते। ग्रामवासी, जो भोर से सन्ध्या तक कठिन श्रम करते और अपने काम में बहुत अधिक परिमाण में शारीरिक शक्ति लगाते हैं, अच्छी वेशभूषा वाले किसी व्यक्ति के कार्यालय-सम्बन्धी काम के महत्व को समझने में असमर्थ होते हैं। उनका कहना है "कम वेतन वाले कार्यकर्ता साइकिल पर इधर-उधर जाते बहुधा दिखाई पड़ते हैं जब कि उच्च वेतन पाने वाले कार्यालय में आराम से कुर्सियाँ तोड़ते रहते

हैं"। इसी प्रकार उप योजना कार्यकारी अधिकारी के विषय में उनका कथन है कि वह अपनी कुर्सी से चिपका रहता है और कभी एक इंच भी कहीं नहीं खिसकता। "वह या तो फ़ाइल देखता रहता है या कलम चलाता रहता है। वह केवल लिखने में उस्ताद है। काम हो या नहीं, वह अपनी कलम की विद्या और जादू से सब कुछ ठीक कर लेता है। उसके लिखने को सरकार बहुत अधिक पसन्द करती है और वह सरकार से जितनी भी राशि चाहता है प्राप्त कर लेता है।"

इसके अतिरिक्त ग्रामवासी शिकायत करते हैं कि सा. वि. यो. को दिए गए द्रव्य और सामग्रियों का, जो केवल गाँवों में और गाँवों के उपयोग के लिए होती है, कार्यकर्तागण दुरुपयोग करते हैं। कुछ ग्रामवासी आरोप लगाते हैं कि दूसरे वर्ष अर्थात् १९५४–५५ में मलेरिया और अन्य रोगों की रोकथाम के लिए गाँवों में प्रयुक्त होने के लिए प्रॉजेक्ट को बड़ी मात्रा में डी. डी. टी. और कीड़ों को मारने के लिए अन्य ओषधियाँ दी गईं। वितरित होने के स्थान पर ये ओषधियाँ योजना कार्यालय के गोदामों में भरी पड़ी रहीं और प्रॉजेक्ट के कार्यकर्ताओं ने अपने घरों में निर्भयता के साथ उनका प्रयोग किया और अपने मित्रों तक को दिया। प्रॉजेक्ट के एक कार्यकर्ता की बेईमानी प्रकट करने के लिए उदाहरण के रूप में एक अन्य शिकायत की जाती है कि चितौरा के ग्रामसेवक को एक बार १,१०० लाह के वृक्षों पर संख्या लिखने के लिए एक ठेकेदार तय करने का काम सौंपा गया था। वह चितौरा के एक ठेकेदार से मिला जिसने कहा कि १,१०० वृक्षों पर संख्या लिखने का व्यय एक आना प्रति वृक्ष के दर से ६८ रु. १२ आ. होगा। ग्रामसेवक ने कहा कि यह बहुत अधिक है और एक अन्य व्यक्ति से, जिसे उसने छाल निकालने तथा वृक्षों पर संख्या लिखने की आवश्यक सामग्री दे दी, उसने यह कार्य करा लिया। इस व्यक्ति को केवल ३१ रु. दिए गए किन्तु उसने हिसाब में झूठ लिख दिया कि उसने १०० रु. दिया था। ग्रामवासियों के अनुसार गाँवों में दौरा करने वाले प्रॉजेक्ट के कार्यकर्ताओं में यह साधारण प्रथा प्रतीत होती है कि दौरे के भत्ते के झूठे हिसाब दिए जायँ और जो काम नहीं हुआ है उसके लिए सरकार से द्रव्य प्राप्त किया जाय। इस विषय पर कुछ ग्रामवासियों के विचार उद्धृत किए जाते हैं—"सा. वि. यो. भ्रष्टाचार, डरा-धमका कर पैसे ऐंठने और ग़बन का केन्द्र बन गई है। सा. वि. यो. के कार्यकर्ता झूठे बजट, फ़र्ज़ी रसीदें और बढ़ा-चढ़ा कर दिखाए गए व्यय के विवरण प्रस्तुत करते हैं। जब किसी विशेष अवसर पर उत्सवों का आयोजन होता है तो उन्हें रुपए बनाने के लिए स्वर्ण अवसर मिल जाता है। वे स्थानीय दूकानदारों के पास जा कर बढ़ा-चढ़ा कर दिखाए गए व्यय की रसीदें ले कर कार्यालय में जमा करते और इस प्रकार पैसे कमाते हैं।" दुद्धी एक छोटा-सा स्थान है। अधिक दिन तक कोई बात छिपी

नहीं रहती। "प्रॉजेक्ट के लोग अपनी बेईमानी के कारण बहुत बदनाम हो गए हैं। वे सार्वजनिक कोष को हड़प रहे हैं।" एक भिन्न प्रकार की कई शिकायतें प्रांतीय रक्षा दल के संयोजक के विरुद्ध मिलती हैं। ग्रामवासियों से वह भोजन या दूध लेता है और उसका मूल्य नहीं चुकाता। वह अपने नौकर को उचित वेतन नहीं देता और ऐसा दोषारोपण किया जाता है कि जब उसकी नियुक्ति महोली में थी वहाँ की स्त्रियों से उसके अवैध सम्बन्ध थे।

ग्रामवासियों के विचारानुसार अनुपयोगी अंगों पर बहुत सारे द्रव्य का अपव्यय होता है। अक्तूबर १९५५ में गाँधी जयन्ती उत्सव के सम्बन्ध में सा. वि. यो. ने कुँओं, नहाने के चबूतरों, पगडंडियों आदि के रूपादर्श (मॉडेल) तैयार कराए। ग्रामवासियों का कहना है कि २०० रु. नष्ट करने के स्थान पर ये रूपादर्श श्रमदान से तैयार कराए जा सकते थे।

१९५४–५५ में कुँयें खोदने, बंधियाँ और पुल बनाने सदृश सार्वजनिक कल्याण कार्य पर व्यय करने तथा कृषकों को तक़ावी देने के लिए भी सामुदायिक योजना के लिए ६५ लाख रुपए की राशि का नियतन हुआ। सरकार द्वारा निश्चित शर्तें ये थीं कि सार्वजनिक कल्याण कार्य के हेतु द्रव्य देने में निर्माण कार्य की पूरी लागत का दो-तिहाई ग्रामवासियों द्वारा श्रमदान के रूप में पूरा किया जाना चाहिए। श्रमदान में ईंटों का तैयार करना भी सम्मिलित था। शेष तिहाई की पूर्ति प्रॉजेक्ट द्वारा प्राविधिक श्रम तथा सीमेंट की लागत को पूरा करने के लिए होती। यदि श्रमदान द्वारा पूरे काम की लागत का दो-तिहाई पूरा न होता तो पूरी लागत के अपने अंश को पूरा करने के लिए उन्हें द्रव्य देना पड़ता। इस क्षेत्र के लोग इतने निर्धन हैं कि किसी काम की पूरी लागत के तिहाई का अनुदान भी अपर्याप्त सिद्ध होता है। तथापि वे इस उत्तरदायित्व का भार वहन करने को तत्पर थे। फलतः पंचायत द्वारा स्वीकृत गाँव के कुछ कार्यों की पूरी लागत के तिहाई के अनुदान के निमित्त ग्रामवासियों ने आवेदनपत्र दिया। छः मास से अधिक बीत जाने पर भी आवेदनपत्र योजना कार्यालय में ही पड़ा रहा जिसके बाद किसी निर्माण कार्य को हाथ में लेने के हेतु बहुत विलम्ब हो चुका था क्योंकि वर्षा ऋतु का आगमन हो चुका था और ग्रामवासी अपने खेतों में अत्यधिक व्यस्त थे। ऐसा कहा जाता है कि प्रॉजेक्ट के कुछ लोगों ने ग्रामवासियों से कहा कि यदि कल्याण के कामों के लिए स्वीकृत अनुदान से वे उन्हें कुछ देने को तैयार हों तो वे शीघ्र ही उन्हें द्रव्य दिला देंगे। उसी प्रकार तक़ावी के लिए दिए गए लोगों के आवेदनपत्र बहुत दिनों तक योजना कार्यालय में पड़े रहे और किसी ने उन पर ध्यान नहीं दिया। हड़बड़ी में उनकी जाँच की गई और सम्भवतः थोड़े-से प्रभावशाली व्यक्तियों को ही ऋण दिए गए।

यदि ग्रामवासियों के कथनानुसार वस्तुतः प्रॉजेक्ट के कार्यकर्ताओं में इतना अधिक भ्रष्टाचार और कार्य के प्रति उदासीनता है तो यह पूछना युक्तिसंगत होगा कि ग्रामवासी क्यों नहीं सा. वि. यो. के कर्मचारियों की शिकायत करते और इस प्रकार स्थिति को ठीक करने की चेष्टा करते। ग्रामवासी ऐसा इसलिए नहीं करते कि प्रथमतः इससे दुर्भावना उत्पन्न होती है और दूसरे वे ऐसी शिकायतों से कोई लाभ होने के सम्बन्ध में संदेहशील हैं क्योंकि उनका कहना है कि अधिकारीगण मामले को दबा देंगे जैसा दुद्धी तहसील में बहुधा होता है। शिकायतों पर कोई महत्व नहीं दिया जाता और जिस कर्मचारी के विरुद्ध शिकायत की जाय उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं होती। अधिकांश मामलों में सरकारी नौकर होने के कारण अनुकूल स्थिति में होने से सम्बन्धित अधिकारी शिकायत करने वालों को अनावश्यक रूप से कष्ट पहुँचाता है। शिकायत करने के परिणाम के ऐसे कई उदाहरण देखने के बाद ग्रामवासियों ने किसी के भी विरुद्ध शिकायत करना बन्द कर दिया है। इसके अतिरिक्त सा. वि. यो. के कार्यकर्ताओं के ही समान स्वयं ग्रामवासियों में अपने गाँव के कल्याण के विषय में उत्साह नहीं है और वे न तो इसमें सक्रिय अभिरुचि रखते हैं न अपनी प्रेरणा से कार्य करते हैं। अतएव किसी अनियमितता की शिकायत करना वे अपना कर्तव्य ही नहीं समझते। हर कोई सोचता है कि गाँव के हेतु शत्रुता मोल लेना मूर्खता है और वैयक्तिक उत्तरदायित्वों से बचने के लिए गाँव के पंचायत नेताओं के कन्धों पर उन्हें टालने की चेष्टा करता है। यह भी आश्चर्य की बात है कि एक प्रकार की अर्ध-सरकारी संस्था होते हुए भी पंचायत में कदाचित् ही सा. वि. यो. के कार्यकलापों से सम्बन्धित किसी विषय पर चर्चा या विचार-विमर्श होता है।

एक बार एक नाटक के खेले जाने को ले कर सा. वि. यो. के कार्यकर्ताओं का दुद्धी के उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों तथा छात्रों से झगड़ा हो गया। इस झगड़े से उन्होंने बड़े और प्रभावशाली व्यक्तियों से शत्रुता ठान ली। एक अन्य अवसर पर ग्रामवासी सा. वि. यो. से रामलीला के लिए माइक्रोफ़ोन उधार लेना चाहते थे किन्तु उनकी प्रार्थना अस्वीकृत कर दी गई। प्रतीत होता है इन छोटे-छोटे विषयों ने ग्रामवासियों और सा. वि. यो. के कर्मचारियों के बीच की खाई को और गहरी कर दिया है।

ऐसी धारणा बन सकती है कि ग्रामवासियों का जो भी हित किया जाय उसकी सराहना करने की क्षमता उनमें नहीं है, परन्तु बात ऐसी नहीं प्रतीत होती क्योंकि वे सहायक योजना अधिकारी (सामाजिक शिक्षा) के; जिसने योजना क्षेत्र की प्राइमरी पाठशालाओं को सुधार दिया है, काम और चरित्र की भूरि-भूरि प्रशंसा करते

हैं। उसके द्वारा पाठशालाओं के काम की जाँच होने के पूर्व अध्यापकों का आचरण और व्यवहार असन्तोषप्रद था। वे कई दिनों तक बिना छुट्टी लिए पाठशाला से अनुपस्थित रहते और इन पाठशालाओं में एक-एक अध्यापक ही थे, अतः उनकी अनुपस्थिति के फलस्वरूप शिक्षण विलकुल ठप हो जाता। जब पाठशालायें चलती थीं तब भी अनेक अनियमिततायें होती थीं। दैनिक उपस्थिति के रजिस्टर अनियमित रूप से भरे जाते थे। यदाकदा यह आरोप भी सुनने में आता है कि अध्यागकगण पाठशालाओं में प्रवेश अथवा परीक्षाओं में उत्तीर्ण करने के लिए बच्चों से घूस लेते थ। सहायक योजना अधिकारी (सामाजिक शिक्षा) ने इन सभी अनियमितताओं को समाप्त कर दिया। अब दुद्धी प्राइमरी पाठशाला सुचारु रूप से कार्य करती है। ग्रामवासी सहायक योजना अधिकारी (सामाजिक शिक्षा) की बहुत प्रशंसा करते हैं।

प्रचार कार्य बहुत अधिक हुआ है किन्तु ग्रामवासी कुछ अधिक ठोस चीज़ चाहते हैं। ग्रामवासियों के कथनानुसार सा. वि. यो. के कार्य की असफलता का मुख्य कारण यह है कि इसका विचार किए बिना कि बहुत बड़ी-बड़ी योजनायें व्यावहारिक हैं या नहीं उन्हें काग़ज़ पर तैयार कर डाला जाता है। जब उन्हें कार्यान्वित करना होता है तो वे जवाब दे जाती हैं। बात बहुत और काम कम होता है। एक बार सा. वि. यो. परामर्शदात्री समिति ने सुझाव दिया कि एक दुग्धशाला खोली जाय। ग्रामवासियों से सुझाव माँगे गए किन्तु लम्बी बहसों के बाद कुछ परिणाम न निकला। सा. वि. यो. के कर्मचारी हवाई नियोजक हैं न कि व्यावहारिक कार्यकर्ता। ऐसा अनुभव है कि वे समस्याओं के हल निकालने के स्थान पर उनके साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। सा. वि. यो. के प्रचार कार्य के विषय में जनता के विचारों का सारांश सर्वोत्तम ढंग से चार ग्रामवासियों के इन शब्दों में प्रस्तुत किया जा सकता है — "सा. वि. यो. के कार्यकर्ता यहाँ महान समाज सुधारकों के रूप में आए हैं। सा. वि. यो. के अधिकारी जब भी विकास की बात करते हैं वे सावधानी से चुने गए कुछ नपे-तुले फ़िकरों का प्रयोग इस प्रकार करते हैं मानों सभी लक्ष्यों की पूर्ति शीघ्र ही हो जायगी। वे निकट भविष्य में स्वर्ण युग ला देने की डींग हाँकते हैं। ये लम्बी-चौड़ी बातें निरर्थक हैं। किसी भी विशेष क्षेत्र में उनकी सफलता शून्य रही है तब उनका सर्वतोमुखी विकास के लक्ष्य की बात करना निरी मूर्खता है। वास्तव में उनके खोखले शब्दों को सुनते-सुनते और निकट भविष्य में आने वाले सुखमय जीवन का स्वप्न देखते-देखते हम थक गए हैं। हमें इससे तनिक भी सरोकार नहीं कि वे कार्यक्रम में कोई नई बात घटा या बढ़ा दें। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। आखिर यह सारा काग़ज़ी नियोजन बिना कार्य रूप में परिणत किए कब तक चल

सकता है ?" कुछ ग्रामवासी यहाँ तक कहते हैं कि सा. वि. यो. के बन्द कर दिए जाने से उन्हें कोई क्षति नहीं होगी और सा. वि. यो. गाँव पर कोई स्थायी प्रभाव नहीं छोड़ जायगी।

चमारों को सा. वि. यो. के विरुद्ध एक विशेष शिकायत है क्योंकि उनके १,१०० लाह के वृक्षों को सा. वि. यो. ने लाह के बीज निकालने के लिए तथा अनुसन्धान के उद्देश्य से ले लिया है। लाह के ये सारे वृक्ष गाँव के उत्तरी ओर हैं। चमारों की शिकायत है कि सम्पन्न भूस्वामियों और महाजनों के लाह के वृक्ष लेने के स्थान पर सा. वि. यो. ने उनके वृक्ष हड़प लिए हैं क्योंकि योजना कार्यालय के उनके समीप होने से प्रॉजेक्ट को सुविधा है। लाह के इन वृक्षों की आय अत्यल्प होते हुए भी उनकी निर्धनता की परिस्थिति में उनकी बड़ी सहायता करती थी परन्तु अब वे इस आय से वंचित कर दिए गए हैं और अपने वृक्षों के लिए उन्हें कोई क्षतिपूर्ति नहीं मिली है। चितौरा और अन्य गाँवों में भी जहाँ सरकार ने लाह के वृक्षों पर अपने अधिकारों का दावा किया है, सरकार द्वारा इन वृक्षों के लिए जाने ने एक बड़ा आन्दोलन उठ खड़ा हुआ है।

ग्रामवासियों का विचार है कि आरम्भ में ही सा. वि. यो. ने त्रुटि की और जिन समस्याओं पर उसे पहले ध्यान देना चाहिए था उन्हें हल नहीं किया। गाँव में व्यापक रूप से प्रचलित एक सामाजिक बुराई मद्यपान है। यदि इस बुराई को रोका जा सके तो जीवनस्तर ऊपर उठाने, नैतिक स्तर ऊँचा करने और जीवन को जीने योग्य बनाने की ओर यह एक ठोस क़दम होगा। यदि लोग मद्य पर पैसा बहाते रहे तो अन्य सुधारों द्वारा लाई गई यत्किंचित् समृद्धि नष्ट-भ्रष्ट हो जायगी। लगभग आधे दर्जन ग्रामवासियों से साक्षात्कार करने पर उन्होंने साक्षात्कारकर्ता से प्रश्न किया क्यों सा. वि. यो. ने कोई मद्यनिषेध आन्दोलन नहीं चलाया। इस बुराई को दूर करने के लिए सुझाव माँगने पर तत्काल उत्तर मिला—"उनके (सा. वि. यो. कार्यकर्ताओं के) पास एक लाउडस्पीकर, ग्रामोफ़ोन, फ़िल्म का एक पर्दा, इत्यादि हैं। यदि वे अपने मनोरंजन के लिए फ़िल्म प्रदर्शन कर सकते हैं और रेकॉर्ड बजा सकते हैं और 'छोटी भाभी' सदृश अश्लील चित्र दिखा सकते हैं तो वे इन वस्तुओं का उपयोग इस बुराई को रोकने के लिए क्यों नहीं कर सकते ? सार्वजनिक भाषणों, प्रदर्शनों और मद्यपान की निन्दा करने वाले चलचित्रों की सहायता से जनता को शिक्षित करने की व्यवस्था हो सकती है।" यहाँ इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि देवी ने १९५१ में इस क्षेत्र के अपने भ्रमण में मद्यपान के विरुद्ध समूचे गाँव में आन्दोलन चलाया था। उसके आन्दोलन को इतनी सफलता मिली कि

अनेक ग्रामवासियों ने मद्यपान त्याग दिया और भट्ठियाँ बन्द हो गईं। परन्तु सफ-लता अल्पकालीन थी। देवी के चली जाने पर ग्रामवासियों ने अपनी पुरानी आदतें दुबारा अपना लीं। उसके लोभ का संवरण वे न कर सके।

इसी प्रकार यह तथ्य है और बारम्बार सिद्ध हो चुका है कि जहाँ लोग कठिनाई से जीवननिर्वाह कर पाते हों वहाँ वस्तुतः उनकी अभिरुचि सामाजिक कार्यों की ओर मोड़ी नहीं जा सकती। जब ग्रामवासियों को पर्याप्त आहार उपलब्ध नहीं है सिनेमा प्रदर्शनों और मेलों पर रुपए बहाना बहुत बड़ा अत्याचार है। वे इन प्रदर्शनों की चकाचौंध देखने के बाद आह भरते हुए लौटते हैं कि उनके भाग्य में ऐसा सुखमय जीवन नहीं है। उन्हें केवल एक चीज़ की दरकार है और वह है दिन में एक बार पेट भर भोजन। उनका कथन है—"हम भोजन के लिए चिल्लाते हैं। परन्तु सा. वि. यो. हमें प्रदर्शिनियाँ, फ़िल्मी खेल और विकास मेले दे रही है। ये हमारे किस काम की हैं?" सा. वि. यो. का 'सूचना केन्द्र' बहुधा सूना रहता है। उसके कार्यक्रम सुनने की कोई चिन्ता नहीं करता।

अभिरुचि की इस सारी कमी के पीछे, जो भासमान हो या वास्तविक, एक अन्य गहरा कारण है और वह है स्थानीय स्थिति के विषय में भ्रांत धारणा। सा. वि. यो. के कार्यक्रमों और जनता के बीच एक बहुत चौड़ी खाई है। सा. वि. यो. के कार्य-कर्ताओं द्वारा अपनाए गए संचार के माध्यम दोषपूर्ण हैं और स्वभावतः सामुदायिक तथा सूचना केन्द्रों में जो कुछ होता रहता है उसमें लोग बिलकुल दिलचस्पी नहीं लेते। लाउडस्पीकर अधिक से अधिक शोर करे किन्तु वह जनता के लिए निरर्थक है क्योंकि उसके पास जनता से कहने के लिए कुछ नहीं है। अधिकांश आयोजनों में इस क्षेत्र में प्रचलित बघेलिया हिन्दी के स्थान पर विशुद्ध हिन्दी प्रयुक्त होती थी। विचारों के संचार की प्रक्रिया में लोकरीति, विशेषकर स्थानीय भाषा, प्रतीकों, फ़िकरों, मुहाविरों और स्थानीय अभिव्यक्ति के अन्य माध्यमों के कर्तृत्व को सा. वि. यो. के अधिकारियों ने नहीं समझा। ग्राम के स्तर पर कार्य करने वाले विस्तार कर्मचारियों ने स्थानीय बोली को सीखने के बिलकुल प्रयत्न नहीं किए जिससे वे सुबोध भाषा में जनता से बात कर सकें। सर्वोपरि आवश्यकता संचार के प्रभावोत्पादक एवं ग्राह्य माध्यमों के विकास की है जो कबायली साँचे में खप सकें। दिसम्बर १९५५ में आयोजित गीता जयन्ती उत्सव बच्चों का एक तमाशा बन कर रह गया क्योंकि वहाँ जो कुछ बोला जा रहा था वह प्रौढ़ों की समझ के बाहर था और इस लिए उन्होंने इसमें भाग लेना व्यर्थ समझा। किसान मेलों का भाग्य भी ऐसा ही रहा। यदि कुछ लोग इन मेलों में सम्मिलित होते हैं तो केवल इसलिए कि उनमें पुरस्कार वितरित होते हैं न कि इसलिए कि उन्हें वहाँ के सन्देश में कोई अभिरुचि है।

इसके विपरीत भजन मंडलियाँ सफल हैं क्योंकि उनमें व्यवहृत भाषा स्थानीय बोली है। परन्तु यद्यपि भजन मंडलियाँ और कीर्तन की बैठकें कम से कम अस्थायी रूप से सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों के वातावरण और सामुदायिक भावना का सृजन करती हैं, ऐसी बैठकों में सामुदायिक विकास के कार्यकलापों पर कभी विचार-विमर्श नहीं होता। विकास-सम्बन्धी विचारधारा के साथ ऐसे कार्यक्रमों के समेकन का अभाव है। परिणामस्वरूप ये कार्यक्रम मनोरंजन के साधन मात्र रह जाते हैं और प्रॉजेक्ट के काम को आगे नहीं बढ़ाते।

एक अन्य प्रकार से भी सा. वि. यो. के कर्मचारीगण स्थानीय स्थिति को समझने में असफल रहे, वह यह कि उन्होंने गाँव की गुटबन्दी और स्थानीय नेतृत्व के प्रतिमानों की गुत्थियों को नहीं समझा। गुट तथा जातिगत ईर्ष्या बहुधा उत्पन्न हो जाती है और वह किसी कार्यक्रम की सफलता में भारी अड़चन सिद्ध होती है। थोड़े-से पूर्व विचार तथा अन्तर्दृष्टि से मार्ग के ये अवरोधकारी प्रस्तर सफलता के सोपान में परिवर्तित किए जा सकते थे। परन्तु नीतिनैपुण्य तथा औचित्य का सहारा न लेने से कार्यक्रम सर्वदा असफल सिद्ध होते हैं। जातिगत ईर्ष्या तथा गुटों की प्रति-स्पर्धायें किस प्रकार बाधक सिद्ध होती हैं इसके दृष्टांत मंगल दल के कार्यकलापों और श्रमदान कार्यक्रम में मिलते हैं। कभी-कभी गाँव के उन लोगों की उपेक्षा कर दी जाती है जिनके हाथों में गाँव की कुंजी होती है और उसका भी परिणाम होता है योजना की असफलता। कुछ अवस्थाओं में पंचायत नेताओं और गाँव के दवदबे वाले लोगों को प्रॉजेक्ट के उद्देश्य बिलकुल नहीं सुहाते और इसलिए वे अपना समर्थन नहीं प्रदान करते।

यद्यपि प्रॉजेक्ट के स्टाफ़ में अनेक कार्यकर्ता हैं उनमें बहुत कम ऐसे हैं जिनका ग्रामसेवक और प्रौढ़ पाठशाला अध्यापक की भाँति ग्रामवासियों से प्रत्यक्ष तथा व्यक्तिगत सम्पर्क है। जो जनता के प्रत्यक्ष सम्पर्क में हैं भी वे अपने को अधिकारी के रूप में प्रदर्शित करते हैं। अन्यथा भी वे कुछ अधिक करने में असमर्थ हैं क्योंकि वे स्वयं प्रॉजेक्ट के उद्देश्यों से भलीभाँति अवगत नहीं हैं। कभी-कभी योजना कार्यकर्ता पर बहुत अधिक काम लाद दिया जाता है, जैसे ग्रामसेवक पर, और उसकी देखरेख में बहुत अधिक गाँव कर दिए जाते हैं।

सामान्यतः निर्धन तथा निम्नवर्ण लोग अनुभव करते हैं कि उनकी पूर्ण उपेक्षा कर दी गई है। जब पंचायत नेताओं के लिए स्थान-दर्शन कार्यक्रम आयोजित हुआ तब चमार पंचायत के प्रतिनिधि को छोड़ दिया गया था। एक अन्य अवसर पर जब गाँव में कताई-चर्खे बाँटे गए उस समय भी चमारों की उपेक्षा की गई। पनिकों की भी यही कहानी है।

सा. वि. यो. पर अनेक आरोप हैं—सही समस्याओं को हाथ में नहीं लिया गया है; कार्यकर्ता अक्षम, बेईमान और उदासीन हैं; आदर्श खूब छाँटे जाते हैं लेकिन व्यवहार में कुछ नहीं किया जाता। सा. वि. यो. ने जिस काम को उठाया असफल सिद्ध हुआ है और जो काम सफल हो सकता था उठाया ही नहीं गया। ग्रामवासियों का कहना है कि काष्ठ उद्योग केन्द्र में आयात की गई लकड़ी से अवांछित फ़र्नीचर बनाने के बजाय खिलौना उद्योग आरम्भ किया जा सकता था और इसके निमित्त स्थानीय उपलब्ध लकड़ी का प्रयोग हो सकता था। इसके अतिरिक्त प्रशिक्षण केन्द्र कारीगर तैयार करते हैं किन्तु उनके रोज़गार के लिए कोई सम्भावनायें नहीं उत्पन्न की जातीं। सामाजिक शिक्षा के क्षेत्र में जो चीज़ सफल रही, अर्थात् ग्राम-लक्ष्मी केन्द्र, वह बन्द कर दी गई। सर्वोपरि, स्थानीय स्थिति को उचित रूप से नहीं समझा जाता; संचार के ग़लत माध्यम प्रयुक्त होते हैं, ग़लत लोगों से सहयोग प्राप्त करने की चेष्टा की जाती है और कुछ समुदायों को प्रॉजेक्ट की परिधि के बाहर रखा जाता है। क्या इस सब का अर्थ यह है कि सा. वि. यो. का इतिहास एक के बाद एक असफलता, बारम्बार की जाने वाली त्रुटियों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, या समग्र रूप से देखने पर यह बारम्बार दुहराई जाने वाली भयंकर भूलों की कहानी मात्र है? मेरा ऐसा विचार नहीं है। कई अर्थों में सा. वि. यो. असफल रही है और बुरी तरह असफल रही है, तथापि ग्रामवासियों में कोई वस्तु भर दी गई है—एक ऐसी इच्छा जो पहले उनमें नहीं थी। एक सामाजिक चेतना का उदय दृष्टि-गोचर हो रहा है अर्थात् समस्याओं को समझने की इच्छा, अपनी आवश्यकताओं और सम्भावनाओं का विचारपूर्ण आंकलन, जीने तथा दूसरों को जीने देने की इच्छा, उच्चतर जीवनस्तर की तीव्र लालसा, इत्यादि। विचारधारा की दृष्टि से कल्याण-कारी राज्य के निमित्त सा. वि. यो. सोपान सिद्ध हुई है। शताब्दियों की उपेक्षा और उदासीनता, पृथकत्व और दूरस्थता, 'मुक्त व्यापार' की नीति तथा बाहरी और अनुत्तरदायी अधिकारियों द्वारा उन पर लादी गई हीनभावना ग्रन्थि जादू द्वारा सुधारी या मिटाई नहीं जा सकतीं। भविष्य की शक्ति सामान्य चेतना, सामाजिक और राजनीतिक चेतना, में निहित है और इस क्षेत्र में सरकार को अपने विचार प्रस्तुत कर तथा कार्यमूलक कार्यक्रमों को अग्रसर कर लाभ उठाना चाहिए।

पारिभाषिक शब्दावली

aboriginal आदिवासी
acculturation आसंस्करण
action programme कार्यमूलक कार्यक्रम
adjustment सामंजस्य
adoption आग्रहण
agnatic पितृपक्षीय
allocation विनिधान
allotment नियतन
apprenticeship अप्रेंटिसी
arboriculture वृक्षपालन
artisan शिल्पकार
assessment आकलन
audio-visual श्रव्य-दृश्य
Austro-Asiatic ऑस्ट्रो-एशियाई
bard चारण
beneficent कल्याणकारी
bias पक्षपात
blackmail डरा-धमका कर पैसे ऐंठना
case study जाने-बूझे दृष्टान्त
caste जाति
ceremony उत्सव, रस्म
charmed अभिमंत्रित
clan कुल
clause धारा
collateral सांपार्श्विक
commensality खान-पान
communication संचार
community समुदाय
concept प्रत्यय
coordination सामंजस्य
creditor उत्तमर्ण (महाजन)
cultivator कर्षण यंत्र
data न्यास
debtor अधमर्ण (ऋणी)
detribalization विकबीलीकरण
diagnosis निदान
dibble चोब यंत्र
divination बुलाना (देवताओं या प्रेतों को)
document प्रलेख
dynamics गतिशास्त्र
dynamism गतिकता
element तत्व
endogamy अन्तर्विवाह
estimate प्राक्कलन
evaluation मूल्यांकन
excommunication जाति-वहिष्कार
exodus निष्क्रमण
exogamy वहिर्विवाह
female spirits डाइन-चुड़ैल
fertility rate प्रजनन दर
festival पर्व, त्योहार
frequency distribution वारंवारता वितरण
function कार्य

genealogist	वंशवृत्तकार
ghost	भूत
glazed	काचित
grant	अनुदान
group	समूह
horizontal	क्षैतिज
horticulture	उद्यानविज्ञान
identity	पहचान
incantation	तंत्र
inferiority complex	हीनभावना ग्रन्थि
infiltration	अन्तःसरण
initiative	स्वप्रेरित-कार्य-क्षमता
institute	संस्थान
integration	समेकन
interview	साक्षात्कार
kin, kinship	नातेदार, नातेदारी
laissez faire	मुक्त व्यापार
loyalty	आस्था
magic	जादू
maleficent	अनिष्टकारी
malnutrition	कुपोषण
manifesto	आलेख
market	हाट
matrilineal	मातृमूलक
method	रीति
migration	प्रवास
misconception	भ्रान्त धारणा
mobility	चलनशीलता
model	रूपादर्श
negative	नकारात्मक
nomadic	खानाबदोश
norm	सामान्यक
nuclear	नाभिकीय
nutritional sterility	आहारजन्य वन्ध्यात्व
objective	वस्तुनिष्ठ
officer-in-charge	कार्याधिकारी
orientation	अनुस्थापन
outcaste	जातिच्युत
patois	जनपदीय बोली
patrilineal	पितृमूलक
pattern	प्रतिमान
pelvis	श्रोणी
physical feature	शारीरिक लक्षण
pilot survey	परीक्षणात्मक सर्वेक्षण
placate	मनाना (देवताओं या प्रेतों को)
pollution	अशुद्धि
positive	सकारात्मक
poultry	कुक्कुटपालन
preference	तरजीह
prejudice	पूर्वाग्रह
priest	पुरोहित
primitive	आदिम
Proto-Australoid	पुरा-ऑस्ट्रेलीय
Proto-Mediterranean	पुरा-भूमध्यीय
race	प्रजाति
record	अभिलेख

regimentation	रूपबद्धता	supervision, supervisor	अवेक्षण, अवेक्षक
rite	संस्कार, विधिक्रिया	survey	सर्वेक्षण
role	कर्तृत्व	symbiosis	सहजीवन
sample	न्यादर्श	tact	नीतिनैपुण्य
seance	भूत-प्रेत जगाना	technical guidance	प्राविधिक संदर्शन
seized (possessed)	अभुआना	technique	प्रविधि
sept	कुल	tool	उपकरण
sibling	सहोदर	tribe	कबीला
sorcerer, sorcery	ओझा, ओझाई	trinket	लघु आभूषण
spells	मंत्र	type	प्रकार
spirits	प्रेत	typical	प्रकारबोधक
stature	क़द	uncanny power	रहस्यमय शक्ति
stipend	वृत्ति	vagrant	आवारा
stock (racial)	स्कन्ध (प्रजातीय)	V. D.	रतिज रोग
stratified constellation	स्तरबद्ध मण्डल	vertical	ऊर्ध्वाधर
stricture	आक्षेप	vital statistics	जन्म-मरण परिसंख्या
structure	संचरना		
subsidy	उपदान	witchcraft	टोना-टोटका

अनुक्रमणिकायें

१. विषयानुक्रमणिका

२. कबीलों, जातियों, प्रजातियों और विभिन्न देशवासियों की अनुक्रमणिका

३. स्थानों, नदियों, देशों आदि की अनुक्रमणिका

४. व्यक्तियों के नामों की अनुक्रमणिका

५. लेखकों तथा प्रकाशनों की अनुक्रमणिका

शुद्धि-पत्र

पृ.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
ङ	४	अधिमानकों	सामान्यकों
१	१	प्रांता	प्रांतर
११	१३	न	ने
१८	१३	४–५ फ़ीट ऊंची काँटों की रुँधाई	काँटों की ४–५ फीट ऊँची रुँधाई
२०	५	बीमारिया	बीमारियाँ
२३	२२	जिन आम के वृक्षों का	आम के जिन वृक्षों का
२३	२९	लगभग अमरूदके	अमरूद के लगभग
३१	३	छोटे पैरों वाली मूँज की बुनी कुर्सियाँ	मूँज की बुनी छोटे पैरों वाली कुर्सियाँ
४५	११	रामप्रसाद कलवार के जाति में पुनर्प्रवेश	जाति में रामप्रसाद कलवार के पुनर्प्रवेश
४८	१८	एक पंच	एक-एक पंच
४८	२०	बलाने	बुलाने
४८	२८	मक़दमा	मुक़दमा
५१	२०	अनज	अनुज
५३	२४	अप	अपनी
६३	१५	नेतत्व	नेतृत्व
६४	३१	अन्योंने	अन्यों ने
६९	११	ग्राम पंचायन	गाँव पंचायन
७१	१४	लिया ।	लिया था
७४	२८	बैजना	बैजनाथ
७६	चित्र	बनिया दुद्धी	बनिया (दुद्धी)
७७	१०	मृगु	भृगु
८८	३१	सहिष्ण	सहिष्णु
१०४	१०	पौत्रवध	पौत्रवधू
१०६	२५	फआ	फूआ
१२३	२५	(विशेष के नीचे)	,,

पृ.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४१	२७	म	में
१४७	२०	छवि	छबि
१५४	२६	प्रत्यक	प्रत्येक
१५९	९	उच्छाह	उछाह
१६५	७	ह	है
१६७	१४	म	में
१६८	५	मारन	मारने
१६८	२७	ढँढ	ढूँढ
१६९	५	कुछ वेसिर के कबूतर	वेसिर के कुछ कबूतर
१७४	२०	ह	है
१७६	१४	देखन	देखने
१९३	२३	करन	करने
१९९	११	परणामस्वरूप	परिणामस्वरूप
२०२	७	वठक	वैठक
२१०	२	(पँक्ति के आरम्भ में)	कि
२१२	६	ह	है
२१७	१७	,,	,,
२१८	१९	ामवासियों	ग्रामवासियों
२३६	२१	अकुशल ग	अकुशल ढंग
२३६	२८	ह	हे
२३८	१	कार्यकर्ता	कार्यकर्त्री
२४०	२१	ह	है
२५२	२७	कबायलिया	कबायलियों
२५७	२९	बनान	वनाने
२६६	१३	स्वप्रेरित–	स्वप्रेरित
२६९	३	अधिमानक, ङ	(काट दीजिए)